कृषि क्षेत्र में विकास तथा असमानता का एक अध्ययन : 1966-67 के पश्चात—इलाहाबाद जनपद का विशेष अध्ययन

(A Study of Growth and Inequality in Agricultural Sector after 1966-67—A case study of Allahabad District)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डी० फिल० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध द्वारा

श्रीमती शैलजा शुक्ला
शोध छात्रा
अर्थशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

निर्देशक
डा० बी० के० त्रिपाठी
रीडर
अर्थशास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1992

कृषि क्षेत्र मे विकास तथा असमानता का एक अध्ययन 1966-67 के पश्चात् इलाहाबाद जनपद का विशेष अध्ययन (A study of growth & Inequality In Agricultural Sector - After 1966-67 A Case Study of Allahabad District.

प्राक्कथन

भारत में योजनाबद्ध आर्थिक विकास के साथ प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही देश के आर्थिक विकास में कृषि विकास के महत्व को ध्यान में रखते हुये इसके विकास पर विशेष बल दिया गया इस योजना मे कृषि क्षेत्र मे महत्वपूर्ण उपलब्धियॉ भी रहीं पर 1966 के पूर्व तक भारतीय कृषि की स्थिति एकय परम्परागत विधियों पर आधारित पिछड़ी अवस्था मे थी और खाद्यान्न संकट के साथ कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता नहीं प्राप्त थी । 1966 के बाद नवीन कृषि तथा हरित क्रांति के रुप मे वैज्ञानिक व आधुनिक कृषि सुविधाओं के परिणामस्वरुप कृषि क्षेत्र के उत्पादन तथा उत्पादिता में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये हैं । इस नवीन कृषि व्यवस्था में जहॉ खाद्यान्नों मे आत्मनिर्भरता हुई है, वहीं चौथी पंचवर्षीय योजना व उसके बाद की योजना में कृषि क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं के विकास के साथ-साथ कृषि व ग्रामीण क्षेत्र के विकास हेतु तथा उनसे जुड़ी हुई बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्याओं को दूर करने हेतु अनेक सरकारी कार्यक्रम व योजनायें प्रारम्भ की गयी हैं । कृषि क्षेत्र मे विकास प्रयासों के साथ-साथ छठी व सातवीं पंचवर्षीय योजना मे इस क्षेत्र में व्याप्त आर्थिक व सामाजिक असंतुलनों व असमानताओं, आय व कृषि से होने वाले अन्य लाभों के वितरण, भूमिहीन व खेतिहर मजदूरों की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है । भारतीय कृषि क्षेत्र मे जहॉ उत्पादन व उत्पादिता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है वहीं उनके साथ कृषि क्षेत्र मे असमानताये बढ़ी है जिसके अनेक सामाजिक व आर्थिक दुष्परिणाम हुये हैं । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में व्यवस्थित ढंग से प्राथमिक ऑकड़ों व द्वितीयक ऑकड़ों के आधार पर एक वैज्ञानिक ढग से इस बात का परीक्षण किया जायेगा कि कृषि क्षेत्र में विकास के साथ-साथ असमानताओं तथा असंतुलनों की क्या स्थिति रही है ?

कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकी परिवर्तन उन्नतशील बीजों के प्रयोग, कीटनाशक दवाओं और उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग तथा पर्याप्त सिंचाई व्यवस्था के कारण हरित क्रांति की महत्वपूर्ण सफलता रही है पर साथ ही साथ इसका क्षेत्र देश के कुछ ही राज्यों तक सीमित रहा है तथा उत्पादन भी मुख्य रुप से कुछ ही खाद्यान्न फसलों विशेषकर चावल व गेहूँ तक ही सीमित रहा है और मोटे अनाज, तिलहन व दालें नई तकनीकी के प्रभाव से पूर्णतया अछूती रही । प्रस्तुत अध्ययन मे विभिन्न विश्लेषणों से यह प्राप्त हुआ है कि नई तकनीकी के लाभों का परिणाम बड़े कृषकों को अधिक प्राप्त हुआ है और लघु तथा सीमान्त कृषक जिनके पास कृषि जोत का आकार बहुत सीमित व विखण्डित है, वे इसके लाभों से वचित रहे हैं । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे इस विश्लेषण को इलाहाबाद जनपद से प्राप्त प्राथमिक ऑकड़ों के विभिन्न विश्लेषणों में भी इसी तरह के निष्कर्ष की पुष्टि हुई है । ऑकड़ों के द्वारा प्राप्त गिनी अनुपात व लॉरेन्ज वक्र आदि से उत्पादन के लाभों व आय वितरण मे असमानताओं में हुई वृद्धि का स्पष्ट निष्कर्ष प्राप्त हुआ है । साथ ही साथ कृषि क्षेत्र में गरीबी एवं बेरोजगारी तथा उनसे जुड़ी हुई अनेक समस्याओं के समाधान मे भी कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई है । यद्यपि कृषि क्षेत्र में असमानता और असमान लाभों व आय के वितरण को समान बनाने हेतु एवं अन्य रोजगार अवसरों को उत्पन्न करने हेतु अनेक राष्ट्रीय स्तर की ग्रामीण व कृषि योजनाओं व कार्यक्रमों क्रियान्वयन किया गया है परन्तु उनके आलोचनात्मक मूल्यांकन से यह स्पष्ट हुआ है कि अभी तक इस दिशा में कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई है ।

कृषि क्षेत्र मे विकास एवं असमानता से सम्बन्धित प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आय, उत्पादन व लाभों में असमान वितरण को दूर करने व कृषि क्षेत्र मे सीमांत व भूमिहीन कृषकों की समस्याओं के समाधान हेतु व्याप्त गरीबी व बेराजगारी दूर करने

तथा अतिरिक्त उत्पादक रोजगार उत्पन्न करने से संबंधित नीतियों व कार्यक्रम के मूल्यांकन सम्बन्धी कुछ सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं । देश के कृषि विकास मे भावी कृषि नीति को इन दोषों और समस्याओं को दूर करके आर्थिक विकास को सही अर्थ में सामाजिक न्याय के साथ प्राप्त करना होगा । भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तनों व संस्थागत परिवर्तनों की नीति को अपनाना होगा तभी सम्यक् रुप से ग्रामीण तथा कृषि की विभिन्न समस्याओं का समाधान किया जा सकता है ।

प्रस्तुत शोध को इस रुप मे पूरा करने में मै अपने शोध निर्देशक डॉ0 बी.के. त्रिपाठी रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति विशेष रुप से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध अध्ययन के हर स्तर पर सुझाव, सहयोग और उत्साह प्रदान किया । वास्तव में उनकी ही प्रेरणा व कुशल मार्गदर्शन के परिणामस्वरुप ही मैं इस कार्य को पूर्ण कर सकी । अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ0 पी.एन. मेहरोत्रा के प्रति भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूँगी, जिन्होंने समय-समय पर मुझे शोध कार्य को पूरा करने में उत्साह प्रदान किया । मैं प्रो0 डी0एस0 कुशवाहा तथा प्रो0 वी0के0 आनन्द, पूर्व अध्यक्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय की भी आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे शोधकार्य के प्रारम्भिक स्तर पर मुझे आवश्यक सुझाव व सलाह दी । अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सभी अध्यापकों विशेषकर डॉ0 प्रह्लाद कुमार, श्री मनमोहन कृष्ण तथा श्री ए0के0 जैन के प्रति मैं अपने आभार को व्यक्त करना चाहूँगी जिन्होंने मेरे कुछ अध्यायों को पढ़ा व आवश्यक सुधार हेतु सुझाव दिये । अर्थशास्त्र विभाग के मेरे सहपाठी शोध छात्रगण जिनमें श्रीमती शिखा दीक्षित, डॉ0 सुभाष तथा कु0 निशा त्रिपाठी को भी मैं धन्यवाद देना चाहूँगी जिनके साथ मिलकर अपने विषय से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर वार्तालाप किया और जिन्होंने मुझे लेखन-सामग्री व साहित्य को उपलब्ध कराने में भी सहयोग प्रदान किया ।

शोध कार्य को करने तथा समय पर पूरा करने की प्रेरणा देने में मैं अपनी पूजनीया माता डॉ0 मालती अवस्थी की ऋणी हूँ जिनकी पुण्य स्मृति में मै इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत कर रही हूँ । मेरे शोध कार्य में समय-समय पर उत्साह देने तथा टाइप आदि कार्य में सहयोग के लिये मै अपने आदरणीय पिता श्री शैलेन्द्र कुमार अवस्थी के प्रति भी विशेष आभार को व्यक्त करना चाहूँगी । इसी प्रकार डॉ0 शशि अवस्थी ने भी मुझे शोध कार्य पूर्ण करने मे अपना निजी सहयोग प्रदान किया । शोध कार्य को स्वतंत्र तथा निर्बाध रुप से पूरा करने में तथा सर्वेक्षण सम्बन्धी ऑकड़ों को एकत्र करने और विभिन्न पुस्तकालयों से अध्ययन सामग्री तथा साहित्य एकत्र करने में दिये गये सहयोग के लिये मैं अपने पति श्री महेश कुमार शुक्ला की विशेष रुप से आभारी हूँ अन्यथा मेरे लिये इस कार्य को पूरा करना सभव न हो सकता । प्राथमिक ऑकड़ों के विश्लेषण तथा सारणीयन मे मुझे डॉ0 राधेश्याम गुप्त, एग्रो इकनॉमिक रिसर्च सेन्टर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से विशेष सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिये मैं उनकी आभारी हूँ ।

विभिन्न पुस्तकालयों में अध्ययन सुविधा तथा सम्बन्धित साहित्य व ऑकड़ों को उपलब्ध कराने में मैं पुस्तकालयाध्यक्ष, योजना आयोग, नई दिल्ली, पुस्तकालयाध्यक्ष आई0सी0एस0एस0आर0, नई दिल्ली, पुस्तकालयाध्यक्ष आई0आई0टी0 कानपुर व राज्य योजना आयोग, उ0प्र0 के पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति विशेष रुप से ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे आवश्यक साहित्य को उपलब्ध कराने मे सहयोग दिया । इसी प्रकार इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा एग्रो इकनॉमिक रिसर्च सेन्टर तथा जी.वी. पन्त सामाजिक संस्थान के पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने विभिन्न सर्वेक्षण रिपोर्ट को उपलब्ध कराने में मुझे सहयोग दिया ।

अंत में मै अपने इस शोध प्रबन्ध को इतने अच्छे ढंग से व समय पर मुद्रित करने के लिए खन्ना ब्रदर्स, इलाहाबाद तथा टाइपिस्ट श्री डी0 आर0 यादव को विशेष धन्यवाद देना चाहूँगी जिनके सहयोग से ही मैं इसे समय पर प्रस्तुत कर सकी ।

शैलजा शुक्ला

शैलजा शुक्ला
शोध छात्रा
अर्थशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

विषय-सूची

अध्याय क्रम		पृष्ठ संख्या
1.	प्रस्तावना	1
1.1	शोध अध्ययन का स्वरूप, आवश्यकता एव प्रमुख बातें	16
1.2	शोध अध्ययन के उद्देश्य	17
1.3	शोध अध्ययन की परिकल्पनायें	17
1.4	शोध अध्ययन विधि तथा सर्वेक्षण	18
1.5	शोध अध्ययन का अध्याय क्रम	22
2.	आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा तथा भारत में आर्थिक विकास प्रक्रिया	25
2.1	आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की संकल्पना विभिन्न उपागम	25
2.2	विकास की रणनीति एवं विकास प्रक्रिया	33
2 3	पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियाँ आर्थिक असमानताये	53
2.4	विकास प्रक्रिया मे सरचनात्मक परिवर्तन तथा आठवीं योजना	65
3.	योजनावधि में कृषि विकास	71
3.1	प्रथम योजनावधि व कृषि	71
3.2	द्वितीय योजनावधि व कृषि	73
3.3	तृतीय " " "	80
3.4	चतुर्थ " " "	86
3.5	पाँचवीं " " "	93
3.6	छठी " " "	99
3.7	सातवीं " " "	106
4.	कृषि क्षेत्र में नई तकनीकी व हरित क्राँति के प्रभाव	115
4.1	1966 के पूर्व कृषि उत्पादन व उत्पादिता	112

		पृष्ठ संख्या
4.2	नवीन तकनीकी एव हरित क्रांति	117
4.3	हरित क्रांति के प्रभाव - 1966 के पश्चात् कृषि उत्पाद की प्रवृत्तियाँ	122
4.4	नई तकनीकी के आर्थिक व सामाजिक प्रभाव	130
4.5	योजनावधि मे विकास तथा असमानता	134
4.6	कृषि लाभों का वितरण	144
5.	कृषि क्षेत्र में गरीबी तथा बेरोजगारी - प्रमुख नीतियाँ	146
5.1	गरीबी की प्रकृति एवं विस्तार	146
5 2	वैयक्तिक आय, आदेय तथा भूमि वितरण की असमानता व गरीबी	157
5.3	बेरोजगारी की प्रकृति व विस्तार	161
5.4	निर्धनता एवं बेरोजगारी सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन	177
5 5	रोजगार प्रेरित विकास रणनीति	191
6.	कृषि विकास व असमानता - इलाहाबाद जनपद के सर्वेक्षण की प्राप्तियाँ	(200
6.1	जनपदीय पार्श्वदृश्य	200
6.2	जनपद में कृषि की प्राप्तियाँ	211
6.3	जनपद में कृषि लाभों का वितरण व असमानता	227
7.	सारांश, निष्कर्ष एवं नीति सुझाव	239
8.	संदर्भित पुस्तकें एवं साहित्य	(1)

***

अध्याय-1

प्रस्तावना

(INTRODUCTION)

अध्याय-1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था मे यद्यपि आर्थिक नियोजन के प्रारम्भ से ही कृषि विकास और उसके महत्व की प्राथमिकता रही है पर 1966 के बाद नवीन कृषि नीति आधुनिक तकनीकी आगतों के प्रयोग मे क्राति उर्वरक व सिचाई की आशातीत सुविधाओं, उत्पादन व उत्पादकता मे क्रातिकारी परिवर्तन तथा पूरे तौर पर परम्परावादी कृषि के स्थान पर नवीन कृषि व्यवस्था से कृषि क्षेत्र और उसके विकास को एक नई दिशा व गति मिली है । नवीन कृषि व्यवस्था तथा खाद्यान्नों मे आत्मनिर्भरता की उपलब्धियों के साथ चौथी पचवर्षीय योजना व उसके बाद विशेषकर छठी व सातवीं पचवर्षीय योजनाओं मे कृषि क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं के विकास प्रयासों के साथ-साथ अब इस बात पर भी गभीरता से जोर दिया जा रहा है कि इस क्षेत्र मे व्याप्त असमानताये आर्थिक व सामाजिक असन्तुलन, आय व कृषि से होने वाले अन्य लाभों मे असमान वितरण, भूमिहीन खेतिहर मजदूर तथा गरीबी व बेरोजगारी आदि समस्याओं का किस तरह समाधान किया जा सके जिससे कृषि क्षेत्र मे विकास के साथ-साथ असमानताओं को दूर किया जा सके तथा साथ ही साथ सबधित अन्य समस्याओं का सयमाधान हो सके । विभिन्न अध्ययनों शोध कार्यों व सर्वेक्षणों से यह बात स्पष्ट हुई है कि जहॉ कृषि विकास के सदर्भ मे उत्पादन व उत्पादकता मे वृद्धि हुई है तथा कृषि मे प्रयुक्त आगतों मे वृद्धि तथा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये है वहीं इनके साथ असमानताये भी बढ़ी है तथा साथ ही साथ कृषि क्षेत्र के इस विकास के अनेक आर्थिक व सामाजिक दुष्परिणाम निकले है । प्रस्तुत शोध विषय मे इसी बात का विस्तृत विवरण किया जायेगा और यह देखा जायेगा कि देश मे कृषि क्षेत्र के विकास और असमानता की क्या स्थिति है और यह कहॉ तक किस रुप मे प्राथमिक ऑकडों व सर्वेक्षणों के आधार पर सही है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था मे कृषि क्षेत्र विभिन्न कारणों से बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है तथा देश के सामान्य आर्थिक विकास मे इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है । आधारभूत से कृषि प्रधान देश होने के कारण एव देश की जनसख्या का 70% कृषि तथा गैर कृषि कार्यों मे लगे होने के कारण इस क्षेत्र की एक विशेष स्थिति हो जाती है । वस्तुत देश की प्रधान आर्थिक व सामाजिक समस्याये मूलत ग्रामीण व कृषि क्षेत्र की समस्याये है । अत ग्रामीण व कृषि क्षेत्र की समस्याओं का समाधान देश की सम्पूर्ण समस्याओं के समाधान से सबधित है । राष्ट्रीय आय के उत्पादन, रोजगार सभावनाओं मे वृद्धि, औद्योगिक विकास, वस्तुओं सेवाओं का उत्पादन आदि अन्य महत्वपूर्ण विकास नीतियॉ कृषि क्षेत्र से सबंधित है, जहॉ देश की राष्ट्रीय आय मे लगभग 45% योगदान है, वहीं देश के बहुत बडे जनसख्या आकार का व्यवसाय जीवन निर्वाह आदि का भी साधन है । इस क्षेत्र मे लगे श्रमिकों की प्रतिशत सख्या उत्तरोत्तर बढती जा रही है जो इस शताब्दी के प्रारम्भ मे 62 5% तथा 1971 मे 68 7% हो गयी । इसी के साथ-साथ कृषि क्षेत्र का उत्पादन व कच्चा माल देश के बडे उद्योगों के विकास का आधार है तथा औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादित वस्तुओं के उपभोग तथा बाजार का भी यही क्षेत्र है।[1]

भारत जैसे अर्द्धविकसित देश की आर्थिक सवृद्धि वहॉ के कृषि क्षेत्र की उत्पादन योग्यता व ग्रामीण क्षेत्रों के सरचनात्मक परिवर्तन तथा आधारिक सरचना पर निर्भर करती है । कृषि क्षेत्र की विशालता को देखते हुये श्रम व भूमि की उत्पादिता मे वृद्धि आर्थिक विकास को द्रुत गति प्रदान करेगी । कृषि क्षेत्र के आधुनिकीकरण के साथ-साथ ससाधनों का सग्रह भी महत्वपूर्ण है जो कि करारोपण व बचतों द्वारा सभव है ।

---

1. A.N. Agrawal, Agrıcultural Economy of India, P.5-10.

देश के आर्थिक नियोजन द्वारा कृषि उत्पादन मे वृद्धि हुई है और खाद्यान्न आत्म निर्भरता की ओर हम अग्रसर हो सके है । पिछले दशकों मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये है । पचवर्षीय योजनाओं ने देश के आर्थिक विकास की क्षमता बढाने तथा निर्धनता की समस्या को हल करने का प्रयास किया है । उतार चढाव होते हुये भी कृषि उत्पादन मे बढने की प्रवृत्ति रही है । योजनाकालीन कृषि नीति ने उत्पादन वृद्धि को वर्तमान सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत बढाने पर महत्व दिया था परन्तु नवीन सस्थानात्मक परिवर्तन जैसे जमींदारी उन्मूलन, सहकारिता का विकास आदि योजनाकाल के प्रथम दशक मे किये गये । 1971 की भूमि गणना मे 15 2% चार हेक्टेयर से बडे कृषि जोतों मे देश की 60 6% कृषित भूमि पाई गयी । वर्तमान सामाजिक व राजनैतिक वर्ग सरचना मे आर्थिक नियोजन के लाभ बडी जोतों के कृषकों ने सामुदायिक विकास खण्डों, सहकारी समितियों व अन्य ग्रामीण सस्थाओं द्वारा वितरण की गई आगतों जैसे उर्वरक, जल व साख आदि को हडप लिया है । योजनाकाल मे छोटे कृषकों के लिये SFDA (छोटे कृषकों के अभिकरण) तथा सीमान्त कृषकों की सस्थाये (MFAL) द्वारा आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयास किया गया है । देश मे 1980 तक 1686 SFDA परियोजनाये कार्य कर रही है । राष्ट्रीय कृषि आयोग की सस्तुति के अनुसार कृषक सेवा समिति (Farmer's Service Society) की अवधारणा को मान्यता दी गई थी तथा पाँचवीं योजना मे ऐसी 50 समितियों के गठन का लक्ष्य था । छठी योजना मे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार प्रोग्राम (NREP) को ग्रामीण निर्धनता तथा अर्द्ध बेकारी दूर करने के लिये प्रारम्भ किया गया है ।

कृषि क्षेत्र मे विकास के अध्ययन से पूर्व हरित क्राति का विवरण भी आवश्यक है । नवीन कृषि नीति के अनुसार ऊँची उपज देने वाले बीजों, कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाना था ताकि प्रमुख फसलों की अल्पकालीन ऊँची उपज वाली किस्मों का प्रचलन हो सके जिससे किसान वर्ष मे एक से अधिक फसल उगा सके । कार्यक्रम मे गेहूँ के उत्पादन पर विशेष बल दिया गया । मेक्सिकों से आयात की गई

गेहूँ की उँची उपज वाली कस्मों - लर्मा रोजो और सोनारा-64 का प्रचलन करने के साथ-साथ भारतीय गेहूँ के साथ इनके अभिजनन द्वारा उसकी किस्म को सुधारा गया और कृषकों की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु बीज की पूर्ति बढायी गई किन्तु चावल के मामले मे प्रगति अपेक्षाकृत धीमी रही । मक्का, ज्वार और बाजरा की उँची उपज वाली किस्मों का भी विकास किया गया किन्तु, इनका उपयोग परीक्षात्मक आधार पर हुआ, व्यापारिक आधार पर नहीं । श्री एम0 एस0 स्वामीनाथन के शब्दों मे - 'धीरे धीरे किन्तु निश्चित रुप से विभिन्न फसलों के पौधों का पीला रग उत्तम पोषण के परिणामस्वरुप पौष्टिकता बढने से हरे रग मे बदल जाता है । रग के इस परिवर्तन को सामान्यजन हरी क्राति (Green Revolution) कहने लगा है ।'[2]

जिन दिनों हरी क्राति के दावे किये जा रहे थे, उन्हीं दिनों इन दावों की सच्चाई के बारे मे काफी सदेह प्रगट किया जा रहा था । किन्तु हाल के वर्षों मे (1971-72 मे मामूली 1972-73 मे भारी कमी आने के बाद से) हरी क्राति की चर्चा अब प्रचार मात्र समझी जाने लगी है किन्तु यह रुख ठीक नहीं है क्योंकि इसे अपनाकर हम उन अति महत्वपूर्ण विकासों की उपेक्षा कर देगे, जोकि भारत मे पिछले वर्षों मे घटित हुये है जैसे -

कृषि अनुसधान परिषद् के नेतृत्व मे सैकडों भारतीय वैज्ञानिक देश मे फैले बीसियों अनुसधान केन्द्रों पर कार्य करते हुये ऊँची उपज वाली किस्मों का विकास करने के विज्ञान मे पारगत हो गये है । H.Y.V इन मिश्रित बीजों को चमत्कारी बीज भी कहते है जोकि भारतीय दशाओं के उपयुक्त है तथा कई गुना अधिक उपज प्रदान करते है ।

---

2. B.K. Tripathi and G.C. Tripathi (Ed.) Dynamics of Indian Agriculture P. 10-11.

1965 के बाद कृषि विज्ञानों के महत्व को कुछ अधिक अनुभव किया जाने लगा है और अनुसधान शिक्षण एव प्रसार को एक उत्तम आधार पर सयोजित करने के प्रयास किये गये है । जबकि 1949 50 से 1960-61 तक की अवधि मे कृषि उत्पादन की वृद्धि मे क्षेत्रफल मे हुई वृद्धि (1 7% वार्षिक) ने उत्पादकता मे हुई वृद्धि (1 5% वार्षिक) की अपेक्षा अधिक योग दिया था तब 1960-61 से 1970-71 की अवधि मे उत्पादकता की वृद्धि (1 9% वार्षिक) ने क्षेत्रफल की वृद्धि (0 7% वार्षिक) से अधिक योग दिया । यह एक सुखद विकास है क्योंकि भारत मे कृषि क्षेत्र को बढाने की गुजाइश कम ही है और जब तक उत्पादन की वृद्धि कृषि उत्पादन को बढाने मे अधिक बडा योगदान नहीं करने लगती देश का भविष्य निराशामय ही रहेगा।[3]

1950-51 मे खाद्यान्न उत्पादन का क्षेत्र 97 3 मिलीयन हेक्टेयर था जो 1960-61 मे 18 7% बढकर 115 6 मिलीयन हेक्टेयर हो गया । 1970-71 मे इस क्षेत्र मे वृद्धि 1960-61 की 7 6% थी । अगले दस वर्षो मे खाद्यान्न क्षेत्र मात्र 1 9% बढा । 1985-86 मे खाद्यान्न उत्पादन का कुल क्षेत्र 127 1 मिलियन हेक्टेयर जो कि मात्र 0 3% अधिक 1980-81 के क्षेत्र से था । स्पष्टतया अब खाद्यान्न क्षेत्र का विस्तार स्थिर हो गया है किन्तु फसलों के रुप मे परिवर्तन अब भी विद्यमान है । मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, मक्का आदि) के अन्तर्गत क्षेत्र मे 1950-51 तथा 1960-61 मे वृद्धि 19 2% हुई जबकि 1970-71 मे मात्र 2 3% ही हुई । 1980-81 मे मोटे अनाज का कुल उत्पादन क्षेत्र 41 8% मिलियन हेक्टेयर था जबकि 1970-71 मे 45 8 मिलियन हेक्टेयर था । 1985-86 मे मोटे अनाज के उत्पादन क्षेत्र मे 6% की कमी आ गई । गेहूँ के उत्पादन क्षेत्र मे 32 7% की वृद्धि 1960-61 के अन्त तक हुई तथा 1970-71 मे पुन 41 1% की वृद्धि हुई । गेहूँ के उत्पादन क्षेत्र की यह वृद्धि 1980-81 मे 1970-71 की अपेक्षा 22 1% से अधोगामी हो गयी

---

3. P.K. Govil & B.B. Agricultural Planning & Social Justice in India.

तत्पश्चात् 1985-86 मे 3 6% की दर से स्थिर हो गयी । 1960-61 मे 24% की वृद्धि 1950-51 के पश्चात् दाल उत्पादन क्षेत्र मे अकित करने के बाद 1970-71 मे दाल के कुल क्षेत्र मे 41% की कमी आयी । 1980-81 मे मात्र 0 3% की कमी आयी किन्तु 1985-86 मे दाल उत्पादन के कुल क्षेत्र मे 6 1% की वृद्धि हुई जो कि 1980-81 के क्षेत्र से अधिक है । आजकल दाल उत्पादन का कुल क्षेत्र 23 8 मिलियन हेक्टेयर है ।

सारणी-1 0

खाद्यान्न उत्पादन के अन्तर्गत प्रतिशत आबटित क्षेत्र

फसल/फसलों के समूह	1950-51	60-61	70-71	80-81	85-86
चावल	31 7	29 5	30 2	31 7	32 2
गेहूँ	10 2	11 2	14 7	17 6	18 2
मोटे अनाज	38 7	38 9	37 0	33 0	30 9
कुल अनाज	80 6	79 6	81 9	82 3	81 3
कुल दालें	19 4	20 4	18 1	17 7	18 7
कुल खाद्यान्न	100 0	100 0	100 0	100 0	100 0

स्रोत Economic Times, 25-2 1987, Page-7

कुल खाद्यान्न उत्पादन 1950-51 मे 50 8 मिलियन टन था जो 1985-86 मे तिगुना होकर 150 5 मिलियन टन हो गया है । 1960-61 मे उत्पादन 1950-51 का 61 4% था । 1970-71 मे 32 2% अधिक 1960-61 की अपेक्षा था । यह वृद्धि दर अगले दस वर्षो अर्थात् 1980-81 मे कम रही अर्थात् 1970-71 की अपेक्षा 19 5% ही अधिक रही । 1985-86 मे 1980-81 की अपेक्षा यह वृद्धि दर 16 1% रही ।

कुल खाद्यान्न उत्पादन मे चावल का हिस्सा 40-42% अपरिवर्तनीय ही रहा । इसके अतिरिक्त मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, मक्का आदि) तथा दालों का हिस्सा कुल खाद्यान्न उत्पादन मे 1950-51 मे 30 3% गिरकर 1980-81 मे 22 4% तथा दालों का 16 5% से गिरकर 8 2% हो गया । अत यह निश्चित होता है कि 1980-81 से 1985-86 के बीच दालों तथा मोटे अनाजों का प्रतिशत गिरा है। गेहूँ का उत्पादन लगातार बढ रहा है ।

सारणी-1.1

कुल खाद्यान्न उत्पादन मे फसलों का प्रतिशत आबण्टन

फसल/फसलों के समूह	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1985-86
चावल	40 5	42 2	38 9	41 4	42 6
गेहूँ	12 7	13 4	22 1	28 0	31 2
मोटे अनाज	30 3	28 9	28 2	22 4	17 6
कुल अनाज	83 5	84 5	89 1	91 8	91 4
कुल दालें	16 5	15 5	10 9	8 2	8 6
कुल खाद्यान्न	100 00	100 00	100 00	100 00	100 0

स्रोत The Economic Times, May 10, 1976, Pg.5

इसके अतिरिक्त आगे दी गई तालिका से यह स्पष्ट होता है कि पजाब तथा हरियाणा मे सवृद्धि दरे अधिकतम है । उत्तर प्रदेश मे सवृद्धि दर मात्र 3 28% प्रतिवर्ष थी हालांकि पश्चिमी उ0प्र0 कृषि क्राति का एक महत्वपूर्ण आसन माना जाता है । इसका कारण यह है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश एव मध्य उ0प्र0 मे लगातार गतिहीनता की स्थिति बनी रही है, जिससे सारे राज्य की सवृद्धि दर कम हो गई ।

सवृद्धि दरों से सबधित तालिका के बाद विभिन्न राज्यों का कुल खद्यान्न उत्पादन मे प्रतिशत हिस्से से सबधित ऑकडे सन् 1975-76 से लेकर 1985-86 तक दिये गये है ।

सारणी-12

राज्यों मे कृषि उत्पादन की सवृद्धि दरे

(1962-65 से 1973-74)

क्रम स0	राज्य	सवृद्धि दर
1	पजाब	8 35
2	हरियाणा	6 66
3	केरल	4 94
4	त्रिपुरा	4 34
5	राजस्थान	3 80
6	मणिपुर	3 73
7	हिमाचल प्रदेश	3 68
8	उत्तर प्रदेश	3 28
9	पश्चिमी बगाल	3 14
10	तमिलनाडु	3 12
11	असम	2 66
12	कर्नाटक	1 88
13	गुजरात	1 75
14	बिहार	1 65
15	मध्य प्रदेश	1 29
16	आध्र प्रदेश	1 19
17	जम्मू व कश्मीर	0 69

क्रम स0	राज्य	सवृद्धि दर
18	उडीसा	-0 10
19	नागालैण्ड	-2 33
20	महाराष्ट्र	-2 44

स्रोत दि इकोनॉमिक टाइम्स, मई 10, 1976, पृष्ठ 5

सारणी-1.3

राज्यों का कुल खाद्यान्न उत्पादन मे प्रतिशत हिस्सा

(1975-76 से लेकर 1985-86 तक)

राज्य	1975-76	76-77	77-78	78-79	79-80	80-81	81-82	82-83	83-84	84-85	85-86
आन्ध्र प्रदेश	7 79	6 72	7 11	8 09	8 69	7 71	8 56	8 62	7 80	6 61	6 96
आसाम	1 99	2 03	1 94	1 75	1.85	2 09	1 81	2 14	1 78	1 83	2 01
बिहार	7 58	8 26	7 66	7 56	6 48	7 65	6 18	5 65	6 48	7 10	7 47
गुजरात	3 73	3 62	3 06	3 40	3 65	3 45	3 82	3 39	3 77	3 61	1 84
हरियाणा	4 16	4 72	4 22	4 80	4 58	4 66	4 53	5 13	4 32	4 62	5 30
हिमाचल प्रदेश	0 93	0 84	0 89	0 80	0 80	0 91	0 79	0 75	0 69	0 69	0 67
जम्म एव कश्मीर	0 83	0 84	0 89	0 92	1 01	1 01	0 95	0 97	0 73	0 86	0 86
कर्नाटक	5 85	4 23	5 76	5 65	6 72	4 54	5 48	4 65	4 76	4 62	3 81
केरल	1 15	1 15	1 04	0 97	1 20	1 00	1 02	1 03	0 81	0 88	0 79
मध्य प्रदेश	9 92	8 62	9 76	8 89	6 87	9 57	9 62	9 74	10 31	9 14	10 29
महाराष्ट्र	7 52	8 72	8 27	7 59	9 45	7 53	7 93	7 12	7 19	6 69	5 83
मणिपुर	0 25	0 26	0 25	0 21	0 22	0 23	0 20	0 18	0 17	0 24	0 23
मेघालय	0 11	0 13	0 12	0 11	0 13	0 12	0 12	0 12	0 11	0 11	0 11
नागालैण्ड	0 07	0.08	0 07	0 07	0 06	0 08	0 08	0 09	0 07	0 08	0 10

राज्य	1975-76	77-78	77-78	78-79	79-80	80-81	81-82	82-83	83-84	84-85	85-86
उडीसा	4 60	3 67	4 40	4 37	3 53	4 61	4 08	3 52	4 60	3 86	4 48
पजाब	7 29	8 27	8 20	8 85	10 87	9 18	10 00	10 92	9 70	11 06	11 42
राजस्थान	6 39	6 74	5 66	5 93	4 78	5 01	5 37	6 43	6 61	4 67	4 97
तमिलनाडु	5 93	5 70	6 13	5 76	6 98	4 23	5 55	3 73	4 06	4 74	5 03
त्रिपुरा	0 31	0 32	0 30	0 29	0 28	0 31	0 27	0 33	0 25	0 26	0 26
उत्तर प्रदेश	16 09	17 91	16 80	17 50	14 97	19 25	18 22	20 45	19 15	20 54	20 81
पश्चिमी बगाल	7 10	6 71	7 10	6 10	6 44	6 39	4 91	4 52	6 02	6 34	5 83

स्रोत इकोनॉमिक सर्वे 1985-86 एव 1986-87

कृषि क्षेत्र मे यद्यपि अनेक समस्याये प्रारम्भ से ही विद्यमान थीं परन्तु नवीन कृषि एव हरित क्राति के बाद कृषि क्षेत्र मे एक नया आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन हुआ है । कृषि क्षेत्र के विकास व उत्पादन से सबधित दिये गये विवरणों से स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र पर इसका व्यापक प्रभाव पडा है । यह निर्विवाद है यद्यपि कृषि उत्पादकता खाद्यान्नों के उत्पादन आदि मे अत्यधिक वृद्धि हुई है पर इसके दुष्परिणाम भी साथ-साथ इस रुप मे रहे है कि कृषि से होने वाले लाभों का समान वितरण नहीं हुआ और अनेक आर्थिक व सामाजिक असमानताये उत्पन्न हो गयी, फलत ग्रामीण क्षेत्रों मे व्याप्त बेरोजगारी, गरीबी तथा आर्थिक व सामाजिक असन्तुलन आदि समस्याये और जटिल हो गयीं । विकास की इस प्रवृत्ति से कृषि क्षेत्रों मे कुछ नये वर्ग भी उत्पन्न हो गये जिनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति बहुत दयनीय है । खेतिहर मजदूर, भूमिहीन श्रमिक आदि समस्याये अब विशेष महत्वपूर्ण हो गयी है । कृषि क्षेत्र मे इन असमानताओं का कारण इस बात से भी है कि खाद बीज सिचाई व तकनीकी प्रयोग मे भी असमानताये है तथा कृषि विकास कार्यो के सबध मे सरकार तथा बैंकों द्वारा दी गई साख सुविधाओं मे भी असमानता है । इन असमानताओं के बने रहने से कृषि क्षेत्र के विकास तथा देश के विकास के समक्ष गभीर समस्या है और इसलिये इन असमानताओं का विश्लेषण तथा सर्वेक्षण आर्थिक तथा कृषि नीति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

योजनाकाल मे कृषि विकास के जो प्रयास किये गये है उनमे विकास की शक्तियों की क्रियाशीलता अधिक हो गयी परन्तु विकास नीति के निष्पादन के फलस्वरुप क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताओं को प्रश्रय मिला है । कुछ राज्य जहॉ अवस्थापनागत सुविधाये अधिक थी विकास प्रक्रिया मे आगे निकल गये है और अन्य राज्यों मे कृषि विकास का स्वरुप अब भी परम्पराबादी बना है । दूसरे कृषि विकास के लाभ मूलत उनको ही मिल रहे है जिनके पास बडी जोतों के अन्तर्गत भूमि है। अवस्थापनागत सुविधाओं के लाभ भी बडे किसान ही उठा रहे है । भावी कृषि नीति में इन दोषों को दूर करना होगा जिससे कि सामाजिक न्याय व विकास दोनों उद्देश्यों की पूर्ति एक साथ हो सके । कृषि

क्षेत्र मे प्रवैगिकता का सचारण आर्थिक विकास को त्वरित करेगा परन्तु भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे तकनीकी परिवर्तन व सस्थानात्मक परिवर्तनों को एक साथ लागू करने की नीति को अपनाना होगा तभी कृषि विकास देश के आर्थिक विकास के उद्देश्यों को पूरा कर सकेगा ।

सम्पूर्ण देश के लिये औसत उत्पादकता प्रति हेक्टेयर 1,037 रुपये है किन्तु इस राष्ट्रीय औसत के अन्तर्गत व्यापक अन्तर देखने को मिलते है जैसे - केरल के लिये 2,176 रुपये है जबकि राजस्थान के लिये 4 61 रुपये है । इस प्रकार उच्चतम व न्यूनतम के बीच अनुपात 6 व 1 का है । नि सन्देह इन क्षेत्रीय अन्तरों को निर्धारित करने मे मानवीय तत्व तथा सस्थागत ढॉचे की भिन्नताओं का हाथ है, किन्तु एक कारण यह भी हो सकता है जो यह कि प्राकृतिक प्रसाधन और प्राकृतिक घटक भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है यदि अधिक नहीं तो कम भी नहीं ।

1952-53 से 1969-70 की मध्यावधि मे सम्पूर्ण देश के लिये कृषि उत्पादन 3 1% वार्षिक की दर से बढा । जहॉ तक अलग-अलग राज्यों का प्रश्न है, एक ओर शिखर सफलता वाले राज्य पजाब और हरियाणा है जिनकी वृद्धि दरे 6 6% तथा 6 0% रही एव दूसरी ओर जनसख्या की वृद्धि दर से भी कम वृद्धि दर वाले राज्य मध्य प्रदेश (1 5%) पश्चिमी बगाल (1 5 प्रतिशत), आसाम (1 4 प्रतिशत) तथा बिहार (0 7%) है । बिहार और पजाब की वृद्धि दरों का अनुपात 1 और 9 5 का है । निम्न राज्यों की कृषि आय सम्पूर्ण देश की औसत आय से कम है - राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा बिहार । इन्हीं राज्यों मे कृषि उत्पादन की वृद्धि दरे राष्ट्रीय औसत से काफी नीची रही है । देश के निर्धन कृषक राज्य और अधिक बन रहे है किन्तु दूसरी ओर औसत से अधिक वृद्धि दर वाले देश के समृद्ध राज्य (पजाब, हरियाणा, केरल व गुजरात) और अधिक समृद्ध होते जाते है । नि सन्देह कुछ अपवाद भी है जैसे नीची औसत का तमिलनाडु ऊँची औसत दर से बढ रहा है तथा ऊँची औसत का पश्चिमी बगाल नीची औसत दर से बढ रहा

है । ऐसे कतिपय अपवादों को छोडकर सामान्य प्रवृत्ति असमानताये बढने की दिशा मे हैं ।

क्षेत्रीय असमानता के विश्लेषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रदेशों मे 'गरीबी रेखा' से नीचे रहने वाले व्यक्तियों की सीमा सबधी आँकडों का उल्लेख भी आवश्यक है जो निम्नवत् है -

सारणी-1.4

प्रदेशों मे गरीबी (1973)

राज्य	निर्धनता से नीचे सख्या (करोडोंमे)			निर्धनता रेखा से क्षेत्र-जनसख्या का प्रतिशत	
	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी
1-उत्तर प्रदेश	3 2	0 8	3 9	42	63
2-बिहार	2 2	0 3	2 5	43	56
3-आध्र प्रदेश	1.7	0 5	2 2	49	58
4-तमिलनाडु	1 5	0 7	2 2	51	55
5-प0 बगाल	1 7	0 4	2 1	50	40
6-महाराष्ट्र	1 6	0 7	2 3	47	44
7-मध्य प्रदेश	1 6	0 4	0 2	46	55
8-मैसूर (कर्नाटक)	1 1	0 4	1 5	49	52
9-उडीसा	1 3	0 1	1 4	62	58
10-केरल	1 1	0 5	1 3	61	66
11-गुजरात	0 9	0 4	1 3	46	54
12-राजस्थान	0 8	0 2	1 0	35	51
13-पजाब	0 2	0 1	0 3	23	43
14-असम	0 3	0 1	0 4	18	49
15-हरियाणा	0 2	0 1	0 3	21	48
16-जम्मू व कश्मीर	0 1	0 1	0 2	27	62
17-सम्पूर्ण भारत	19 2	5 5	24 7	45	51

कृषि क्षेत्र मे विकास के परिणाम स्वरुप धनी कृषकों का एक शक्तिशाली वर्ग प्रकट हुआ तथा उसके साथ ही साथ खेत मजदूरों की सख्या मे भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है । इसे निम्न तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है -

सारणी-1.5

भारत मे खेतिहर मजदूर

कृषि श्रम अन्वेषण तथा ग्रामीण श्रम अन्वेषण ×

	खेत मजदूर (लाख मे)	कुल ग्रामीण श्रम-शक्ति के प्रतिशत के रुप मे (प्रतिशत)	खेत मजदूर परिवार (लाखों मे)	सभी ग्रामीण परिवारों के प्रतिशत के रुप मे (प्रतिशत)
1951	194	160	179	304
1957	-	-	163	245
1961	306	189	-	-
1965	-	-	153	218
1971	456	307	-	-
1975	-	-	207	259

× कृषि श्रम अन्वेषण 1950-51 व 1956-57 के लिये, तथा ग्रामीण श्रम अन्वेषण 1964-65 व 1974-75 के लिये । 1951 का अर्थ 1950-51, 1957 का अर्थ 1956-57, 1961 का 1960-61 इत्यादि है ।

स्रोत रंजित साउ, भारत की आर्थिक सवृद्धि अवरोध और सभावनाये, पृष्ठ 107

1.1 शोध अध्ययन का स्वरुप, आवश्यकता तथा प्रमुख बातें -

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास तथा वर्तमान आर्थिक व सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के सदर्भ मे बहुत ही महत्वपूर्ण है। वर्तमान आर्थिक विकास तथा आर्थिक नीति का उद्देश्य असमानता तथा असन्तुलन को दूर करके अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों व लोगों तक इसके लाभ को पहुँचाना है। विशेषकर कृषि तथा पिछडे क्षेत्रों मे। कृषि विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र मे व्याप्त आय,रोजगार, उत्पादन, उत्पादकता, जीवन स्तर, कार्य दशाये व अन्य आर्थिक सामाजिक सुविधाओं की स्थिति का सम्यक् अध्ययन किया जाये । एक सन्तुलित कृषि विकास की नीति लिये यह आवश्यक है कि राज्य वार (state-wise) कृषि क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण व अध्ययन किया जाये । चूँकि कृषि क्षेत्र मे नवीन कृषि नीति और हरित क्राति से जहाॅ उत्पादन तथा उत्पादकता मे वृद्धि हुई है वहीं इससे अनेक समस्याये भी उत्पन्न हुयी है और कुछ आधारभूत समस्याओं का समाधान भी नहीं हो पाया है । यह अध्ययन इसलिये और महत्वपूर्ण हो जाता है कि ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र मे व्याप्त बेरोजगारी, गरीबी, असमानता, असन्तुलन निम्न जीवन श्स्तर, सीमान्त व कृषि मजदूर, बन्धुआ मजदूर व अन्य समस्याये कृषि विकास से ही जुडे हुये है । प्रस्तुत शोध विषय का अध्ययन जहाॅ देश मे विभिन्न राज्यों के सदर्भ मे इन समस्याओं पर प्रकाश डालता है, वहीं इन समस्याओं की वास्तविक वस्तु स्थिति के सदर्भ मे एक सूक्ष्म स्तर पर इलाहाबाद जिले का सर्वेक्षण भी किया गया है ।

प्राथमिक आॅकडों तथा अन्य सूचनाओं के आधार पर यह देखने का प्रयास किया गया है कि कृषि विकास और असमानता के सदर्भ मे इलाहाबाद जिले की क्या स्थिति है? इस शोध विषय के अध्ययन से यह भी सभव है कि हम सरकार की वर्तमान आर्थिक नीतियों विशेषकर कृषि विकास नीतियों का मूलयाकन कर सके और इस दिशा मे उपयुक्त नीति प्रस्तावों को दे सके।[4]

---

4. R.K.Govil, Growth and Inequality, PP 1-8.

1.2 शोध अध्ययन के उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है -

(1) देश के कृषि क्षेत्र में सवृद्धि प्रक्रिया तथा असमानता का अवलोकन करना तथा सूक्ष्म स्तर पर किये गये सर्वेक्षण से विश्लेषण की पुष्टि करना पूरे विश्लेषण का केन्द्र है । कृषि विकास के विश्लेषण में इस बात का परीक्षण करना कि नवीन कृषि तकनीकी का फसलों के उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ा है । इसी के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में विभिन्न समुदायों के वास्तविक आय, मजदूरी आदि के व्यावहारिक दावे में इस नवीन कृषि तकनीकी के कारण हुये परिवर्तनों का विश्लेषण करना। कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि हेतु प्रयुक्त आगतों के उपयोग का अनुमान लगाना ।

(2) इस शोध अध्ययन का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि देश के कृषि क्षेत्र में तथा इलाहाबाद जनपद में कृषि आय का वितरण किस प्रकार है । यह भी देखना है कि कृषि जोत आकार के कारण आय असमानता में वृद्धि के साथ-साथ खाद पानी तथा साख आदि आगतों की असमान उपलब्धता के कारण यह असमानता किस तरह बढ़ी है । इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी, गरीबी आदि अन्य समस्याओं तथा अन्य महत्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तनों का भी अन्वेषण तथा विश्लेषण किया गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि नियोजन प्रक्रिया तथा विकास नीतियों में क्या कमियाँ रही यहैं ?

(3) कृषि क्षेत्र में विकास तथा असमानता के इस अध्ययन का यह भी उद्देश्य है कि विकास निर्धारक कारकों प्रवृत्तियों तथा अवरोधों के संदर्भ में नीति नियोजकों तथा सरकार के लिये कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी के लाभों के समान वितरण हेतु प्रभावकारी नीति तथा सुझाव देना है ।

1.3 शोध अध्ययन की परिकल्पनायें :-

शोध अध्ययन के उपर्युक्त उद्देश्यों के संदर्भ में तथा अध्ययन में किये गये सूक्ष्म सर्वेक्षण को ध्यान में रखते हुये इस अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का विश्लेषण, परीक्षण तथा सत्यापन किया जायेगा ।

(1) कृषि क्षेत्र मे आधुनिक तकनीकी के प्रयोग द्वारा कृषि जोत के आकार के साथ कुल आय मे वृद्धि होती है ।

(2) कृषि विकास के साथ-साथ कृषि आय के वितरण मे असमानता की वृद्धि होती है और यह विभिन्न वर्ग के कृषकों और लोगों मे और अधिक विषम होती है।

(3) कृषि क्षेत्र मे आय असमानताये कृषि जोत आकार मे असमानता के साथ-साथ इसलिये भी अधिक बढी है क्योंकि कृषि हेतु उपलब्ध आगतों मे व्यापक असमानताये है ।

(4) कृषि क्षेत्र मे आधुनिक तकनीकी के बाद के समय मे कृषि विकास की अन्तर्क्षेत्रीय असमानताये अधिक तेजी से बढी है ।

(5) कृषि क्षेत्र मे असमानताओं को दूर करने के प्रयास मे कृषि विकास तथा आर्थिक विकास की दर गिर सकती है ।

1.4 शोध अध्ययन विधि तथा सर्वेक्षण -

कृषि क्षेत्र मे तकनीकी परिवर्तन की मात्रा का अनुमान या तो आधुनिक आगतों के कारण उत्पादन मे वृद्धि अनुमान के द्वारा या आधुनिक आगतों के प्रयोग वृद्धि अनुमान द्वारा किया जा सकता है । प्रस्तुत अध्ययन मे यह प्रस्तावित किया गया है कि कृषि विकास तथा असमानताओं से सबधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों तरह के ऑकडों के आधार पर किया जायेगा । कृषि क्षेत्र मे उत्पादन, उत्पादकता, आय, रोजगार के अवसर, विभिन्न समुदायों या वर्गों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति आदि से सम्बन्धित सरकारी तथा गैर सरकारी प्रकाशित ऑकडों का प्रयोग किया जायेगा । ये ऑकडे पूरे देश तथा साथ ही साथ प्रमुख राज्यों के कृषि क्षेत्रों को लेकर के किया जायेगा ।

चूँकि प्रस्तुत अध्ययन मे सूक्ष्म स्तर पर इलाहाबाद जिले के कृषि विकास व असमानताओं का सर्वेक्षण सम्मिलित है। अत विभिन्न पहलुओं पर प्राथमिक ऑकडे एकत्रित किये जायेगे । सरकारी प्रकाशनों तथा सर्वेक्षणों से प्राप्त ऑकडों के आधार पर सह सम्बन्ध तथा अन्य साख्यिकी विधियों के आधार पर कृषि विकास की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है । इसी के साथ-साथ कृषि विकास सूचकाको के द्वारा दो समयों के बीच कृषि अर्थव्यवस्था पर तकनीकी परिवर्तनों के प्रभाव का अनुमान लगाया जायेगा । नवीन तकनीकी और कृषि विकास के द्वारा हुए लाभों के असमान वितरण तथा असमानताओं को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ ग्राफ चित्रों व अन्य साख्यिकी विधियों का प्रयोग किया जायेगा । साथ ही साथ विभिन्न कृषक वर्ग की आय का तुलनात्मक महत्व व परिवर्तन प्रतीपगमन विश्लेषण (Regression Analysis) द्वारा किया जायेगा ।

कृषि क्षेत्र मे विकास के साथ विभिन्न असमानताओं एव कृषि विकास से हुये लाभों की असमान वितरण की स्थिति को साख्यिकी विधि जैसे लॉरेन्ज वक्र (Lorentz curve) तथा गिनी अनुपात (Ginni's coefficient) आदि के माध्यम से किया जायेगा । कृषि क्षेत्र के विभिन्न कृषि वर्गो के साथ गैर कृषि कार्यो मे लगे भूमिहीन श्रमिकों एव बेरोजगार वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध एव तुलनात्मक अध्ययन को सह सम्बन्ध (Co-relation) एव आशिक विश्लेषण विधि द्वारा किया गया है । विकास प्रवृत्तियों से जुड़े पहलुओं को प्राथमिक एव द्वितीयक दोनों ऑकडों के आधार पर चित्रों, आरेखों, ग्राफ व चार्टो द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है।

शोध कार्य मे सर्वेक्षण को बहु स्तरीय उद्देश्यपूर्ण निदर्श के रुप मे रखा गया है । निदर्श के प्रथम स्तर पर इलाहाबाद जनपद के विकास खण्डों को तथा दूसरे स्तर पर गॉव को लिया जायेगा तथा निदर्श का अतिम स्तर कार्यशील कृषि जोते होंगी । प्रमुख आर्थिक निर्देशकों के आधार पर पारस्परिक विकास खण्ड मे

कृषि विकास एव उत्पादकता दशाओं के तुलनात्मक अध्ययन हेतु द्वितीयक ऑकडे को इलाहाबाद नियोजन कार्यालय से प्राप्त किया गया है । इससे हमारे सर्वेक्षण के प्रथम निदर्श हेतु आधार प्रस्तुत हो जाता है ।

इलाहाबाद जनपद के इस सर्वेक्षण मे इलाहाबाद जिला कार्यालय से प्राप्त द्वितीयक ऑकडों के आधार पर कृषि विकास तथा उत्पादकता की अर्न्तब्लाक दशाओं के द्वितीयक ऑकडों के आधार पर प्रथम स्तर निदर्श प्राप्त किये गये है । जिले को गगापार, जमुनापार व द्वाबा तीन क्षेत्रों मे विभाजित किया गया है । प्रस्तुत शोध मे सर्वेक्षण हेतु गगापार व जमुनापार से एक एक विकास खण्ड को चुना गया है । चूँकि हमारे अध्ययन मे नई तकनीकी के परिणामस्वरुप विकास दशाओं का सर्वेक्षण है, अत कृषि के दृष्टिकोण से उन्नत विकास खण्डों को लिया गया है । इस तरह गगापार मे सोराव तथा जमुनापार मे चाका विकास खण्डों को चयनित किया गया है । चयनित गॉवों मे यह ध्यान रखा गया है कि चार गॉवों मे से दो विकसित गॉव हों और दो कम विकसित हों । केवल उन्हीं गॉवों को चयनित किया गया है जिनमे कृषि जोत का क्षेत्रफल अधिक हो । इन चारों गॉवों मे प्रत्येक गॉव से 50 कृषि जोतों (परिवारों) को लिया गया है । इस तरह हमारे सर्वेक्षण का निदर्श निम्न होगा -

विकासखण्ड	-	2
गॉव	-	4
कृषि जोत परिवार	-	200

इलाहाबाद जनपद विकास खण्ड

	सोराव	चाका
अधिक विकसित गॉव	भदरी	ददरी
कम विकसित गावें	सिंगारपुर	अमिलिया
कृषि परिवार	100	100
	(50+50)	(50+50)

सर्वेक्षण निदर्श मे सभी 200 कृषि जोत परिवारों का सर्वेक्षण व्यक्तिगत स्तर पर घर जा जाकर किया गया है । प्राय प्रत्येक गॉव से सभी बडे कृषकों को ले लिया गया है । इस तरह की चुनाव प्रक्रिया मे स्थानीय लोगों, प्रधान, लेखपाल तथा सम्बन्धित अन्य सहायकों से सहयोग लिया गया है ।

कृषि जोत परिवारों के चुनाव को कर लेने के बाद विधिवत् सर्वेक्षण तथा क्षेत्र की पूछ तॉछ सबधी विवरण प्राप्त किये गये है तथा इस तरह के ऑकडों को तैयार की गयी प्रश्नावली के आधार पर किया गया है। इस प्रकार आवश्यक सूचना प्राप्त करने के लिये प्रश्नावली को तीन सूचियों मे रखा गया है -

1- विकास खण्ड सूची

2- ग्राम सूची

3- कृषि परिवार सूची

इन गॉवों तथा विकास खण्ड सूचियों का सम्बन्ध मोटे तौर पर आवश्यक ऑकडों के सामाजिक, आर्थिक आदि बातों को एकत्र करने से है । द्वितीयक ऑकडों को जिला कार्यालयों तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित आलेखों से प्राप्त किया गया है । विशेषकर आर्थिक एव साख्यिकी विभाग, जिला कार्यालयों, जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी इलाहाबाद तथा एँग्रो इकनामिक रिसर्च सेन्टर, इलाहाबाद से महत्वपूर्ण द्वितीयक ऑकडे प्राप्त किये गये है ।

1.5 शोध अध्ययन का अध्याय क्रम

प्रस्तुत शोध कार्य को निम्नलिखित महत्वपूर्ण अध्यायों मे विभाजित करके किया गया है -

1- प्रस्तावना

2- आर्थिक सवृद्धि की अवधारणा तथा भारत मे आर्थिक विकास प्रक्रिया

3- योजनावधि मे कृषि विकास

4- कृषि क्षेत्र मे नई तकनीकी व हरित क्राति के प्रभाव

5- कृषि क्षेत्र मे गरीबी व बेरोजगारी - प्रमुख नीतियॉ

6- कृषि विकास व असमानता - इलाहाबाद जनपद के सर्वेक्षण की प्राप्तियॉ

7- साराश, निष्कर्ष एव नीति सुझाव

प्रथम अध्याय शोध प्रबन्ध के प्रस्तावना से सम्बन्धित है । इसमे शोध - प्रबन्ध के विषय का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है । शोध विषय के महत्व और उस पर शोध कार्य की आवश्यकता स्पष्ट की गई है तथा विषय से सम्बन्धित प्रमुख महत्वपूर्ण बातों और बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है । यहॉ पर शोध कार्य के प्रमुख उद्देश्यों को दिखाया गया है । अध्ययन की कुछ महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं को प्रदर्शित किया गया है जिनका परीक्षण व सत्यापन शोध विवरणों मे किया जायेगा। चूँकि इस अध्ययन मे प्राथमिक ऑकडों के आधार पर इलाहाबाद जनपद मे कृषि विकास और असमानताओं का विशेष अध्ययन किया गया है । अत अध्ययन विधि तथा

सर्वेक्षण के निदर्श को विस्तार से स्पष्ट कर दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय मे आर्थिक सवृद्धि की प्रमुख अवधारणाओं को दिखाया गया है । योजनाकाल मे भारत मे आर्थिक विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है । विकास प्रक्रिया मे विकास व्यूहनीति तथा विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे प्रयुक्त विकास मॉडलों व सिद्धान्तों का मूलयाकन किया गया है । आर्थिक विकास के इन सैद्धान्तिक विश्लेषणों के साथ भारत मे आर्थिक नियोजन व विकास के अनुभवों को भी दिखाया गया है और इस बात को स्पष्ट किया गया है कि विकास प्रक्रिया और उपलब्धियों के साथ-साथ किस तरह आर्थिक व सामाजिक असमानताये बढी है ।

तीसरे अध्याय मे भारत मे कृषि विकास की स्थिति और उपलब्धियों को दिखाया गया है । भारत मे कृषि विकास को प्रथम पचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं पचवर्षीय योजना तक दिखाया गया है । इस अध्याय मे कृषि विकास सम्बन्धी प्रमुख नीतियों और कार्यक्रमों का भी मूल्याकन किया गया है । अन्त मे यह भी दिखाया गया है कि भारत मे कृषि विकास और नियोजन के सामने क्या प्रमुख समस्याये है ।

चतुर्थ अध्याय मे भारतीय कृषि क्षेत्र मे नवीन तकनीकी और हरित क्रांति पर क्या प्रभाव रहे है इसका वर्णन है । यहाँ विशेष रुप से 1966 के पूर्व भारतीय कृषि की दशा, उत्पादन व उत्पादकता को 1966 के पश्चात् हुये इनमे परिवर्तन को दिखाया गया है । 1966 मे नवीन कृषि तकनीकी के परिणामस्वरुप इसके सामाजिक और आर्थिक दुष्प्रभावों को स्पष्ट किया गया है और इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है कि किस तरह क्षेत्रीय असमानता मे वृद्धि हुई है । कृषि क्षेत्र मे हुये नवीन परिवर्तनों से होने वाले लाभ के बॅटवारे तथा वितरणात्मक व सामाजिक न्याय की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है ।

पाँचवे अध्याय मे कृषि क्षेत्र मे गरीबी तथा बेरोजगारी की स्थिति व समस्या को दिखाया गया है और यह स्पष्ट किया गया है `क किस तरह दोनों समस्याये एक दूसरे से जुडी है । देश मे और विशेषकर ग्रामीण कृषि क्षेत्र मे गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्याओं को दूर करने मे आर्थिक नीतियों और प्रमुख कार्यक्रमों का विवरण व मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है ।

छठे अध्याय मे कृषि क्षेत्र मे विकास व असमानता का विश्लेषण प्राथमिक और साथ-साथ द्वितीयक ऑकडों के आधार पर इलाहाबाद जनपद से प्राप्त सर्वेक्षण प्राप्तियों के आधार पर किया गया है । कृषि विकास के विभिन्न पहलुओं और विकास के निर्देशकों का विश्लेषण प्राथमिक ऑकडों, साख्यिकीय विधियों, चित्रों व ग्राफ आदि की सहायता से किया गया है । सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्षों को देश के कृषि क्षेत्र मे प्राप्त दशाओं के साथ देखा गया है । सर्वेक्षण की प्राप्तियों और निष्कर्षों को आर्थिक नीति हेतु दिशा निर्देश के लिये आधार बनाया गया है ।

सातवे और अन्तिम अध्याय मे सम्पूर्ण शोधकार्य का साराश व निष्कर्ष दिया गया है । साथ ही साथ यहाँ कृषि क्षेत्र मे कृषि के तीव्र विकास हेतु और कृषि विकास के साथ बढती हुई आर्थिक व सामाजिक असमानताओं को दूर करने से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव भी प्रस्तुत किये गये है ।

अध्याय-2

आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा तथा भारत में आर्थिक विकास प्रक्रिया

(THE CONCEPT OF ECONOMIC GROWTH AND GROWTH PROCESS IN INDIA)

अध्याय-2

आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा तथा भारत में आर्थिक विकास प्रक्रिया

2.1 आर्थिक सवृद्धि एवं विकास की संकल्पना - विभिन्न उपागम -

भारतीय अर्थव्यवस्था मे कृषि विकास एव कृषि क्षेत्र मे व्याप्त असमानताये तथा इनका विश्लेषण एव अध्ययन मूलत आर्थिक विकास की प्रक्रिया और विकास नीति से जुडी है । एक अर्द्धविकसित देश के रुप मे नियोजित व्यवस्था के आधार पर भारत का कृषि विकास तथा उसमे व्याप्त असमानतायें तथा अन्य संबंधित समस्यायें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के विकास नीति से महत्वपूर्ण रुप से जुडी हुई है अत कृषि विकास एव असमानता से सबधित अध्ययन एवं विश्लेषण हेतु प्रथमत यह उपयुक्त होगा कि हम सामान्य रुप से आर्थिक विकास एव संवृद्धि के आशय सें सबधित विभिन्न उपागम एव विकास प्रक्रिया मे विकास व्यूह (Strategy) का विश्लेषण करे । आर्थिक विकास एव सवृद्धि के विभिन्न उपागमों को हम सामान्य रुप से तथा भारतीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न योजनाओं मे समय समय पर प्रयुक्त विकास मॉडलों एव विकास रणनीतियों (Strategies) के सदर्भ मे करेंगे ।

आर्थिक विकास एव सवृद्धि के सबध मे अतिप्रचलित एव मान्यता प्राप्त परिभाषा के आधार पर इसे उस गत्यात्मक प्रक्रिया से सम्बन्धित करते है, जिसके परिणामस्वरुप एक दीर्घकालीन सदर्भ मे किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है ।[1] इस प्रकार मायर (Mier) की इस परिभाषा के आधार पर किसी भी देश मे विकास प्रक्रिया का एक दीर्घकालीन स्वरुप एव प्रवृत्ति होनी चाहिये और साथ ही साथ उसमे जनसख्या की वृद्धि के साथ-साथ राष्ट्रीय उत्पादन, आय मे वृद्धि अधिक तीव्र गति से होनी चाहिये । विकास की इस परिभाषा से मिलती हुई प्रोफेसर बैरन (Professor Barron) ने बताया कि आर्थिक सवृद्धि या विकास को इस रुप

---

1. "Is the process whereby the real per capita income of a country increases over a period of time."

- G.M. Mier, Economic Development Theory, History Policy, page 20.

मे परिभाषित करना चाहिये कि समयोपरि प्रति व्यक्ति पदार्थ वस्तुओं का उत्पादन बढता रहे ।[2] इसी तरह आर्थिक विकास को आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया है और आर्थिक विकास को उस प्रक्रिया से जोड़ा गया है जिससे वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ-साथ आय मे असमानताओं को दूर किया जाता है तथा सम्पूर्ण रुप मे लोगों की संतुष्टि एव पसदगी को प्राप्त किया जाता है ।[3]

आर्थिक विकास एव संवृद्धि की दशा से सबधित एक अन्य उपयोगी परिभाषा प्रोफेसर जेकब वाइनर (Professor Jacob Viner) ने दी है । उनके अनुसार किसी भी देश मे विकास की प्रक्रिया हेतु अधिक पूजी अथवा अधिक श्रम अथवा अधिक उपलब्ध प्राकृतिक ससाधनों के प्रयोग की प्रभावी सभावना विद्यमान है और जो अपनी वर्तमान जनसंख्या के ऊँचे जीवन स्तर को कायम रखने मे समर्थ हो ।[4] आर्थिक विकास के सदर्भ मे डब्लू डब्लू रोस्टोव (W.W. Rostov) ने यह दिखाया है कि यह वह प्रक्रिया है जिससे कोई अर्थव्यवस्था विकास की विभिन्न दशाओं से गुजरती हुई मूलत उठान अवस्था (take off) दशा से स्व-आत्मनिर्भरित दशा (self sustained growth) को प्राप्त करती है।[5]

---

2. "Let Economic growth (or Development) be defined as an increase over time in per capita output of material goods." Professor Barron, The Political Economics of Growth, page 15.

3. "Economic Development is a sustained, secular improvement in material well being which may consider to be reflected in an increasing flow of goods & services." Olcur & Rachardson, Studies in Economic Development page 280.

4. Jacob Viner, The Economics of Development, The Economics of Underdevelopment Edited by A.N. Agarwal & S.P. Singh, page 12.

5. W.W. Rostov, The take off into self sustained growth, The Economics of Underdevelopment, Edited A.N. Agarwala & S.P. Singh, page 154.

आर्थिक विकास की सकल्पना प्राय आर्थिक सवृद्धि, आर्थिक कल्याण, आर्थिक उन्नति तथा स्थायी परिवर्तन से किया जाता है किन्तु कुछ अर्थशास्त्री जैसे शुम्पीटर तथा श्रीमती उर्सला हिक्स ने बहुप्रचलित आर्थिक विकास की अवधारणा को आर्थिक सवृद्धि से अन्तर किया है । सामान्यतया आर्थिक विकास को अर्द्धविकसित देशों के विकास से सदर्भित किया जाता है । शुम्पीटर के अनुसार, आर्थिक विकास एक असतत तथा प्राकृतिक परिवर्तन है जो स्थिरावस्था की दशा मे परिवर्तन करता है और जिससे प्रथमत संस्थिति की अवस्था परिवर्तित होती है, जबकि आर्थिक संवृद्धि वह क्रमिक एव लगातार दीर्घकालीन समयावधि मे परिवर्तन की स्थिति है जो बचत दर एव जनसख्या मे सामान्य वृद्धि से प्राप्त होती है ।[6] इन दोनों विकास की सकल्पनाओं का सबसे सरल अन्तर प्रोफेसर मैडिसन (Professor Maddison) के अनुसार, धनी देशों मे आय दरों मे वृद्धि सामान्यतया आर्थिक सवृद्धि कही जाती है और गरीब देशों मे इसे आर्थिक विकास कहते है ।[7]

आर्थिक विकास की उपरोक्त परिभाषा तथा विश्लेषण से थोड़ा हटकर कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसकी अधिक व्यावहारिक तथा वास्तविक परिभाषाये दी है । ये परिभाषाये संस्थागत तथा सरचनात्मक कारणों (Institutional & structural factors) पर आधारित है तथा आर्थिक विकास को मात्र राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन आदि में वृद्धि तक ही सीमित न रखकर उसे किसी अर्थव्यवस्था के सस्थागत कारणों के आधार पर होने वाले सभी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक तथा अन्य

---

6. Shumpeter, The Theory & Economics of Development, page 63-66.

7. A Maddison, Economic Progress & Policy in Developing Countries, 1970.

महत्वपूर्ण परिवर्तनों से सबंधित करती है जिनका अन्तत उद्देश्य अर्थव्यवस्था के सरचनात्मक परिवर्तनों (structural changes) से है । ये अर्थशास्त्री आर्थिक विकास को योगों (economic aggregates) तक ही सीमिति नहीं करते अपितु आर्थिक विकास का एक विस्तृत अर्थ लेते है, जिससे आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय (social justice), वितरणात्मक समस्या, सामाजिक व आर्थिक असमानता आदि जैसे आधारभूत तथा सस्थागत कारणों का भी विश्लेषण होता है । इनका कहना है कि यदि आर्थिक विकास की उत्पादन मात्रा तथा आय मे वृद्धि के रुप मे ही देखा जाय तो किसी भी देश मे इनकी वृद्धि के आधार पर आर्थिक विकास का होना तो दिखाया जा सकता है पर यह विश्लेषण उपयुक्त नहीं है, क्योंकि यह आर्थिक विकास की मूलभूत वातों तक नहीं पहुँच पाता । आर्थिक विकास सम्बन्धी इन बातों को हम एक परिभाषा के रुप में इस तरह रख सकते है -

आर्थिक विकास की प्रक्रिया का तात्पर्य अर्थव्यवस्था के प्रमुख सामाजिक, सस्थागत तथा सगठनात्मक (organizational) परिवर्तनों से है, जिनका उद्देश्य सरचनात्मक परिवर्तनों द्वारा अर्थव्यवस्था की मूलभूत सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु समष्टिभावी उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने से है, जिससे अन्तत. अर्थव्यवस्था मे लगातार स्वचालित तथा आत्मनिर्भरित भावी आर्थिक सवृद्धि की सभावनायें उत्पन्न हो सके ।

उपरोक्त परिभाषा मे मुख्य रुप से तीन महत्वपूर्ण बातें है -

- संस्थागत कारण
- सरचनात्मक कारण
- आत्मनिर्भरित विकास का आधार

संस्थागत कारणों का तात्पर्य अर्थव्यवस्था की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक

तथा सास्कृतिक दशाओं तथा परिस्थितियों से है, जिसमे लोगों की मनोवृत्तियाँ व रहन-सहन का तरीका तथा उनकी धार्मिक व नैतिक मनोभावनाये या मोटे तौर पर लोगों का जीवन दर्शन (Philosophy of life) निहित है । इसके साथ अर्थव्यवस्था के सरचनात्मक परिवर्तन का तात्पर्य उत्पादन प्रवृत्ति मे तथा उत्पादन साधनों के प्रयोग मे परिवर्तन से है । इसमे जनसख्या वृद्धि लोगों के उपभोग तथा माँग की दशाये आदि महत्वपूर्ण है । अर्थव्यवस्था के विभिन्न पारस्परित क्षेत्रों के विकास तथा पारस्परिक सम्बन्धों के परिवर्तन का भी महत्व सरचनात्मक परिवर्तन से है । तीसरी बात जो विशेष महत्वपूर्ण है, वह यह है कि अर्थव्यवस्था अपने सस्थागत कारणों को ध्यान मे रखते हुये सरचनात्मक परिवर्तन के द्वारा आत्मनिर्भरित तथा स्वचालित सवृद्धि को प्राप्त करे । इसका तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था मे प्राप्त साधनों का प्रयोग इस रुप मे हो कि वहाँ के मूलभूत आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो और भविष्य में लगातार विकास के लिये आधारशिला तैयार हो सके । इस तरह यदि किसी अर्थव्यवस्था मे या उसके किसी क्षेत्र मे भले ही चाहे जितनी अधिक सवृद्धि हो जाय पर यदि कुल मिलाकर वहाँ मूलभूत समस्याओं के समाधान हेतु कोई उपयुक्त ढाँचा न बन सका जिससे कि उस अर्थव्यवस्था का भावी विकास निश्चित हो सके, तो इसे हम आर्थिक विकास नहीं कहेंगे । इस आधार पर यदि मूलभूत समस्या का रुप गरीबी का समाधान करना है तो हम कहेगे कि आर्थिक विकास गरीबी दूर करने से है । पर एक बात यहाँ ध्यान मे रखने की यह है कि गरीबी को सीमित अर्थ मे न रखकर एक व्यापक अर्थ मे लिया जा रहा है जिससे इसका सम्बन्ध केवल आय से ही न होकर अनेक सामाजिक कारणों से भी है ।

आर्थिक विकास को यदि इस रुप मे देखें तो स्पष्ट होता है कि अर्थव्यवस्था मे समस्याओं के समाधान के साथ लोगों को जीवित बने रहने का यह सबसे अच्छा तरीका है । इसका तात्पर्य एक अच्छे जीवन स्तर (standard of life) को प्राप्त करने से है ।[8] आर्थिक विकास के द्वारा यह सभव होता है कि गरीबी,

---

8. Arthur Lewis, The Theory of Economic Growth page 420-435

भुखमरी तथा महामारी आदि से छुटकारा पाया जा सके । इस तरह आर्थिक विकास न केवल जीवन की रक्षा ही करता है बल्कि जीवन के मूल्य को भी बढ़ाता है । गरीबी लोगों को अकर्मण्य बना देती है, जबकि आर्थिक विकास जीवन स्तर को बढ़ाता है । हम वस्तुत आर्थिक विकास, आर्थिक विकास के लिये या मात्र आर्थिक सम्पत्तियों के एकत्रीकरण के लिये ही नहीं चाहते अपितु इसका मूलत सम्बन्ध मानवीय विकास से है और इसके सारे परिणाम मनुष्य के लिये ही होने चाहिये । इस तरह आर्थिक विकास जीवन के ऊँचे मूल्यों को प्राप्त करने से है तथा अर्थव्यवस्था मे बहुत सी ऐसी आधारभूत बातों को उत्पन्न करने से है, जिसका उपयोग अधिकाश लोग (masses) कर सकें। अत वर्तमान समय मे आर्थिक विकास में आर्थिक प्रगति के साथ-साथ सामाजिक, सास्कृतिक और सस्थागत परिवर्तन भी सम्मिलित किये जाते है । सयुक्त राष्ट्र द्वारा आर्थिक विकास के लिये दी गयी परिभाषा में उपरोक्त तत्वों को सम्मिलित किया जाता है । इसके अनुसार - 'विकास का सम्बन्ध न केवल मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं से है, बल्कि जीवन की सामाजिक स्थिति मे सुधार से भी है ।[9] अत विकास केवल आर्थिक वृद्धि ही नहीं है, बल्कि आर्थिक वृद्धि तथा सामाजिक, सास्कृतिक एव संस्थागत परिवर्तन भी इसमे सम्मिलित है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसे हम अब संक्षिप्त करके यह कह सकते है कि आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों व दिशाओं में साथ-साथ चल रही है जिसके कारण इसकी प्रवृत्ति आर्थिक, सामाजिक, नैतिक तथा सास्कृतिक है।[10]

---

9. U.N.O., The Development Decade.

10. "Development...........touches all aspects of community life has to be viewed comprehensively .....(it) this extends itself in no extra-economic spheres, educational social & cultural." - Second Five Year Plan, page 1.

इसका उद्देश्य वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन बढाने से है ।

इसका सम्बन्ध परम्परागत वर्ग के लोगों के विपरीत नये वर्ग के लोगों से है जिसमे नये सम्बन्ध व महत्व स्थापित होते रहते है ।

यह अपनी प्रवृत्ति मे नैतिक है क्योंकि इसका सम्बन्ध समानता तथा सामाजिक न्याय आदि मानवीय मूल्यों से है ।

अत मे यह एक सास्कृतिक रुप मे भी है जिसमे ऐसी नीतियों का विकास होता है जो महत्वपूर्ण क्रांति या परिवर्तन ला सकती है । इसका सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्थाओं तथा निकायों (economic system) मे पूर्णतया नवीनीकरण से है और इसी रुप मे यह अर्थव्यवस्था मे सरचनात्मक परिवर्तन करके उसे आगे पुन विकास के लिये बनाये रखने मे सक्षम है । इस कारण यह माना जाता है कि विकास प्रक्रिया सामुदायिक जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करती है । यह गैर आर्थिक क्षेत्रों यथा, यह समाज के शैक्षिक, सामाजिक और सास्कृतिक पक्षों को भी प्रभावित करता है । आर्थिक विकास की इसी वृहद् परिकल्पना के आधार पर भारतीय योजनाओं की दृष्टि आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को समन्वित रुप से समाधान करने के प्रति है । समस्या केवल ससाधनों के विकास की नहीं अपितु एक सक्षम सामाजिक ढॉचा बनाने और मानवीय जीवन के गुणों को भी विकसित करने की है।[11]

आर्थिक विकास एव आर्थिक सवृद्धि के उपर्युक्त अन्तर के साथ यह स्पष्ट हुआ है कि इनका प्रयोग अर्द्धविकसित एवं विकसित अर्थव्यवस्थाओं के आशय के सम्बन्ध मे भी दो शब्द कहना उचित होगा । नर्क्स (Nurkse) के अनुसार अर्द्धविकसित देश गरीब है, क्योंकि वे गरीब है । इससे यह आशय स्पष्ट होता है कि विकास के अर्थ एव प्रक्रिया मे गरीबी निवारण एवं आय वृद्धि आवश्यक है । इसी तरह

---

11. Baljeet Singh, Institutional Approach to Planning, page 369.

अर्थशास्त्रियों ने अर्द्धविकसित देशों को प्राथमिक क्षेत्रों मे उत्पादन करने वाला कृषि एव पिछडी कृषि प्रधानता वाला तथा प्राकृतिक एव अन्य ससाधनों के अनुपयुक्त प्रयोग वाला देश माना है । इससे यह स्पष्ट होता है कि विकास की प्रक्रिया हेतु पिछड़ी हुई कृषि उत्पादन स्थिति से देश को औद्योगिक एव तकनीकी विकास की ओर अग्रसारित करना एव ससाधनों के समुचित प्रयोग को प्राप्त करना है । इन देशों के आर्थिक विकास की स्थिति एव आवश्यकता के सदर्भ मे यह कहा जाता है कि, अर्द्धविकसित देश वे है जहाँ आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व अगर अपने आप मे स्वतन्त्र छोड दिये जाये तो एक दीर्घकालीन सदर्भ मे वे समन्वय स्थापित करने मे असफल रहते है ।[12] उपरोक्त विकास प्रक्रिया एव विकास की आवश्यकता का अर्थ यह है कि अर्द्धविकसित देशों के आर्थिक विकास हेतु आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वों मे समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य में सरकारी नियन्त्रण एव आर्थिक नियोजन अपरिहार्य है ।

---

12. P.D. Hajela, Problems of Monetary Policy in Under-developed Countries, page 2.

2.2 विकास की रणनीति एवं विकास प्रक्रिया -

भारत के आर्थिक विकास के विश्लेषण मे विभिन्न क्षेत्रों के विकास के विवरण हेतु आर्थिक विकास की रणनीति एव विकास की प्रक्रिया का समावेश होना आवश्यक है । इस विकास की रणनीति एव प्रक्रिया का आधार विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे प्रयुक्त सवृद्धि के मॉडलों से है, जो अर्थव्यवस्था के समग्र चरों के साथ प्रयुक्त किया गया है, यद्यपि सरकारी विश्लेषण के अनुसार विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं मे स्पष्टत इन सवृद्धि मॉडलों का प्रयोग नहीं है कन्तु प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रुप में विभिन्न सवृद्धि मॉडलों के प्रयोग को देखा जा सकता है । प्रथम पचवर्षीय योजना मोटे तौर पर हैरॉड डोमर मॉडल पर आधारित कही जा सकती है और इसी प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना महालनोविस बहु आयामी मॉडल के रुप मे विद्यमान है । मान (Manne) multisector-terminal year model, Rudra, Saluja Subherwal & Srinivasan, the inter temporal consistency model, model of Bergsman & Manne and the linear optimization models of Sandee Lefber, Chakravorty, Eckaus and Parikh, Weisskopf, Manne & Weiskopf & Tendulkar [13]

विभिन्न योजनाओं मे इन मॉडलों मे विकास के विभिन्न उद्देश्यों को समग्र रुप मे समायोजित करने का प्रयास किया गया है । विकास की प्रक्रिया मे कभी आर्थिक कल्याण को अनुकूलतम करने तथा कभी कुल लागत को कम करने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु किसी भी योजना मे स्पष्टत एक उद्देश्य को प्राप्त करने का विश्लेषण नहीं किया गया है । इन मॉडलों में चरों का प्रयोग अधिकाशत व्यक्तिपरक (subjective) रुप मे हुआ है, अत कोई भी सामान्य तुलनात्मक निष्कर्ष निकाला नहीं जा सकता । इन मॉडलों के प्रयोग के उद्देश्य निम्नलिखित है -

---

13. Economic Theory & Planning Essays in Honour of A.K. Dasgupta Edited by Ashok Mitra Oxford University Press, 1974, usefulness of Plan Models : An assessment based on Indian Experiences, A Rudra page 177.

1- सरकारी तौर पर योजना के प्रमुख उद्देश्य एव लक्ष्य प्राप्त करने के सदर्भ मे वह आधार उत्पन्न करना जिससे इनमे आतरिक सगति उत्पन्न हो सके ।

2- योजना के वास्तविक लक्ष्यों एव उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिये आधार उत्पन्न करना ।

3- अर्थव्यवस्था की सरचना के संदर्भ मे आतरिक दृष्टिकोण तथा निर्णयों से सबंधित उचित नीति निर्धारण करना ।

4- विकास के विभिन्न उद्देश्यों के लिये मॉडलों का मूल्याकन करना एवं उपयुक्त विकासात्मक परियोजना तैयार करना ।[14]

विकास के संदर्भ मे विभिन्न योजनाओं मे प्रयुक्त सवृद्धि मॉडलों की अनेक सीमाये रहीं हैं, जहॉ विकास को इंगित करने वाले चरों मे पारस्परिक सबध व तुलनात्मक दृष्टि का अभाव रहा है वहीं इन मॉडलों की सबसे बड़ी कमी यह रही है कि विकास के लक्ष्यों के निर्धारण मे जो समय सकल्पना प्रयुक्त (involved) है, उनमे बड़ी ही अस्थिरता रही है । भारतीय नियोजन इस दृष्टि से एक तात्कालिक नियोजन (ad-hoc Planning) कहा जा सकता है, जिसमे दीर्घकालीन दृष्टिकोण का अभाव लगता है। साथ ही साथ इन लक्ष्यों मे विभिन्न आर्थिक लक्ष्यों का तो समावेश किया गया है किन्तु सामाजिक तथा गैर आर्थिक तत्वों की उपेक्षा की गई है । इन कमियों तथा सीमाओं के कारण, इन मॉडलों का बड़ा ही सीमित प्रयोग रहा है तथा किसी भी योजना के ये आधार नहीं कहे जा सकते । इन मॉडलों के सामाजिक कारकों के साथ-साथ सस्थागत कारकों का भी समावेश नहीं किया गया है । आर्थिक सरचना मे सस्थागत कारकों का महत्व और वह भी अर्द्धविकसित भारत जैसी अर्थव्यवस्था के लिये अपरिहार्य है । इन्हीं

---

14. Ibid. P.177

कारकों के साथ मानवीय कारकों तथा प्राकृतिक ससाधनों, प्रति व्यक्ति पूजी, व्यावहारिक ढॉचे को ध्यान मे नहीं रखा गया है । इन कमियों के कारण ये मॉडल अपने विश्लेषण तथा नीति निर्धारण मे बहुत सीमित हो जाते है ।

भारतीय पचवर्षीय योजनाओं मे आर्थिक विकास के सदर्भ मे उपर्युक्त निर्दिष्ट विभिन्न आर्थिक मॉडलों का प्रत्येक योजना की आर्थिक विकास प्रक्रिया मे सैद्धान्तिक आधार को प्रस्तुत किया जा सकता है । विश्व के अनेक देशों मे भारत एक महत्वपूर्ण देश है, जहॉ वास्तविक रुप मे नियोजन कार्यो मे सवृद्धि मॉडलों का प्रयोग हुआ है । भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे ही एक मॉडल निर्मित किया गया था, जिसमे आय, उपभोग व विनियोग के लक्ष्यों को निर्धारित किया गया था जिन्हे 25-30 वर्षों की समयावधि मे प्राप्त किया जाना था । इसी तरह 1955 मे द्वितीय पचवर्षीय योजना के निर्माण हेतु एक दूसरे मॉडल का प्रयोग किया गया था और बाद की पचवर्षीय योजनाओं मे भी अनेक आर्थिक मॉडलों को प्रयोग किया गया था । भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे 1952 मे प्रयुक्त किया गया मॉडल मूलत हैरॉड - डोमर सवृद्धि मॉडल पर आधारित था जो डोमर के सवृद्धि के स्थायी प्रवृत्ति के निम्न सूत्र के सबधित था -

$$\Delta I \times \frac{1}{\alpha} = I.\sigma$$

यहॉ पर I दिये गये समय मे विनियोग दर को सूचित करता है तथा α बचन की सीमान्त प्रवृत्ति को तथा विनियोग के औसत सामाजिक उत्पादकता को दिखाता है । इस समीकरण के आधार पर ΔI_1 को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और इस तरह विभिन्न अगले समयों के लिये विनियोग, आय, उपभोग की दरों को प्राप्त किया जा सकता है जो स्थायी सवृद्धि के समरुप हों । इस मॉडल मे 1950-51 मे I_0 को राष्ट्रीय आय का 5% माना गया है । इन आधारों पर यह दिखाया गया है कि 1950-51 मे राष्ट्रीय आय के 5% से विनियोग को 7% योजना के अन्त तक 11%

दूसरी योजना के अत तक तथा लगभग 20% 1967-68 तक प्राप्त किया जा सकता है। इस मॉडल द्वारा यह भी प्रदर्शित किया गया है कि यदि जनसख्या प्रतिवर्ष 1 5% से बढती है तो बचत की बढती हुई प्रवृत्तियों से प्रति व्यक्ति उपभोग मे कोई कमी न होगी । इसी तरह इस मॉडल का पयोग प्रति व्यक्ति आय 1950-51 के स्तर से छठी योजना तक दूने हो जाने को ही दिखाने के लिये प्रयोग किया गया था । यहॉ यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है कि इस मॉडल के निर्दिष्ट लक्ष्यों को द्वितीय, तृतीय तथा अन्य योजनाओं मे भी महत्व दिया गया है, यद्यपि विनियोग नियोजन का प्रारुप दूसरी योजना से महत्वपूर्ण रुप से परिवर्तित हो गया है ।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के विकास का आधार प्रो0 महालनोविस का मॉडल था । इस मॉडल का प्रारम्भिक रुप हैरॉड डोमर सवृद्धि मॉडल से बहुत मिलता है । मॉडल के प्रारम्भिक निर्माण मे आय वृद्धि की दर, विनियोग के लिये शुद्ध राष्ट्रीय आय, प्रति विनियोग इकाई के समय दर से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि, अतिरिक्त आय मे वृद्धि तथा जनसख्या वृद्धि को प्रमुख रुप से लिया गया है । महालनोविस मॉडल के उपागम मे महत्वपूर्ण परिवर्तन 1953 मे आया जब उन्होंने अर्थव्यवस्था मे विनियोग के सवृद्धि दर के साथ पूजी वस्तु उद्योगों मे उत्पादन सवृद्धि दर का विश्लेषण किया । इस सदर्भ मे उन्होंने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि घरेलू पूजी वस्तु उद्योगों का उत्पादन पूजी आयातों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता, जैसे ही इस मान्यता को स्वीकार किया गया इसके बाद पूजी वस्तु उद्योगों मे कुल विनियोग के निर्धारण पर अधिक बल दिया जाने लगा । प्रारम्भ मे यह मॉडल द्वि क्षेत्रीय अर्थात् उपभोग वस्तु (C) तथा पूजी वस्तु (K) क्षेत्र से सबधित था । इस मॉडल का निर्माण व परिवर्तन 1953 के बाद भी होता रहा जो मुख्य रुप से द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रारुप के आधार को प्रस्तुत करने मे सहायक हो सका । महालनोविस मॉडल सवृद्धि सबधी अनेक सैद्धान्तिक व व्यावहारिक बातों को प्रस्तुत कररता है । इस मॉडल का अतत स्वरुप दो क्षेत्रीय विश्लेषण के स्थान पर चार क्षेत्रीय विश्लेषण के रुप मे हो गया जिसमे प्रथम क्षेत्र (C) मुख्य रुप से

उपयोग वस्तुओं के उत्पादन द्वितीय क्षेत्र (I) उपभोग वस्तुओं के लिये विनियोग वस्तुओं को उत्पादित करने से सबधित, तृतीय क्षेत्र (R) अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के लिये कच्चे माल तथा मध्यस्थ वस्तुओं को उत्पन्न करने से सबधित तथा चौथा क्षेत्र (M) जो क्षेत्र I तथा R के लिये विनियोग वस्तुओं को उत्पन्न करने से सबधित है । इस तरह अर्थव्यवस्था का चार क्षेत्रों मे विभाजन और उनका पारस्परिक क्षेत्रीय सबध एक जटिल विश्लेषण का विषय है । इस मॉडल के साराशत विश्लेषण के रुप मे यह देखा जा सकता है कि देश मे कृषि क्षेत्र के विकास और महत्व की तुलना मे पूजी वृहत् क्षेत्र और पूजी प्रधान बडे उद्योगों के विकास तथा औद्योगीकरण को अधिक महत्व दिया गया है ।

भारत की तीसरी पचवर्षीय योजना मे विकास की युक्ति योजना आयोग के दृष्टि योजना विभाग (perspective planning division) द्वारा विकसित बहु क्षेत्रीय मॉडल पर आधारित है । इस मॉडल मे यह प्रदर्शित किया जाना सभव है कि इसमे आर्थिक परिणाम अधिक वास्तविक व महत्वपूर्ण रुप मे प्राप्त हो सके तथा इसमे आगत निर्गत के पारस्परिक सबधों व रोजगार को भी दिखाया जा सकता है । साथ ही साथ इस विश्लेषण मे विदेशी व्यापार व विदेशी सहायता का समावेश अन्य समस्याओं के सदर्भ मे किया जा सकता है । यह महत्वपूर्ण बात है कि नियोजन व आर्थिक सवृद्धि मे अर्थव्यवस्था के बहु क्षेत्रीय सवृद्धि मॉडल का पारस्परिक सबध बहुत महत्वपूर्ण हो गया है और यह देखा जा सकता है कि देश की चौथी व पॉचवीं योजनाये इस तरह के बहु क्षेत्रीय सवृद्धि मॉडलों पर अधिक रुप से आश्रित रही है । इस योजना के सवृद्धि मॉडल को सामान्यतया सैण्डी (Sandiee) द्वारा निर्मित सवृद्धि मॉडल के रुप मे माना जाता है । इस मॉडल मे भी द्वितीय योजना की तरह तीव्र औद्योगीकरण को वरीयता दी गयी थी । यह महत्वपूर्ण बात है कि कृषि व औद्योगिक विकास की प्राथमिकता के साथ-साथ भारतीय नियोजन प्रक्रिया मे पहली बार स्पष्ट रुप से उद्देश्य के रुप मे रखा गया कि आय व धन की असमानता को घटाकर आर्थिक शक्ति का समान वितरण

किया जाये और इस उद्देश्य से जुडा हुआ दूसरा उद्देश्य यह भी रखा गया कि देश की जनशक्ति के अधिकतम उपयोग के लिये रोजगार अवसरों मे प्रसार किया जाये। इस योजना मे सवृद्धि को सतुलित विकास युक्ति पर रखने का प्रयास किया गया जिसके अन्तर्गत कृषि, उद्योग व निर्यात के लिये विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किये गये । इस योजना काल मे ही विदेशी आक्रमण व सूखे की स्थिति के कारण चौथी पचवर्षीय योजना समय से प्रारम्भ न हो सकी जिसके कारण 1966 से 1969 की समयावधि मे वार्षिक योजनाओं की युक्ति को रखा गया । वार्षिक योजनाओं द्वारा विकास लक्ष्य अर्थव्यवस्था मे उत्पन्न समस्याओं तथा आर्थिक कठिनाइयों को दूर कर समुचित विकास दर प्राप्त करना था तथा देश को विषम आर्थिक परिस्थिति से निकाल कर सामान्य आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे ले आना था ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे विकास मॉडल और विकास के उद्देश्य पूर्व योजनाओं की तुलना मे महत्वपूर्ण रुप से भिन्न है । इस योजना के विकास मॉडल मे इस बात को विशेष रुप से स्थापित किया गया कि आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय मे कोई अन्तर्विरोध नहीं है और इस योजना मे केवल समग्र आर्थिक विकास के अधिकतम करने के लक्ष्य के स्थान पर अधिकतम आर्थिक विकास तथा साथ ही साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्य को भी प्राप्त करने पर बल दिया गया । इस योजना मे विशेषकर गरीबी हटाओ तथा बेरोजगारी दूर करने जैसे समस्याओं के समाधान के उद्देश्य को सामाजिक न्याय के प्रमुख अग के रुप मे स्वीकार किया गया । इस योजना के लिये 1965 मे अशोक रुद्र तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने एक सामजस्यपूर्ण मॉडल प्रस्तुत किया था जो लिऑन्तीफ (Leontiff) की परम्परागत अन्त उद्योग खुली व्यवस्था (inter industry open economy) पर आधारित था । परिणामस्वरुप इस मॉडल के आधार पर विकास के स्वरुप को विकेन्द्रित विकास की प्रक्रिया के रुप मे प्रारम्भ किया गया । इस योजना व सवृद्धि मॉडल के निर्माण मे प्रो0 डी आर गाडगिल का मुख्य योगदान था । इस योजना का प्रमुख लक्ष्य तीव्र विकास के साथ समानता और

सामाजिक न्याय को भी प्रापत करना था ।[15] इस योजना मे विकास के साथ-साथ स्थायित्वता प्राप्त करने पर भी जोर दिया गया तथा आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने मे विशेषत 1970-71 के पश्चात् पी यल 480 के अन्तर्गत खाद्यान्नों के आयात को समाप्त करने का निर्णय लिया गया । विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे चौथी योजना से ही देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे क्रातिकारी परिवर्तन का सूत्रपात हुआ जो कि पॉचवीं तथा उसके बाद की योजनाओं मे कृषि तथा ग्रामीण विकास की विभिन्न नीतियों मे परिलक्षित होता है ।

पॉचवीं योजना मे विकास प्रक्रिया व उसकी युक्ति चौथी योजना की ही क्रमबद्धता मे विकास के साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करना रहा है । इस योजना के विकास का आधार योजना आयोग के दृष्टि योजना विभाग द्वारा प्रस्तुत एक तकनीकी लेख ' ' A Technical Note On The Approach To The Fifth Five Year Plan of India 1974-79' पर आधारित था । इस सवृद्धि मॉडल को मूलरुप से 1970-72 की कीमतों पर आधारित करके तेयार किया गया था जबकि पॉचवीं योजना का मॉडल 1974-75 की कीमतों के आधार पर बनाया गया है । इस मॉडल मे पुन गरीबी निवारण व आत्मनिर्भरता की प्राप्ति पर बल दिया गया । इस योजना मे राष्ट्रीय न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को प्रारम्भ कर देश के पिछडे, उपेक्षित व गरीब क्षेत्रों को विकास की धारा मे जोडने से रहा है । इसी योजना मे बेसिक शिक्षा, पेय-जल की समस्या, ग्रामीण क्षेत्रों मे चिकित्सा सुविधा, भूमिहीन श्रमिकों को भूमि व अन्य सुविधाओं की व्यवस्था तथा ग्रामीण औद्योगीकरण आदि विकास नीति के प्रमुख आयाम के रुप मे उत्पन्न हुये । इस योजना मे सार्वजनिक वितरण प्रणाली व्यवस्था, निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात प्रतिस्थापन जैसी महत्वपूर्ण बातों पर जोर दिया गया । विकास युक्ति के इन विशिष्ट उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय की जिस सकल्पना का सूत्रपात चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे किया गया उसे अधिक

---

15. A Rudra & others : A Consistency Model For India's Fourth Plan, Sankhya Vol. 27, 1965.

प्रभावी तथा महत्वपूर्ण रुप से प्राप्त करने का आधार इस योजना मे रखा गया । सक्षेप मे इस योजना मे प्रयुक्त विकास मॉडल मुख्य रुप से विनियोग स्तर को ज्ञात करने के लिये एक समष्टि स्तरीय विकास का स्वरुप, क्षेत्रीय उत्पादन और आयात स्तरों के अनुमान हेतु एक आगत निर्गत विश्लेषण तथा वैकल्पिक मान्यताओं के अन्तर्गत क्षेत्रगत उपभोग स्तरों के अनुमान हेतु एक विश्लेषण से सबधित है ।[16]

छठी पचवर्षीय योजना (1980-85) के प्रारम्भ मे ही अत्यधिक स्फीतिकारी दबावों से उत्पन्न आर्थिक समस्याओं विशेषकर देश के आवश्यक क्षेत्रों - शक्ति, कोयला, रेल व स्टील तथा पेट्रोलियम उत्पादों के बढते मूल्य से अर्थव्यवस्था की समग्र विकास सभावनाये प्रभावित रहीं तथा साथ ही अतिरिक्त ससाधनों को उगाहने की सभावनाये भी क्षीण रही । इसी के साथ-साथ देश की भुगतान सतुलन की सभावनाये भी विदेशी विनिमय की कठिन समस्या के साथ चिन्ताजनक रही । छठी योजना की इस पृष्ठभूमि के सदर्भ मे यह अनुभव किया गया कि प्रथम चार पचवर्षीय योजनाओं मे अपनायी गयी विकास रणनीति मे क्या कमियाँ व असफलताये रहीं व किस तरह गरीबी व बेरोजगारी की समस्याओं का समाधान तीव्र आर्थिक विकास व वृहत् उद्योगों द्वारा सभव न हो सका। इस सबध मे यह उल्लेखनीय है कि पॉचवीं योजना के उपागम मे प्रस्तुत एक प्रारुप योजना आयोग, सी सुब्रहमनीयम 1972 मे यह स्पष्ट किया गया कि 'अर्थव्यवस्था के मात्र आर्थिक सवृद्धि दर को बढा लेना ही देश की गरीबी निवारण का आधार नहीं है और इस उपागम मे देश की बेरोजगारी अर्द्ध बेरोजगारी तथा अत्यधिक निम्न स्तर पर व्याप्त गरीबी की समस्याओं पर प्रत्यक्ष व सीधा प्रहार शुरु करने की आवश्यकता है।[17]

इस सबध मे यह उल्लेख किया जा सकता है कि जनता सरकार की छठी योजना (1978-83) मे इस उपागम प्रपत्र को विकास रणनीति के रुप मे स्वीकार किया किन्तु कांग्रेस सरकार की ही छठी योजना (1980-85) ने इन सभी प्रयासों को

---

16. Smt. Indira Gandhi : Foreword In Sixth Five Year Plan, Sixth Five Year Plan, page 1&2 Eng.Version.
17. Planning Commission, Towards & Approaches To The Fifth Plan, 1992, page 5.

तिरस्कृत करके भारतीय अर्थव्यवस्था मे कुछ नये परिवर्तन व नई दिशा देने का प्रयास किया । इस सम्बन्ध मे इस नई छठी योजना की विकास रणनीति मे विकास की परम्परागत रणनीति को अपनाते हुये वृहत उद्योगों के आधार पर तीव्र आर्थिक विकास पर बल दिया गया । योजना की इस रणनीति मे रोजगार अवसरों तथा आवश्यक न्यूनतम योजना द्वारा सामाजिक न्याय को दूसरे स्थान पर रखा गया । छठी योजना की रणनीति के सदर्भ मे यह दिखाया जा सकता है कि, 'इस योजना मे विकास की रणनीति कृषि तथा उद्योग दोनों मे अधोसरचना (infrastructure) को विकसित करके ऐसी दशाओं को उत्पन्न करना है, जिससे विनियोग उत्पादन व निर्यातों मे तीव्र वृद्धि हो सके तथा साथ ही साथ इस सम्बन्ध मे विशिष्ट कार्यक्रमों के माध्यम से अधिक रोजगार अवसरों विशेषकर ग्रामीण व असगठित क्षेत्रों मे उत्पन्न करने से है जिससे लोगों की न्यूनतम आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके ।[18]

इस योजना मे उपर्युक्त विकास व्यूह नीति अपनाने के साथ-साथ नियोजक इस व्यूह नीति की आतरिक कमजोरियों से भी अवगत थे । इस योजना मे यह स्पष्ट कहा गया है कि, 'गरीबी की समस्या पर प्रहार तब अधिक प्रभावी होता है जब अर्थव्यवस्था विस्तार की दशाओं मे हो चूँकि सवृद्धि अपने आप मे इस उद्देश्य के लिये पर्याप्त नहीं है। अत अन्य कार्यक्रमों व नीतियों को अपनाने की भी आवश्यकता है ।[19] इस स्थिति के होते हुये भी नियोजकों के लिये यह सभव न हो सका कि दूसरी पचवर्षीय योजना से क्रियाशील नेहरु व महालनोविस विकास रणनीति को छोड सके ।

---

18. Sixth Five Year Plan (1980-85), page no. 34
19. Sixth Five Year Plan (1980-85), page 34

छठी योजना के बाद सातवीं योजना के प्रारम्भ मे नियोजकों ने इस बात को स्पष्टत स्वीकार किया कि योजना अवधि मे देश के प्रभावी आर्थिक विकास के परिणामस्वरुप महत्वपूर्ण उद्देश्यों को प्राप्त करते हुये देश आत्मनिर्भरित अर्थव्यवस्था के रुप मे समानता व सामाजिक न्याय के आधार पर एक सुदृढ सामाजिक व्यवस्था स्थापित कर चुका है । इस तरह छठी योजना की सफलतापूर्ण समाप्ति के बाद नियोजकों के लिये सभव हो सका कि तीव्र आत्म निर्भरित आर्थिक विकास एव सामाजिक न्याय को व्यापक स्तर पर प्राप्त किया जाये । फलत इस योजना के विकास की व्यूहनीति मोटे तौर पर खाद्यान्न उत्पादनों मे तीव्र वृद्धि तथा रोजगार अवसरों मे वृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता बढाने से रहा । इस तरह सातवीं योजना मे विकास युक्ति का केन्द्र खाद्यान्न उत्पादन व रोजगार कार्य तथा उत्पादकता मे वृद्धि रहा । यद्यपि छठी योजना मे प्रयुक्त विकास व्यूह नीति में यह देखा जा सकता है कि उसमे महालनोबिस मॉडल की विकास युक्ति से कुछ अलग विकास प्रवृत्ति रही पर मोटे तौर पर छठी योजना उसी विकास युक्ति के ढॉचे मे सीमित रही। इस सम्बन्ध मे इस बात पर जोर देना महत्वपूर्ण रहेगा कि सातवीं पचवर्षीय योजना की विकास व्यूह नीति महत्वपूर्ण रुप मे छठी योजना की विकास व्यूह नीति से भिन्न रखी गई । इस योजना की विकास नीति मे बडे महत्वपूर्ण ढग से बेरोजगारी, गरीबी, क्षेत्रीय असमानताओं और पूरे सामाजिक न्याय की समस्या पर प्रत्यक्ष प्रहार की व्यूहनीति अपनायी गयी । ग्रामीण क्षेत्रों मे रोजगार संभावनाओं को बढाने के लिये जहॉ उसे उत्पादकता वृद्धि से जोडा गया वहीं भूमिहीन श्रमिकों, छोटे व सीमान्त कृषकों तथा गैर कृषि व तकनीकी श्रमिकों को अतिरिक्त आय सृजन व उत्पादक रोजगार कार्यो से जोडा गया । इस योजना मे साथ ही साथ स्फीतिकारी प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से सामान्य वस्तुओं के उपभोग के उत्पादन को विशेष बल दिया गया । वस्तुत इस योजना मे आवश्यक उपभोग वस्तुओं तथा कृषि खाद्यान्नों के उत्पादन पर बल देकर स्फीतिकारी दबावों को नियन्त्रित करके इस योजना की विकास व्यूहनीति के सामाजिक न्याय उद्देश्य को प्राप्त करना था ।

विकास व्यूहनीति के सदर्भ मे इस योजना मे उपलब्ध उत्पादन क्षमता के प्रयोग तथा निवेश को बढाने से ही रहा है । इस सबध मे इस योजना मे उत्पादक क्षेत्रों मे आधुनिकीकरण तथा पूजी प्रधान व नई तकनीकी के प्रयोग पर भी बल दिया गया । इसका उद्देश्य जहाँ घरेलू वस्तुओं के उत्पादन व उद्योगों को विकसित करना था वहीं इन उद्योगों व वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों मे भी अन्य देशों की वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धी बनाने का भी था । इस तरह इस योजना की विकास युक्ति का विशेष आकर्षण विन्दु अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों मे उन्नत व नवीन तकनीकी का प्रयोग था पर इस सम्बन्ध मे इस योजना की यह विशेष उल्लेखनीय बात रही कि पर्यावरण को दूषित तथा प्रदूषण को बढाने वाली औद्योगिक इकाइयों व तकनीकी को हतोत्साहित किया गया । देश की विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे इस योजना मे सबसे पहली बार प्रदूषण की गभीर समस्या को स्वीकार किया गया तथा पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना इस योजना की विकास युक्ति का अभिन्न अग रहा ।

भारतीय नियोजन तथा नेहरु बनाम गाँधी सवृद्धि माडल -

भारतीय नियोजन मे 1977 के पूर्व विकास मॉडल का स्वरुप नेहरु के वृहद् उद्योग मॉडल पर आधारित था जिसके अन्तर्गत वृहद् औद्योगिक विकास द्वारा विकास आधार को दृढ बनाना तथा विदेशी निर्भरता को कम करना था । इस तरह राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विकास की आधारशिला के आधार पर देश विश्व के औद्योगिक राष्ट्रों मे दसवे स्थान को प्राप्त कर सका, किन्तु सवृद्धि के नेहरु मॉडल की अनेक कमियाँ रहीं है। यह देश मे न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन निर्वाह को देने मे असफल रहा है। इतने समय के बाद भी अभी जनसख्या के 40% से भी अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते है । साथ ही साथ देश मे बेरोजगार तथा अर्द्धरोजगार लोगों की सख्या लगातार बढती जा रही है । इसी तरह आर्थिक असमानताओं मे भी वृद्धि हुयी है तथा आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण कुछ ही लोगों तक सीमित रहा है । ग्रामीण क्षेत्रों

मे भूमि सुधार प्रभावी ढग से क्रियान्वित नहीं किये गये है जिससे कृषकों मे असतोष व्याप्त है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही है कि इस नियोजन के परिणामस्वरुप देश मे कुछ न कुछ वस्तुओं का अभाव रहा है और अत्यधिक मुद्रास्फीति की दशाये विद्यमान रहीं है । इस बात को जे0डी0 सेठी ने स्पष्ट किया कि, "When Nehru admitted in 1964 that he had failed Gandhi it was too late. On the other hand, the Indian Marxists, who had promised to produce an alternative to both Gandhi and Capitalism chose to tie themselves to Moscow & Nehru during whose regime Indian big business experienced fastest growth rate ever as poverty and inequalities lincreased.[20]

भारतीय नियोजन मे 1977 के बाद जनता पार्टी ने गाँधी के समाजवादी दृष्टिकोण को विकास उद्देश्यों की प्राप्ति का आधार माना । गाधी देश के कृषि उद्योग तथा अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण नीतियों को प्रतिपादित करके देश के भौतिक तथा सास्कृतिक विकास मे वृद्धि करना चाहते थे । प्रधानतया यह देश के गॉवों की अर्थव्यवस्था सुधारकर सभी को ऊँचे जीवन स्तर उपलब्ध कराने से सम्बन्धित व्यवस्था थी। इसमे वैज्ञानिक विकास आधार पर देश के कृषि तथा ग्रामीण व लघु उद्योगों का विकास सम्मिलित है । कृषि विकास के सम्बन्ध मे यह मॉडल इस क्षेत्र को सबसे महत्वपूर्ण मानता है और इसका विकास भूमि सुधार उपायों, चकबन्दी व सहकारी समितियों द्वारा किया जा सकता है । ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र की क्रियाओं मे ग्रामीण महाजन के स्थान पर उपयुक्त साख सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

---

20. J.D. Sethi - Gandhi Betrayed, Indian Express October 6, 1982.

गाँधी के अनुसार जिस प्रकार गाँव मे प्रत्येक ग्रामवासी स्वय श्रम करके अपने लिये भोज्य सामग्री उत्पन्न करता है तथा आवश्यकता से अधिक होने पर विक्रय करता है । ठीक उसी प्रकार यदि वे अपने लिये कपडा भी बना लें तथा अधिक होने पर उसे बेंचकर लाभ कमाये तो इस दिशा मे भी वे आत्मनिर्भर हो सकते है । इसके लिये प्रत्येक ग्रामवासी को कुटीर उद्योग के सगठन तथा विकास हेतु आगे आना चाहिये । साथ ही साथ गाँधी की योजनानुसार सरकार को ग्रामीण कुटीर उद्योग के विस्तार तथा पुनर्गठन पर विशेष ध्यान अपनी औद्योगिक नीति मे देना चाहिए ।

J.D. Sethi - Gandhi placed maximum emphasis on swadeshi; Swadeshi was not narrow nationalism : it implied an extended link between the villages, the nation and the global system. It was not a limited economic concept. It at once meant the antonomy of the individual and reliance of the nation."

गाँधी ने स्पष्ट शब्दों मे ग्रामीण उद्योग तथा पूजी प्रधान ढाँचे पर औद्योगीकरण के बीच सघर्ष, जोकि उच्च कोटि के नगरीकरण पर आधारित था ध्यान आकृष्ट किया । इसका स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि आज का भारत गाँधीजी के द्वारा बताये गये विकास की रणनीति के विपरीत दिशा मे चल रहा है । कानपुर आई आई टी के ई हरिबाबू (E.Haribabu) के अनुसार - " the twin compulsions of reconstructing the economy and achieving rapid economic development after Independence, promoted India's rulers to adopt a model of development based on the experience of the West: The implicit emphasis on capital-intensive industrialisation and urbanisation. Over a time a

distinct bias became apparent towards urban settlements in general and big cities in particular."

स्वतन्त्रता के बाद भारत के औद्योगिक विकास मे ग्रामीण क्षेत्रों की भूमिका को बताते हुये स्वर्गीय श्री अन्नासाहेब सहस्त्रबुधे (Late Annasaheb Sahasrabudhe) ने लिखा है - "The rural areas were encouraged to start such industreies which provide urban population with things like milk, vegetables, oil seeds, cotton & foodgrains & purchase from the urban areas items such as cloth, oil & other manufactures." स्पष्ट है कि ग्रामीण द्वितीय कोटि के नागरिक के रुप मे परिणत हो गये है क्योंकि वे सस्ते कच्चे माल तथा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं को नगरों के सगठित क्षेत्र के लिये पूर्ति करते है । क्लॉड एल्वारेस (Clande Alvares) के अनुसार - The principal element in this strategy is the transfer of all but most primitive jobs to the cities. In 1910, village industries consituted 40% of the labour force. By 1946, this had decreased to 10%. Today they remain at 2%. How long can we continue to assume the illusion that was wicked but that when we do so, it is desirable.[21]

---

21. Quoted by Cland Alvares, Gandhi's Second Assasination, Indian Express, January 29,1984.

गाँधी जी के बारे मे यह सामान्य गलत अवधारणा है कि वे वृहद उद्योगों के विरुद्ध थे । दूसरी ओर गाँधीजी की योजना मे कुछ चुने हुये वृहत उद्योगों पर बल देना था जिसमे रक्षा उद्योगों, जल विद्युत, ताप शक्ति उत्पादन, खनन तथा मेटलर्जी मशीनरी तथा मशीन, यन्त्र, भारी इजीनियरिग व रसायन था । गाँधीजी चाहते थे कि वृहत उद्योगों का विकास हो किन्तु वे कुटीर उद्योगों के विकास मे बाधक न हों । उनके अनुसार वृहत उद्योग सरकार के अधीन व सचालन मे हों, पर हो जनक्षेत्र मे ।

गाँधीजी की मशीन के प्रति अवधारणा पर भी बहुत मतभेद है। चूँकि गाँधीजी ने कुटीर उद्योग व हथकरघा उद्योग पर अधिक बल दिया इसलिये लोग यह समझते है कि वे आधुनिक मशीन के विरुद्ध थे । उनका मानना था कि फैक्ट्री प्रक्रिया मे ऐसी बडी मशीनों के प्रयोग से अधिक मात्रा मे श्रमिकों का शोषण कुछ पूजीपतियों द्वारा किया जाता है । वे ऐसी मशीनों के पक्षधर थे जो कि ग्रामवासियों के भार को तो हल्का करे किन्तु मानव श्रम को विस्थापित न करे । उनके अनुसार वे ही मशीनें श्रेष्ठ है जो सबके हित मे कार्य करे न कि कुछ के स्वार्थ लाभ हेतु ।

गाँधी जी का मॉडल वास्तव मे हमारी अर्थव्यवस्था के अनुरुप है तथा इसमे कृषि के साथ उद्योग के विकास को महत्व दिया गया है । आज के योजना प्रारुप मे गाँधीजी के विकास मॉडल के अनुसार निम्न परिवर्तन लाने होगें -

(1) हमारी सबसे बडी शत्रु बेरोजगारी है ओर इसी के समाधान के अन्तर्गत गरीबी व बेरोजगारी की समस्या का निवारण है । इसी के समर्थन मे उत्पादन जन्य योजना को हटाकर रोजगार जन्य योजना पर बल देना चाहिये ।

(2) कृषि रोजगार के लिये बहुत से अवसर उपलब्ध कराता है (अ) कृषि के पशु पालन कम्पोस्ट उत्पादन, गोबर गैस आदि ।

(ब) ग्राम कार्य जेसे - सिचाई, परियोजना, मृदा सरक्षण बनारोपण आदि ।

(स) ग्राम्य एव कुटीर उद्योग

(3) गाँधीजी का सवृद्धि मॉडल लघु उद्योग एव कुटीर उद्योग का पक्षधर था किन्तु वृहत उद्योगों के विरुद्ध था । इसके प्रबल समर्थक चरण सिह के अनुसार - " No medium or large scale enterprise shall be allowed to come into existence in future which will produce goods or services that cottage or small scale enterprises can produce and no small scale industry shall be allowed to be established which will produce goods or services that cottage enterprise can produce.[22]

(4) कुछ लोगों के हाथ मे आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण तथा आय की असमानता ये दो आर्थिक आपदाये भारतीय आयोजन के समक्ष है । गाँधीजी के अनुसार आर्थिक शक्ति का सक्रेन्द्रण का कारण उत्पादन के साधनों का तथा वृहत पैमाने पर उत्पादन का केन्द्रीकरण हे । इसका प्राकृतिक समाधान विकेन्द्रीकरण है जो कि लघु उद्योग उत्पादन के द्वारा सभव है । यदि वृहत उद्योग अति आवश्यक हों तो वह सरकार के अधीन ही रहे । गाँधी के मॉडल मे वितरण उत्पादन स्तरपर ही किया जाना चाहिये उपभोग स्तर पर नहीं ।

गाँधीजी का मॉडल यह विश्वास प्रकट करता है कि उसके द्वारा कम समये मे ही राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर को प्राप्त किया जा सकता है तथा स्थिरता के साथ आर्थिक सक्रेन्द्रण एव आय की असमानता को दूर किया जा सकता है । दूसरे शब्दों मे यह

---

22. Charan Singh, India's Economic Policy, page 162.

नेहरु व महालनोविस के मॉडल की कमियों को दूर करने मे भी सक्षम है ।

नेहरु एवं गॉधी मॉडल का समन्वय - एकमात्र उपाय :-

यद्यपि नेहरु जी ने भारी उद्योगों पर बल दिया तथा गॉधी मॉडल मे कृषि, हस्तकला तथा कुटीर उद्योग पर बल दिया गया । नेहरु का मॉडल 1950 तथा 1960 के दशक मे विकास के अनुरुप ही केवल मान्य था क्योंकि उस समय रक्षा वस्तुओं के उत्पादन हेतु भारी उद्योगों की आवश्यकता थी किन्तु अब जबकि देश का रक्षा उद्योग पूर्णत सक्षम हो गया है तो आवश्यकता उपभोग उद्योगों तथा छोटे एव कुटीर उद्योगों की है ।

सत्य है कि लघु एव कुटीर उद्योग बहुत ही लाभकारी भूमिका भारत के उत्पादन तथा रोजगार के सदर्भ मे निभा रहे है परन्तु यह उचित न होगा कि भविष्य मे भारी उद्योग के विकास की ओर ध्यान दिया जाये । यद्यपि भारतवर्ष ने 1951 से प्रशसनीय प्रगति की है तथा ससार के प्रमुख औद्योगिक देशों मे दसवा स्थान सुनिश्चित किया है परन्तु अभी तक उसने प्रति व्यक्ति स्टील उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति विद्युत ऊर्जा उत्पादन के सदर्भ मे उचित स्तर प्राप्त नहीं किया है जबकि यह दोनों ही कुटीर तथा लघु उद्योग के विस्तार के लिए आवश्यक है । भारत का 1980 मे स्टील का प्रति व्यक्ति उत्पादन 14 किग्रा0 था जबकि यही यू0एस0एस0आर0 का 557 किग्रा तथा यू0एस0ए0 का 446 किग्रा0 तथा यू0एस0ए0 का 446 किग्रा0 था । स्टील तथा विद्युत उत्पादन के संदर्भ मे उत्पादन का पैमाना नीचा है जो भारी उद्योग मे विनियोग की गति निम्न कर रहा है । आत्मनिर्भरता तथा रक्षा तत्परता के लक्ष्य के अलावा जो महत्व-पूर्ण हैं पर उतने नहीं जितने गरीबी निवारण, बेरोजगारी तथा सम्पत्ति एवं आय की असमानता को दूर करना । गॉधीजी के नाम पर भारी उद्योगों के विनियोग मे मदी लाना या उन्हे बन्द करना वास्तव मे गलत होगा क्योंकि गॉधीजी बडे उद्योगों के विरुद्ध नहीं थे। सत्य तो यह है कि गॉधीवादी योजना (1944) के अन्तर्गत कुछ प्रमुख आधारभूत

उद्योगों जैसे शक्ति, लोहा एव इस्पात, मशीनरी तथा यन्त्र, भारी इजीनियरिग व रसायनों के उत्पादन पर बल दिया गया ।

एक अच्छी स्थिति में मध्यम तथा बडे उद्योग उपक्रम जो कि उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन कर रही हों से विनियोग का हस्तान्तरण कुटीर तथा लघु उद्योग की ओर हो सकता है । नये लाइसेन्स अब नये मध्यम तथा बडे उद्योगों की इकाइयों को न दिये जाये जोकि उत्पादन तथा रोजगार दोनों के हित मे हों । नेहरु तथा महालनोविस मॉडल भी कुटीर तथा लघु उद्योग के पक्ष मे था । यद्यपि उत्पादन लागत लघु औद्योगिक इकाई मे अधिक थी फिर प्रो0 महालनोविस ने कहा कि सस्ती शक्ति के विस्तार से देश मे छोटे उद्योगों तथा बडे उद्योगों की लागत मे अन्तर नहीं रहना चाहिये परन्तु जब नेहरु महालनोविस मॉडल को कार्यान्वित किया गया तो लघु एव कुटीर उद्योगों के प्रति सौतेला व्यवहार सरकार तथा बड़े उद्योगों एवं मध्यम आकार की इकाइयों ने उपभोग वस्तुओं के क्षेत्र मे भी कुटीर उद्योगों का गला घोंट दिया । 1977 की औद्योगिक नीति के द्वारा जनता दल ने इस भूल को सुधारना चाहा किन्तु कांग्रेस (आई) सरकार ने पुन. आर्थिक संवृद्धि तथा निर्यात सवर्धन के नाम पर पुन बड़े उद्योगों तथा बहु राष्ट्रीय कम्पनी को बढ़ावा दिया ।

लघु एव कुटीर उद्योग को सक्रिय सहायता तथा प्रोत्साहन यह प्रदर्शित नहीं करता है कि विद्यमान बड़ी एव मध्यम इकाइयॉ जो कि उपभोग वस्तुओं के क्षेत्र में है अपना उत्पादन बन्द कर देगी या फिर इस शर्त पर उत्पादन करेगी कि सम्पूर्ण उत्पादन विदेश को निर्यात करेंगी । यह सुझाव अनुचित तथा यथार्थ से परे है । इकाइयॉ जो कि वर्षों से विश्व व घरेलू बाजार के लिये उत्पादन कर रही है, उन्हे न तो अचानक बन्द किया जाना चाहिये और न ही ऐसा किया जा सकता है कि वह अपना उत्पादन नई दिशा में परिवर्तित करे तथा उसे अधिक से अधिक मात्रा मे विदेश भेजने योग्य बनायें ।

इसी समय लघु उद्योगों को सहायता देकर उनके उत्पादन के स्तर को परिवर्तित करके उनकी उत्पादन लागत को कम करके प्रतियोगिता के स्तर पर लाना चाहिये ।

चीन ने गाँधीजी के मार्ग का पालन करके भारत की अपेक्षा अच्छी तरह अपने निवासियों को भोजन तथा वस्त्र सुलभ कराया है । चरन सिह ने लिखा है - Various reports from unimpeachable sources indicate that only had Mao. Tse tung given first priority to agriculture since 1962 but he had relied more on human labour & decentralised labour intensive enterprises in building his country than on large scale mechanised projects & industries.[23]

उदाहरणस्वरुप चीन ने अपने प्रथम योजना काल (1953-57) में 50% विनियोग आधारभूत उद्योग पर किया । उसके बाद कृषि तथा उद्योग को साथ-साथ विकसित किया । अत कहा जाता है कि उसने दोनों पैरों पर चलने के सिद्धान्त (the theory of walking on two legs) पर कार्य किया । चीन ने कभी भी वृहत उद्योगों को अनदेखा नहीं किया जबकि कृषि को प्रमुखता दी। उसने अपने रक्षा उद्योग को भी विकसित किया तथा सोवियत रुस की अधीनता भी अस्वीकार की जबकि वह पहले रुस से सैनिक सहायता लेता था । चीन की सफलता वास्तव में सोवियत मॉडल तथा गाँधी मॉडल मे सामंजस्य के कारण सभव हुई । भारतीय नियोजकों की कमी वास्तव मे नेहरु महालनोविस मॉडल के विनियोग रणनीति मे नहीं थी बल्कि उसके सही कार्यान्वयन न होने मे थी । इसमें वृहत उद्योगों पर तो बल दिया गया पर योजना मे जो कृषि तथा छोटे एवं कुटीर उद्योग से सबधित क्षेत्र था उसे अनदेखा किया गया । विकास के सबंध मे जे0डी0 सेठी ने स्पष्ट लिखा है -

---

23. Charan Singh, op. cit page 69. India's Economic Policy Gandhian Blue Print (1978).

Today both the private sector and the public sector represent a gross irresponsibility or wastefulness which takes the form of high capital intensity, unutilised capacities and production of goods that deny basic needs of the common man. One does not have invoke Gandhi to point out that no poor country can afford such a high capital. Output ratio we have and that without a full empoloyment objective there can be no growth with social justice.[24]

यह कहना उचित नहीं होगा कि महालनोबिस नेहरु मॉडल ने कृषि तथा छोटे उद्योगों को नकारा फलस्वरुप आर्थिक समस्याये जैसे स्फीतिकारी बढ़ती कीमतों, उद्योगों मे रुग्णता, बढती असमानता तथा फैली हुई गरीबी आदि । हमे यह नहीं भूलना चाहिये कि यह अपर्याप्त विनियोग शक्ति विकास कार्यक्रमों पर तथा अपर्याप्त शक्ति उत्पादन तथा वितरण के कारण हुआ जो कि कृषि क्षेत्र मे प्रकट हुआ । वास्तव मे भारी उद्योगों तथा कृषि क्षेत्र मे कोई भी सघर्ष मानव संसाधनों तथा भौतिक ससाधनों के उपयोग में नहीं है । दोनों का समान रुप से विकास हो सकता है क्योंकि सतुलित वृद्धि जब 1950 मे उचित थी तो आज 1990 के दशक मे भी उचित ही होगी ।

---

24. J.D. Sethi - Gandhi Betrayed. Indian Express October 6, 1982.

2.3 पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियॉं . आर्थिक असमानतायें .-

भारत मे तीव्र आर्थिक विकास को प्राप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न पचवर्षीय योजनाये बहुत ही महत्वपूर्ण रहीं है । यद्यपि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के दृष्टिकोण से प्राय सभी पचवर्षीय योजनाये असफल रही है पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पचवर्षीय योजनाओं मे हुये महत्वपूर्ण परिवर्तनों तथा विकास उपलब्धियों के आधार पर हर अगली पचवर्षीय योजना का प्रारम्भ एक ऊँचे विकास स्तर से किया गया है । इन विभिन्न योजनाओं का प्राथमिक उद्देश्य सदैव समृद्धि रोजगार आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय प्राप्त करना रहा है, जहॉं तक प्रथम पचवर्षीय योजना मे विकास का प्रारुप अर्थव्यवस्था मे परतन्त्रता की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं से हटकर देश को नये व स्वतत्र विकास स्थिति मे लाने से रहा है वहीं इसमे कृषि व अन्य आधारभूत क्षेत्रों के विकास योजना मे सतुलित विकास के आधार पर देश में संवृद्धि, आय मे वृद्धि तथा विकास का वातावरण उत्पन्न हो सका और इस दृष्टिकोण से यह योजना अपनी सफलताओं मे विशेष महत्वपूर्ण रही है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना एक आर्थिक स्थायित्वता के सदर्भ मे देखी जा सकती है, जिसमे पहली योजना मे कृषि लक्ष्यों को प्राप्त किये जाने के कारण यह योजना स्थायी विकास प्रक्रिया को प्रारम्भ करने मे समर्थ हो सकी । पहली योजना मे कृषि विकास की सफलता के कारण द्वितीय योजना मे आधारभूत तथा बडे उद्योगों के विकास को भावी विकास का आधार माना गया । तृतीय पचवर्षीय योजना मे प्रथम व द्वितीय योजनाओं की विकास उपलब्धियों के आधार पर तीव्र आर्थिक विकास को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया । फलत इस योजना मे आत्मनिर्भरित एव स्वचालित अर्थव्यवस्था को बनाने का उद्देश्य निर्धारित किया गया । तीसरी योजना मे भी कृषि विकास को प्रथम वरीयता देने के साथ-साथ आधारभूत उद्योगों के विकास पर भी बल दिया गया । यद्यपि इस समयावधि में दो विदेशी युद्धों के कारण विकास कार्यक्रम को स्थगित करना पडा । तीसरी योजना के बाद वार्षिक योजनाये चलायी गयीं और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे विकास का

उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ स्थायित्वता प्राप्त करना तथा साथ ही साथ क्रमश आत्म निर्भरता को प्राप्त करना रहा है । इस योजना मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ-साथ कमजोर वर्गों के लिये न्यूनतम राष्ट्रीय सुविधा जो आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय व गरीबी हटाओ के रुप मे परिणत हुआ । पॉचवी पचवर्षीय योजना स्फीतिकारी दशाओं व अन्य आर्थिक सकटों के सदर्भ मे प्रारम्भ होती है परन्तु आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को उसी महत्व से कायम रखा गया । इस योजना में आय के अधिक्र उपयुक्त बटवारे तथा अन्य वितरणात्मक न्याय को प्राप्त करने पर बल दिया गया । जनता सरकार की छठी योजना मे भारत मे नियोजन की उपलब्धियों को मानते हुये यह भी स्पष्ट किया है कि विकास प्रक्रिया मे नेहरु सवृद्धि मॉडल को अपनाने के कारण बेरोजगारी मे वृद्धि, आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण, आय व सम्पत्ति मे असमानताओं की वृद्धि तथा गरीबी मे वृद्धि हुई है । अत इस योजना मे अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगारप्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया । इस योजना मे कृषि व सबंधित क्षेत्रों मे रोजगार सभावनाओं की वृद्धि, लघु एव छोटे स्वरोजगार इकाइयों को प्रोत्साहन, निम्न व कमजोर वर्गों के लिये न्यूनतम आवश्यकता योजना आदि रहा है । अन्तत सातवीं योजना, छठी योजना की विकास उपलब्ध्यिों के सदर्भ मे प्रस्तुत की गयी। इस योजना ने अपनी नीतियों व कार्यक्रमों के माध्यम से खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि, रोजगार अवसरों मे वृद्धि तथा उत्पादकता मे वृद्धि से सबंधित है । विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं के इस विवरण से इन योजनाओं मे सवृद्धि लक्ष्यों तथा उनके परिणामों के सकेत देखे जा सकते है ।

विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों में राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करने से रहा है । इस सबंध मे यद्यपि निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर भारत मे राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि नहीं हुई किन्तु इसमे महत्वपूर्ण वृद्धि देखी जा सकती है । विभिन्न योजनाओं में अनेक

आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं के बाद भी राष्ट्रीय आय प्रथम योजना में 19%, द्वितीय मे 20% तृतीय मे 12% चौथी योजना मे 18%, पॉचवीं योजना मे 29% तथा छठी योजना मे 23% वृद्धि हुई है । इसकी तुलना मे प्रति व्यक्ति आय मे इतनी तेजी से वृद्धि नहीं हुई है । इसी के साथ प्रथम योजना मे राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धि दर 3.6% रही है जो दूसरी योजना मे बढकर 4.0% हो गयी । यह दर पुन घटकर तीसरी योजना मे 2 2% हो गयी । वार्षिक योजनाओं मे यह दर 4 0% रही तथा पाचवीं व छठी योजना मे बढकर 5 0% हो गयी । इसकी तुलना मे प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर दयनीय रही है जो 1 से 2% विभिन्न योजनाओं मे रही । तृतीय योजना मे शून्य तथा पॉचवीं योजना व छठी योजना मे 3 0% रही है ।

जहॉ तक भारत मे कृषि क्षेत्र के विकास का सबध है उसमे महत्वपूर्ण उपलब्धियॉ देखी जा सकती है । इस सम्बन्ध मे कृषि क्षेत्र मे कुल उत्पादन की महत्वपूर्ण वृद्धि विशेष उललेखनीय है जो 1955-56 से तथा विशेषकर 1960-61 के कृषि उत्पादन के रुप मे देखा जाताा है । कृषि क्षेत्र की उत्पादकता वृद्धि हेतु सिंचाई सुविधाओं की वृद्धि, उर्वरक व कीटनाशकों का प्रयोग, सुधरे हुये उन्नतशील बीजों का प्रयोग तथा कृषि की नई तकनीक आदि महत्वपूर्ण है । कृषि खाद्यान्नों के उत्पादन मे कृषि आगतों का प्रयोग विशेषरुप से महत्वपूर्ण रहा है जो गेहूँ, धान, आलू व अन्य फसलों मे उल्लेखनीय हैं । इस नई कृषि तकनीकी से जहॉ उत्पादन तथा उत्पादकता मे आशातीत वृद्धि व सफलता प्राप्त हुई वहीं कृषि उत्पादन के अन्य क्षेत्र जैसे तिलहन व दलहन उत्पादन आदि अपेक्षाकृत पीछे रह गये । साथ ही साथ इससे कृषि क्षेत्र मे अनेक आर्थिक व सामाजिक दुष्परिणाम उत्पन्न हुये जिससे भूमिहीन श्रमिक कृषि श्रमिक व अन्य गरीब वर्ग की समस्याओं मे वृद्धि हुई ।

विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में देश के औद्योगिक विकास व औद्योगीकरण पर बल दिया गया और इनके विकास पर सदैव बढ़ती हुई सरकारी

धनराशि रखी गयी जिसके फलस्वरुप देश के वृहत उद्योगों मे महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई । इस सफलता को भारतीय उद्योगों के विविधीकरण के रुप मे भी देखा जा सकता है । औद्योगिक क्षेत्र के इस विकास के साथ-साथ शक्ति ससाधनों, यातायात व संचार, बैंकिग व वित्त तथा अन्य विकासात्मक सुविधाओं के रूप मे महत्वपूर्ण है । इसी के साथ-साथ भारत मे विज्ञान व तकनीकी क्षेत्रों मे भी प्रगति हुई है जिसके परिणामस्वरुप ग्रामीण विद्युतीकरण, शैक्षिक व सार्वजनिक स्वास्थ्य शिक्षा का प्रसार, पेय-जल सुविधाओं की व्यवस्था तथा कमजोर वर्गों के लिये न्यूनतम आवश्यकताओं की व्यवस्था आदि है । इन उपलब्धियों के साथ-साथ देश की 40% से भी अधिक जनसख्या गरीबी रेखा के नीचे है तथा देश में आर्थिक ससाधनों का सकेन्द्रण तथा आय व धन की असमानता बढ़ती जा रही है ।

भारत मे पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विकास अनुभवों व उपलब्धियों के क्रम मे छठी व सातवीं योजनाओं की स्थिति का विवरण विशेष महत्वपूर्ण है । छठी पंचवर्षीय योजना अत्यधिक मुद्रा स्फीति, पेट्रोलियम उत्पादकों की बढ़ी हुई कीमतों व अन्य क्षेत्रों में समस्याओं के सदर्भ मे प्रारम्भ हुई । आन्तरिक व विदेशी संकटों के संदर्भ में छठी योजना मुख्य रुप से अर्थव्यवस्था के विकास दर मे महत्वपूर्ण वृद्धि तथा संसाधनों के उपयुक्त प्रयोग तथा ऊँची उत्पादकता प्राप्त करने से था । इस योजना में गरीबी व बेरोजगारी को दूर करने पर विशेष बल दिया गया तथा लोगों के जीवनस्तर में सुधार के दृष्टिकोण से न्यूनतम आवश्यकता योजना पर विशेष ध्यान दिया गया । इस योजना मे मुख्य रुप से सार्वनिक नीतियों को पुनर्वितरण व गरीबों के कल्याण के दृष्टिकोण से क्रियान्वित करने के साथ-साथ आय व सम्पत्ति मे असमानता को कम करना था । विकास कार्यक्रमों मे क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के लिये आर्थिक विकास तथा तकनीकी लाभों को क्षेत्रीय वास्तविकताओं के सदर्भ मे बनाने का प्रयास किया गया । इस योजना मे आर्थिक नीति के ढॉचे के रुप मे विभिन्न समस्याओं के समाधान का प्रयास

किया गया । इस योजना मे गरीबी व बेरोजगारी को दूर करने के सदर्भ मे यह व्यक्त किया गया कि यह वास्तविक नहीं होगा कि इन समस्याओं के समाधान हेतु हम पूर्णतया विकास प्रक्रिया पर निर्भर रहे । इस योजना मे यह आशा की गई कि वितरण संबधी नीतियों तथा समन्वित ग्रामीण विकास योजना कार्यक्रमो के परिणामस्वरुप यह संभव हो सकेगा कि देश की जनसंख्या मे गरीबी रेखा को 30% से नीचे लाया जा सके । इस योजना मे गरीबी दूर करने के लिये रोजगार सृजन को एक आवश्यक अग के रुप मे माना गया । रोजगार सृजन हेतु ऐसी क्रियाये मुख्यरुप से कृषि ग्रामीण विकास, ग्रामीण व लघु उद्योगों, निर्माण कार्यों व सेवाओं आदि मे देखे जा सकते है । कृषि एव ग्रामीण क्षेत्रों के सम्यक् विकास के दृष्टिकोण से तथा विशेषकर गरीबी व कमजोर वर्गों की आर्थिक समस्याओं हेतु समन्वित ग्रामीण विकास योजना, इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम मानी जा सकती है । इसी के साथ-साथ इस योजना मे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (NREP), न्यूनतम आवश्यकता योजनाये, सामाजिक न्याय व आर्थिक असमानता को दूर करने से रही है । जहाँ तक सवृद्धि दर का प्रश्न है छठी योजना 5.2% सवृद्धि दर को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण रुप से सफल रही है । इसी तरह इस योजना मे कृषि क्षेत्र भी महत्वपूर्ण रुप से सफल रहा है और निर्धारित लक्ष्यों से भी अधिक कृषि क्षेत्र मे सफलता प्राप्त हुई है । इसकी तुलना मे औद्योगिक क्षेत्रों मे सफलता काफी कम रही है, जहाँ आधारभूत उद्योगों मे लक्ष्य से कम सफलता प्राप्त हुई है परन्तु औद्योगिक क्षेत्र के अलावा रोजगार अवसरों के उद्देश्य तथा योजना की समयावधि में मुद्रास्फीति नियन्त्रण तथा सामाजिक न्याय से संबंधित उपलब्धियों के दृष्टिकोण से यह योजना बहुत ही सफल रही है । वस्तुत इस योजना में कृषि विकास के व्यापक अर्थ में ग्रामीण विकास तथा उनसे जुडी हुई विभिनन आर्थिक व सामाजिक समस्याओं की ठोस नीति निर्धारण तथा विकास योजनाओं का स्वरुप इसी योजना से देखा जा सकता है ।

सातवीं पचवर्षीय योजना के समय यह स्पष्ट हो गया कि नियोजन प्रक्रिया से देश की अर्थव्यवस्था लगातार वृद्धि की ओर अग्रसर रही है तथा अपने प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ति मे महत्वपूर्ण रुप से सफल रही है, फलत इस योजना मे विकास लक्ष्यों को और अधिक तीव्र गति से प्राप्त करना तथा सामाजिक न्याय के साथ आत्मनिर्भरित अर्थव्यवस्था के रुप मे परिणत करना महत्वपूर्ण हो गया । मोटे तौर पर इस योजना मे खाद्यान्नों के उत्पादन मे वृद्धि, रोजगार अवसरों मे वृद्धि तथा उत्पादकता मे वृद्धि करना था । इस तरह इस योजना मे अपनायी गयी विकास नीति का उद्देश्य सीधे गरीबी, बेरोजगारी तथा क्षेत्रीय असंतुलनों पर प्रहार करना था । इस प्रक्रिया में गरीबी रेखा को 40% से घटाकर 25 8% 1989-90 तक करने का लक्ष्य था । गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार वृद्धि हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (NREP), समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP) तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार सुरक्षा योजना (RLEGP) को प्रमुख आधार बनाया गया, साथ ही साथ इस बात पर बल दिया गया कि कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों मे किये जाने वाले विकास प्रक्रिया के ही आधार पर ठोस रुप मे बेरोजगारी व गरीबी को दूर किया जा सकता है । इस योजना मे रोजगार अवसरों की वृद्धि के साथ-साथ महिलाओं व युवकों को कृषि क्षेत्र मे रोजगार प्रदान करने, निम्न आय रोजगार क्षेत्रों में आय मे वृद्धि अवसरों को उत्पन्न करने तथा रोजगार मे लगे लोगों की उत्पादकता व आय मे वृद्धि करना था । इस तरह इस योजना मे उत्पादक रोजगार द्वारा गरीबी दूर करना तथा आर्थिक विकास मे वृद्धि करना विशेष रुपसे महत्वपूर्ण रहा है । उत्पादकता व कार्यक्षमता के सुधार व वृद्धि के सबध मे इस योजना मे वर्तमान उत्पादन क्षमता मे ही वृद्धि करने पर जोर दिया गया न कि अतिरिक्त क्षमताओं के सृजन पर यह अनुभव किया गया कि निम्न उत्पादकता प्रधान कारण पूजी के प्रयोग की अकुशलता तथा किये गये विनियोग की गैरलाभकारिता है । इस तरह अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों मुख्यरुप से कृषि क्षेत्र मे कुशल व उपयुक्त क्षमता प्रयोग संबधी योजनाओं को क्रियान्वित करने का विशेष बल दिया गया । इस योजना मे प्रत्येक क्षेत्रों में व्यय

राशि निर्धारण व लक्ष्यों की प्राप्ति मे कृषि क्षेत्र का विशेष महत्व रहा । कृषि तथा ग्रामीण विकास हेतु इस योजना मे 12 4% धनराशि निर्धारित की गयी जिसके परिणामस्वरुप प्रतिवर्ष कृषि क्षेत्र को 4% वार्षिक दर से बढ़ने का लक्ष्य रखा गया । सातवीं योजना मे कृषि उत्पाद लक्ष्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि इस योजना के अन्त तक 1989-90 तक खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग 180 00 मिलियन हो जायेगा । इस योजना मे यह प्रत्याशा की गई कि अतिरिक्त उत्पादन का अधिकाश भाग लघु सीमान्त कृषकों तथा शुष्क कृषि क्षेत्रों से उत्पन्न होगा । इसके अन्तर्गत कृषि क्षेत्र मे तीव्र सिचाई सुविधाओं का विकास ही कृषि नीति का आधार रखा गया । साथ ही साथ अन्य कृषि आगतों के प्रयोग में भी वृद्धि द्वारा कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है । सातवीं योजना के प्रमुख विकास लक्ष्यों व प्रक्रिया के आधार पर यह देखा जा सकता है कि 1984-85 से 1988-89 की अवधि मे शुद्ध राष्ट्रीय आय मे वृद्धि 5.5% रही । जहाँ तक कृषि उत्पाद के लक्ष्यों मे कमी रही है, उसका प्रधान कारण सिंचाई सुविधाओं के लक्ष्यों मे कमी के कारण हुई है । इसी के साथ-साथ दूसरा कारण उन्नतशील बीजों के प्रयोग से संबंधित क्षेत्र मे कमी होने के कारण रही है । सातवीं योजना के अत तक देश के भुगतान सतुलन की अत्याधिक बिगडती हुई स्थिति तथा अत्याधिक मुद्रास्फीति की दशाओं के साथ-साथ गभीर संसाधनों का संकट इस योजना की कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं जिसके कारण विकास प्रक्रिया व्यूहनीति व आर्थिक नीतियों मे महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ । इस तरह देश मे प्रथम पचवषीय योजना से लेकर सातवीं योजना तक की अवधि मे हुई प्रगति व उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण निम्न रुप मे दिया जा सकता है ।

देश मे पिछले दशकों मे नियोजन की उपलब्धि के सदर्भ मे छठी योजना में यह स्पष्ट है कि - ," It is a cause of legitimate national

pride that over this period a stagnant and dependent economy has been modernized and made more selfrelient. Moderate rate of growth of per capita income has been maintained despite the growth of population. On the other hand the numbers of unemployed and underemployed are still very high and more than 40% live below the poverty line.[25]

योजना की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियों को दिखाया जा सकता है ।

(1) 1950-51 से अब तक के 40 वर्षों की योजनावधि मे देश के शुद्ध घरेलू उत्पाद की वृद्धि प्रतिवर्ष लगभग 4% दर से रही ।

(2) कुल घरेलू उत्पाद के अश के रुप मे बचतें 10.2% से 22 8% के रुप मे बढी है ।

(3) प्रति व्यक्ति उपभोग मे जहाॅ वृद्धि हुई है वहीं खाद्यान्न तेलों तथा वनस्पति के उपभोग मे कमी हुई है । साथ ही साथ जीवन की अन्य सुविधाओं मे भी वृद्धि हुई है जो विभिन्न वस्तुओं के बढते हुये उपभोग व उनकी प्रवृत्ति से देखा जा सकता है । इन उपभोग वस्तुओं के बढ़ते हुये प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष लिया जा सकता है कि लोगों के आवश्यक उपभोग की इकाइयों मे वृद्धि हई है तथा ये सुविधाये वस्तुओं तथा उनके प्रयोग से आर्थिक असमानता तथा धनी व निर्धन मे अतर बढ़ा है ।

(4) देश में अब तक के नियोजन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि देश में तीव्र औद्योगिक विकास व औद्योगीकरण से रही है तथा साथ ही साथ उद्योगों के विकास मे महत्वपूर्ण रुप से सार्वजनिक क्षेत्रों की भूमिका रही है ।

---

25. Planning Commission, Draft Sixth Plan (1978-83) page 1.

(5) देश मे योजनावधि मे विकास उपलब्धि देश मे आर्थिक सुविधाओं व सेवाओं के रुप मे भी देखा जा सकता है । देश मे सिचाई सुविधाओं, विद्युत व शक्ति ससाधनों का विकास तथा दूर सचार व यातायात की व्यवस्था तथा बैंक व वित्त सस्थाये आदि मुख्य रुप से विकसित हुई है ।

(6) देश मे औद्योगिक विकास के कारण तथा आयात निर्यात नीति के कारण विदेशी पूजी पर निर्भरता मे कमी हुई है और अधिकाश उपभोग तथा अन्य वस्तुये जो पूर्व आयात की जाती है, उनका देश के अन्दर ही उत्पादन किया जाने लगा है । इस तरह देश के आयात - निर्यात मे सरचनात्मक परिवर्तन हुये है ।

(7) देश मे औसत जीवन प्रत्याशा 1951 मे 32 वर्ष से बढकर 54 वर्ष हो गयी है जो कि चिकित्सा विज्ञान के महत्वपूर्ण विकास उपलब्धि तथा अन्य परिवार कल्याण कार्यक्रमों की सफलता को सूचित करता है ।

(8) योजना प्रक्रिया की अनेक उपलब्धियों मे देश के विस्तृत शिक्षा व्यवस्था के रुप मे देखा जा सकता है । शिक्षा व्यवस्था तथा प्रशिक्षण प्राथमिक स्तरों से उच्च स्तर तक विकसित हुआ है ।

(9) राष्ट्र के कृषि, औद्योगिक व अन्य क्षेत्रों के सदर्भ मे विज्ञान तथा तकनीकी मे परिवर्तन तथा प्रगति हई है जिससे इन क्षेत्रों मे हमारी विदेशी निर्भरता मे कमी हुई है ।

(10) देश मे चौथी योजना व उसके बाद के समयों मे कृषि विकास के साथ-साथ

गरीबी, बेराजगारी तथा क्षेत्रीय असमानता जैसी समस्याओं के समाधान हेतु आर्थिक नीतियों तथा योजना परिव्ययों मे विशेष परिवर्तन किया गया है । यद्यपि इन उद्देश्यों मे महत्वपूर्ण सफलता अभी नहीं प्राप्त हो सकी है पर ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र के विकास तथा संबंधित समस्याओं के समाधान की महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रारम्भ हुई ।

देश मे योजनाकालीन की उपर्युक्त उपलब्धियों के साथ-साथ महत्वपूर्ण असफलताये भी रही है । देश मे आर्थिक विकास तथा समाजवादी समाज की सरचना के रुप मे अब इसके मूल्याकन को दिखाया जा सकता है -

(1) देश मे नियोजन का स्वरुप राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर की जीवन सुविधा को उत्पन्न करने से है जिसे योजनाकाल मे प्राप्त नहीं किया जा सका है । देश मे व्याप्त गरीबी तथा महत्वपूर्ण प्रतिशत जीवन निर्वाह की सुविधाओं से वचित होने के कारण उन्हे आवश्यक न्यूनतम जीवन सुविधाये उपलब्ध नहीं है ।

(2) योजना समयावधि मे वृद्धि के साथ-साथ देश मे बेराजगारी मे भी वृद्धि हुई है । अत देश की विकासात्मक योजनाओं मे महत्वपूर्ण रुप से देश के कार्यशील व योग्य लोगों के लिये रोजगार अवसर उत्पन्न नहीं किये जा सके है । यद्यपि इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण नीतियाॅ व योजनाये बनायी गयीं पर देश की बेराजगारी के संदर्भ मे अभी तक कोई गभीर प्रयास नहीं हुआ है । योजना आयोग ने इसे स्वीकार करते हुये स्पष्ट किया कि - "By and large therefore it could appear that no series dent had been made on the problem of unemployment in the country.[26]

---

26. Planning Commission, The Plan Mid Term Appraisal page 10.

(3) पिछले लगभग 40 वर्षों की योजनावधि मे आय तथा सम्पत्ति की असमानता के सदर्भ मे सरकारी प्रयास द्वारा पुनर्वितरण तथा वितरणात्मक तथा सामाजिक न्याय प्राप्ति के उद्देश्य मे कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है । दाण्डेकर तथा रथ ने अपने 1971 के अध्ययन मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि विकास के पिछले वर्षों से हुये लाभों का प्रत्येक वर्गों मे समान वितरण नहीं हुआ है । साथ ही कुछ विशिष्ट वर्गों मे धन व सपत्ति के सकेन्द्रण की प्रवृत्ति प्राप्त हुई है । चौथी योजना मे इस बात को स्वीकार करते हुये कहा गया कि - Another area where our effort

sofar has been holding is in narrowing the desparities in incomes & property ownership.[27]

सामाजिक न्याय प्राप्ति के उद्देश्य और इसकी उपलब्धि को मूल्यों मे वृद्धि तथा मूल्यों मे सरचनात्मक रुप मे भी देखा जा सकता है । 1951 से अब तक की योजना अवधि में सामान्य मूल्यों मे वृद्धि तथा आवश्यक व उपभोग वस्तुओं के मूल्य मे वृद्धि देखी जा सकती है । एक समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्यों पर नियन्त्रण की असफलता आर्थिक न्याय के अभाव को दिखाता है ।

(4) समाजवादी समाज मे आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों मे यह एक प्रमुख उद्देश्य रहा है कि आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण मे कमी की जाये पर

---

27. Planning Commission, Fourth Five Year Plan page 22.

वास्तविकता यह है कि देश मे एकाधिकारी प्रवृत्तियों मे वृद्धि रही है । इस उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय नीतियों मे परिवर्तन किया जाये जिसमे कर नियमों तथा धन न सम्पत्ति अधिकारों के नियमों मे परिवर्तन किया जाये । इसी तरह विलासिता वस्तुओं पर कर की दर मे वृद्धि तथा आवश्यक वस्तुओं पर कर की रियायतें भी आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण मे कमी कर सकती है । इसी के साथ-साथ देश मे भूमि का पुनर्वितरण भी सफलतापूर्वक नहीं हआ है । लगभग 70% कृषकों के पास 10 एकड़ से भी कम भूमि है जबकि कुछ कृषकों के पास अधिक जोत सकेन्द्रित है ।

(5) देश मे नियोजन की समयावधि मे अधिक असमानताओं काले धन व काले बाजार की प्रवृत्तियों पर वित्तीय उपायों व प्रयासों का का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा है । देश मे गैर आर्थिक व गलत तरीकों से अवैध लाभ व आय मे वृद्धि हुई है । विभिन्न आर्थिक क्रियाओं मे कोटा तथा लाइसेन्स व्यवस्था द्वारा इस तरह की अवैध आय व लाभ का सृजन हुआ है । इस प्रकार आर्थिक विकास के लाभों का बटवारा देश के सब लोगों मे न होकर कुछ उच्च आय वर्गों तक ही सीमित रहा है । इसके परिणाम स्वरुप औद्योगिक प्रतिष्ठानों, व्यापारियों व उच्च पद के लोगों को अपेक्षाकृत अधिक लाभ हुआ है । सरकार के प्रयत्नों तथा नीतियों के बावजूद देश मे काले धन की प्रक्रिया मे कोई कमी नहीं रही है ।

(6) योजना काल मे कृषि क्षेत्र मे भूमि के पुनर्वितरण द्वारा कृषि को एक प्रगतिशील दशा मे परिवर्तित करने का उद्देश्य भी सफल नहीं रहा है । देश मे भूमि सुधार मे भी बहुत धीमी प्रगति हुई है तथा इस दिशा में राज्य सरकारें बहुत प्रभावी नहीं रही है । इस सन्दर्भ मे सहकारी समितियों की

भूमिका भी विशेष सफलता व उपलब्धि की नहीं रही है । इस प्रकार कृषि क्षेत्र मे जहाॅ उत्पादन तथा उत्पादिता मे वृद्धि हुयी है वहीं अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्याये भी उत्पन्न हुयी है ।

देश मे नियोजन प्रक्रिया की उपलब्धियों तथा असफलताओं के सदर्भ मे यह विशेष महत्व की बात है कि जहाॅ अन्य क्षेत्रों में विकास के साथ विशेषकर कृषि क्षेत्र मे सरचनात्मक परिवर्तन व महत्वपूर्ण विकास हुआ है वहीं आर्थिक व सामाजिक असमानतायें भी बढ़ी है । ये असमानताये क्षेत्रीय असन्तुलन की गम्भीर समस्या उत्पन्न करके देश के विकास के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती के रुप मे है । अत इनको दूर करके तीव्र आर्थिक विकास प्रसार करना ही देश की योजनाओं का लक्ष्य होना चाहिये।

2.4 विकास प्रक्रिया में संरचनात्मक परिवर्तन तथा आठवीं योजना :-

सातवीं योजना की समाप्ति के पूर्व तथा देश की आठवीं पचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने से पहले ही विकास नियोजकों तथा सरकार के सामने अप्रत्याशित ससाधनों का सकट लगातार तेजी से भुगतान की बिगड़ती हुई स्थिति तथा विश्व बाजारों मे भारत के घटते हुये निर्यात आदि की गभीर समस्याये उत्पन्न हो गयीं । साथ ही साथ सरकार व नियोजकों ने इस बात को अनुभव किया कि अनुत्पादक व्ययों मे वृद्धि तथा सामाजिक न्याय से सबंधित बेरोजगारी व गरीबी दूर करने मे नियोजन व विकास, व्यय व लागत तथा लगातार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, उद्योगों व क्षेत्रों मे बढती हुई अक्षमता, अनुत्पादकता तथा घाटा आदि स्थितियों के सदर्भ मे देश की आर्थिक प्रक्रिया विकास व्यूह नीति तथा आर्थिक नीतियों मे भी बडे ही महत्वपूर्ण तथा सरचनात्मक परिवर्तन किये गये । यद्यपि सातवीं योजना की विकास व्यूहनीति को अपनाया गया था परन्तु देश मे आर्थिक स्थिरता, औद्योगिक क्षेत्र में मदी, मुद्रास्फीति की बढ़ती प्रवृत्ति तथा सामाजिक न्याय से जुड़ी हुई विभिन्न विकासात्मक परियोजनाओं पर अत्याधुनिक अनुत्पादक व्यय

देश के विकास प्रक्रिया मे एक गम्भीर अवरोध बन गया और देश के भावी विकास के सामने एक गभीर सकट उत्पन्न हो गया । देश के इस विकास नीति परिवर्तन के सदर्भ मे इस ऐतिहासिक सत्य का भी उल्लेख किया जा सकता है कि हाल मे सोवियत रुस की अर्थव्यवस्था का पतन तथा वहाँ की भयावह आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति देश के नियोजकों को कुछ अलग व नीवन गैर समाजवादी विकास प्रवृत्ति के अनुरुप आर्थिक विकास व्यूहनीति के लिये विवश किया । फलत 1990-91 के बाद से देश के आर्थिक विकास नीति व नियोजन प्रक्रिया मे आधारभूत व सरचनात्मक परिवर्तन किये गये । आर्थिक नीतियों मे इस तरह के परिवर्तन की प्रवृत्ति इस समय से पूर्व भी थी जैसा की प्रो0 के0एन0 राज ने यह स्पष्ट किया था कि इस तरह की नवीन नीति परिवर्तनों की सामान्य स्वीकृति यह रही है कि व्यक्तिगत क्षेत्रों के विकास की अधिक सभावनायें रही है विशेषकर निर्माण तथा कम्पनी उद्योगों व क्षेत्रों मे तथा साथ ही इन क्षेत्रों मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भी सभावना रही है ।[28] इसी तरह नवीन औद्योगिक नीति व उसके परिवर्तनों के सबध मे प्रो0 एल0 के0 झा ने यह माना कि नियोजन के प्रारम्भिक चरणों मे औद्योगिक लाइसेन्सिग नीति वास्तव मे नियन्त्रणात्मक प्रवृत्ति के स्थान पर अन्य उत्पादक व विनियोग कार्यक्रमों के स्वीकृति मे एकमात्र केन्द्र स्थान रही।[29]

नवीन आर्थिक नीति व अर्थव्यवस्था मे किये गये सरचनात्मक परिवर्तनों के इस

---

28. "There has been however a general agreement that a very distinctive feature of these policy changes taken as a whole is the greater scope for expansion they offer to the private sector, particularly in the corporate sector of manıfacturing industry and the opportunities open to multinational enterprises." K.N. Raj, New Economic Policy-Engine of Growth, Economics times, December 24, 1985.

29. "Industrial Licensing in other words, instead of becoming a new control in fact provided a single window clearance from all controls for approval projects." - L.K. Jha New Thrusts In The Indian Economy, Feb. 13, 1986 quoted in Indian Economy by Datta & Sundram, 1991.

सदर्भ के आधार पर साराशत निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया जा सकता है -

1- उदारीकरण की नीति के साथ-साथ सरकारी नियन्त्रणों आदि को समाप्त करना या ढीला करना ।

2- अर्थव्यवस्था मे स्वतन्त्र बाजारी शक्तियों के आधार पर उत्पादन, आय, रोजगार व लाभ की प्रवृत्तियों में वृद्धि करना तथा आर्थिक क्रियाओं मे स्वतत्र प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति को उत्साहित करके कार्यकुशलता, योग्यता तथा उत्पादकता मे वृद्धि करना ।

3- अकुशल व लगातार अनुत्पादक व घाटे से सबंधित सार्वजनिक क्षेत्रों के स्थान पर उत्पादन व निर्यात क्षेत्रों मे व्यक्तिगत क्षेत्रों के बढते हुये महत्व व योगदान को स्थापित करना ।

4- उन्नत व आधुनिक तकनीकी के प्रयोग से औद्योगिक क्षेत्र का आधुनिकीकरण करना ।

5- आयात निर्यात नीतियों को उदार करके आतरिक उत्पादन को बढ़ाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों मे घरेलू वस्तुओं को प्रतिस्पर्धी बनाकर निर्यात प्राप्ति तथा विदेशी विनिमय को बढाना । मूलत इस तरह से देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन की स्थिति को सुधारना ।

6- देश मे वर्तमान वित्तीय नीति का पुनर्निरुपण करना ।

आर्थिक नीतियों के उपर्युक्त सरचनात्मक परिवर्तन के संदर्भ मे गरीबी निवारण व रोजगार अवसरों मे वृद्धि से सबंधित कार्यक्रमों की असफलता को स्वीकार किया गया और यह माना गया कि इन कार्यक्रमों की असफलता राज्य सरकारों की नीतियों मे पूर्णतया सहायता अनुदानों के कारण हुआ । इन अनुदानों को समाप्त या कम करके देश के वित्तीय दिवालियेपन की स्थिति को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है ।

वर्तमान आर्थिक नीतियों की परिवर्तन प्रक्रिया मे विनियोग ढॉचे, उत्पादन, बचत व वितरण के पारस्परिक सबध को देखने से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रक्रिया मे विरोधी प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है चूँकि देश मे पूजी तथा अन्य पूजीगत आदेयों का अधिकार कुल जनसख्या के ऊँची आय वाले 20 प्रतिशत लोगों के हाथ मे केन्द्रित है । अत जब तक आर्थिक प्रक्रिया मे व्यापक रोजगार व्यूह नीति का समावेश नहीं होगा, अर्थव्यवस्था मे काले धन तथा गैर आर्थिक क्रियाओं मे वृद्धि होगी पर आर्थिक नीतियों मे हुये ये सरचनात्मक परिवर्तन यदि कुछ महत्वपूर्ण समय तक बनाये रखे जा सके और यदि सरकार आने वाले वर्षों मे अपनी स्थायित्वता को कायम रख सके तो देश के आर्थिक विकास की स्थिति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन संभव हो सकता है ।[30]

आर्थिक नीतियों एव विकास व्यूहनीति के उपर्युक्त परिवर्तनों के सदर्भ मे आठवीं योजना अतत वर्ष 1992-93 से प्रारम्भ मानी गयी और वर्ष 1990-91 तथा 1991-92 को पुन भारतीय नियोजन के इतिहास मे योजना अवकाश के रुप मे लिया गया । इस तरह राजनैतिक अस्थिरता तथा सरकार परिवर्तन आदि जैसे कारणों से आठवीं योजना का निर्णय 1992-93 के पूर्व न किया जा सका । आठवीं योजना मे भी विकास व्यूहनीति एक दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य मे (सन् 2000) इस रुप मे निर्मित करने

---

30. J.D. Sethi, Structural Issues In Indian Economy, Economist, October 1991, page 11-13.

के प्रारुप मे थी जिससे गरीबी का निवारण तथा पूर्ण रोजगार की दशाओं को उत्पन्न करना सभव हो सके । साथ ही साथ देश मे उत्पादन, उत्पादकता तथा कार्यक्षमता की वृद्धि के साथ देश की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जाना सभव हो सके तथा देश के सभी लोगों को सामान्य शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाये उपलब्ध हो सके । यद्यपि आठवीं योजना के प्रथम प्रारुप मे सकल घरेलू उत्पाद (G.D.P.) की दर 6 प्रतिशत निर्धारित की गयी थी पर परिवर्तित आठवीं योजना मे 5.5% प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है । इसका प्रधान कारण देश में ससाधनों की अत्याधिक कमी रही है । इस योजना में नई आर्थिक नीतियों में परिवर्तन को दृष्टिकोण मे रखते हुये निर्यात प्राप्ति और भुगतान सतुलन मे सुधार पर विशेष बल दिया गया है । साथ ही साथ विकासात्मक उपकरणों, मशीनों तथा तकनीकी आदि के आयात पर छूट देकर घरेलू उत्पादकों व उद्योगों को प्रोत्साहित करना तथा उन्हे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारी क्षेत्रों मे विदेशी वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धी बनाने से है । इस तरह इस योजना मे उद्योग, कृषि, व्यापार, वित्त तथा उत्पादन व आर्थिक क्षेत्रों मे स्वतत्र बाजारी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करना है । औद्योगिक नीति मे परिवर्तन और आर्थिक नीतियों मे उदारीकरण के परिणामस्वरुप इस योजना मे सार्वजनिक क्षेत्रों की तुलना मे व्यक्तिगत क्षेत्र को विशेष महत्व दिया है ।[31]

साराशत आठवीं योजना मे प्रस्तावित विकास नीति देश मे विशेष रुप से औद्योगिक तथा व्यापारिक क्रियाओं के क्षेत्र मे अर्थव्यवस्था को प्रतिस्पर्धी बनाकर उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारी स्थिति तक पहुँचाना तथा देश के अन्दर ही विदेशी पूजी व निवेश मे उदारनीति को अपना करके देश की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करना है । इन सबका उद्देश्य स्थायी रुप से निर्यात वृद्धि तथा उससे होने वाली विदेशी विनिमय वृद्धि करके

---

31. R.R. Singh, Public Sector Units, Economics Times, Feb. 1, 1989.

अनुकूल भुगतान सतुलन की स्थिति प्राप्त करना है । निश्चित ही यह योजना अपनी विकास रणनीति मे पूर्व की योजनाओं से आधारभूत रुप मे भिन्न है । यदि विकास की यह नई रणनीति उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करके अतिरेक व लाभ की स्थिति उत्पन्न करने मे सक्षम हो सकीं और निर्यात वृद्धि से भुगतान सतुलन मे आवश्यक सुधार किया जा सका तथा साथ ही साथ बजट घाटे मे कमी करके तथा सकल घरेलू उत्पाद मे वृद्धि करके यदि स्फीतिकारी दशाओं को नियत्रित किया जा सका तो इस विकास नीति द्वारा यह आशा की जाती है कि देश की गरीबी बेरोजगारी तथा आर्थिक असमानताओं जैसी समस्याओं का स्थायी समाधान हो सकेगा । इस रुप मे यह विकास की व्यूहनीति आठवीं योजना को एक विशेष महत्वपूर्ण योजना बना देती है ।[32]

---

32. Dr. B.R.S. Singh, Strategy For The Eighth Five Year Plan of India, Varta, April & October 1989.

अध्याय-3

योजनावधि में कृषि विकास

(AGRICULTURAL GROWTH DURING THE PLAN-PERIOD)

अध्याय-3

योजनावधि में कृषि विकास

3.1 प्रथम योजना व कृषि -

भविष्य मे तेजी के साथ विकास के लिये जो आयोजन होना था उसमे प्रथम पचवर्षीय योजना अनिवार्य कदम था । योजना कमीशन के शब्दों मे - 'यह निश्चित मत है कि खाद्यान्न व कच्चे माल के उत्पादन मे यथेष्ट वृद्धि के बिना औद्योगिक विकास का ऊँचा स्तर बनाये रखना असम्भव है । एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था मे जिसकी कृषि उत्पादिता निम्न कोटि की है वहाँ कृषि विकास और औद्योगिक विकास मे कोई विरोध नहीं है और दोनों एक दूसरे के पूरक है और एक के बिना दूसरा आगे नहीं बढ़ सकता है ।[1] 1960 करोड रुपये के वास्तविक व्यय मे से प्रथम योजना मे कृषि पर 60 करोड रुपये (31%) खर्च किये गये जो कृषि तथा सामूहिक विकास पर 291 करोड़ रुपये (अर्थात् कुल का 15%) तथा शेष 301 करोड रुपये (अर्थात् कुल का 16%) सिंचाई तथा बाढ़ नियन्त्रण हेतु रखे गये ।

योजनावधि मे लगभग 12 लाख एकड भूमि को खेती के अन्तर्गत लाया गया तथा लगभग 14 करोड एकड को सिचाई के अधीन लाया गया । इसी समय धान उत्पादन की जापानी विधि का विस्तार किया गया । करीब 40% गॉव को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का भाग बनाया गया । मौसम की अनुकूल परिस्थिति के कारण कृषि उत्पादन का जो लक्ष्य रखा गया था, उससे कहीं अधिक उत्पादन क्षेत्र मे सफलता मिली ।

---

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट ।

सारणी-3.1

कृषि उत्पादन का लक्ष्य एव प्रथम योजनावधि

फसल	इकाई	1951-52	1953-54	1954-55	1955-56	उपलब्धि उच्च (+) निम्न (-)
अनाज	मिलियन टन	42 9	58 3	55 3	54 9	-
दालें	'	8 3	10 4	10.5	10 9	-
कुल खाद्यान्न	'	51 2	68 7	65 8	65 8	4 2
प्रमुख तेल बीज	'	4 9	5 3	5 9	5 6	0 1
गन्ना	'	6 1	4 4	5 5	6 0	-0.3
कपास	मिलियन गाँठे	3 1	3 9	4 3	4 0	-0.2
जूट	'	4.7	3 1	2 9	4.2	-1 2
कुल		95 6	114 3	116 4	116 8	-

स्रोत · द्वितीय पचवर्षीय योजना 1956, पृष्ठ 256 एग्रीकल्चरल स्टैटिक्स ऑफ रिऑर्गेनाइस्ड स्टेट्स, 1956, पृष्ठ 68६71, तृतीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 302 ।

प्रथम योजनावधि मे उपरोक्त सारणी के माध्यम से यह स्पष्ट है कि विभिन्न वर्षों मे कृषि उत्पादन की क्या स्थिति थी । कृषि उत्पादन का निर्देशाक जो 1950-51 मे 95 6 था वह 1953-54 मे बढ़कर 114 3 तथा 1955-56 मे 116 8 हो गया था । प्रथम योजनाकाल मे 1953-54 मे फसल उत्पादन 69 मिलियन टन तथा तेल बीज 6 2 मिलियन टन के उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त किया जबकि कपास के सम्बन्ध मे लक्ष्य से अधिक उत्पादन हुआ । 1952-53 मे जूट तथा गन्ने के उत्पादन मे थोडी गिरावट आयी किन्तु 1954-55 एव 1955-56 मे वृद्धि हुई । चीनी उत्पादन के सबध मे । 1954-55 मे 15.9 लाख टन तथा 1955-56 मे 18 7 लाख टन का उत्पादन हुआ ।

कृषि उत्पादन मे 1955-56 मे कुल खाद्यान्न उत्पादन 65 8 मिलियन टन का हुआ जो कि करीब 11 मि टन 1949-50 की अपेक्षा अधिक था । कुल मिलाकर उत्पादन मे 17% की वृद्धि हुई जिस कारण खाद्यान्न आयात मे कटौती हुई । वे 1951 मे 4 73 मिलियन टन घटे तथा 1953 मे 2 00 मिलियन टन 1954 मे 0 89 मिलियन टन तथा 1955 में 0 59 मिलियन टन रह गये । निवल बोये गये क्षेत्र मे 25 मिलियन एकड की वृद्धि हुई तथा फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में भी 25 मिलियन एकड़ की वृद्धि हुई कुल सिचित क्षेत्र भी 7 5 मिलियन एकड के हिसाब से बढ़ा । खाद्यान्न मे वृद्धि के फलस्वरुप कृषि वस्तुओं के मूल्य सूचकांक (1950 53 = 100) मे भी कमी आयी जिससे वह 92 8 हो गया । अन्न से सबधित मूल्य सूचकाक 24 अकों से नीचे गिरा तथा दालें, गन्ना एव तेल बीज घटकर क्रमश 38, 11, 15 अकों से घटे । दुर्भाग्यवश सस्थागत परिवर्तन नहीं किये जा सके अर्थात् सहकारी कृषि आन्दोलन को पूरी तरह सफल नहीं बनया जा सका । साथ ही साथ कृषि भूमि के बटवारे एव बिखरे भूखण्डों की समस्या का भी पूर्ण समाधान न हो सका ।

3.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना व कृषि :-

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मुख्य ध्येय था पॉच वर्ष की अवधि मे राष्ट्रीय आय मे 25 प्रतिशत की वृद्धि सम्भव बनाना, जनसख्या वृद्धि के परिणामस्वरुप श्रमिक सख्या की वृद्धि के लिये

रोजगार प्रदान करना, औद्योगीकरण की दिशा मे ऐसा कदम रखना जो आने वाली योजनाओं की आधार शिला हो ।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों की विकास योजनाओं पर योजनाकाल मे कुल खर्च 4,800 करोड रुपया ऑका गया था । यह रुपया विकास की विभिन्न मदों मे इस प्रकार खर्च होना था -

दूसरी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगों और खानों के लिये कुल राशि का 19% रखा गया था जबकि पहली योजना मे यह 8 प्रतिशत ही था ।

परिवहन व सचार पर कुल व्यय का 29 प्रतिशत खर्च था । रेलों के विकास कार्यक्रम पर कुल व्यय का 19% खर्च होना था जबकि प्रथम योजना मे मात्र 11 प्रतिशत ही था ।

सिचाई और बिजली पर 19 प्रतिशत की व्यवस्था थी तथा कृषि व सामुदायिक विकास पर 12% । सिचाई और बाढ नियन्त्रण के लिये 486 करोड रुपये की व्यवस्था थी । इनमे से 209 करोड रुपये उन योजनाओं के लिये थे जो पहले से चालू थीं, शेष 277 करोड़ रुपये नयी स्कीम के लिये थे ।

सामाजिक सेवाओं पर कुल व्यय का 20 प्रतिशत खर्च होना था, पहली योजना मे यह 23% था । अगर सामाजिक सेवाओं और सम्बद्ध मदों पर होने वाले कुल व्यय के प्रतिशत के रुप मे देखा जाये तो शिक्षा स्वास्थ्य और आवास के लिये आबण्टन प्राय वही था जो पहली योजना में था ।

सारणी-3.2

दूसरी योजना के अन्तर्गत व्यय

करोड रुपये

		विनियोजित व्यय	चालू व्यय	कूल व्यय
	1	2	3	4
1-	कृषि तथा सामुदायिक विकास	338	230	568
	(1) कृषि	181	60	341
	(2) राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास	157	70	227
2-	सिंचाई और बिजली	863	50	913
	(1) सिचाई और बाढ़ नियन्त्रण	456	30	486
	(2) बिजली	407	20	427
3-	उद्योग और खान	790	100	890
	(1) बडे तथा मध्यम उद्योग और खान	670	20	690
	(2) ग्राम तथा छोटे उद्योग	120	80	200
4-	परिवहन और सचार	1335	50	1385
5-	सामाजिक सेवाये	455	490	945
6-	विविध	19	80	99
	कुल योग	3800	1000	4800

स्रोत द्वितीय पचवर्षीय योजना सक्षिप्त, अध्याय-3, पृष्ठ 24

सारणी-3.3

दूसरी पचवर्षीय योजना मे कृषि उत्पादन के मुख्य लक्ष्य

पण्य	इकाई	अनुमानित उत्पादन 1955-56	अतिरिक्त उत्पादन का लक्ष्य	अनुमानित उत्पादन 1960-61	प्रतिशत वृद्धि
खाद्यान्न	लाख टन	650	100	750	15
तिलहन	'	55	15	70	27
गन्ना(गुड)	'	58	13	71	22
कपास	लाख गॉठ	42	13	55	31
पटसन	'	40	10	50	25
नारियल(तेल)	लाख टन	1 3	0 8	2 1	62
सुपारी	लाख मन	22 0	5 0	27 0	23
लाख	'	12 0	4 0	16 0	33
तम्बाकू	लाख टन	2.5	-	2 5	-
काली मिर्च	हजार टन	26 0	6 0	32.0	23
काजू	'	60.0	20 0	80 0	33
चाय	लाख पौंड	6440	560 0	7000	9

स्रोत द्वितीय पचवर्षीय योजना सक्षिप्त, भारत सरकार, अध्याय 13, पृष्ठ 100-101

योजना मे इस समय अगले पॉच वर्षों मे खाद्य उत्पादन मे एक करोड़ टन की वृद्धि की व्यवस्था थी । प्रौढ व्यक्तियों की प्रति दिवस खाद्य सामग्री की खपत अभी 'कैलोरीज' के रुप मे 2,200 थी अनुमान था कि खपत की दर मे प्रति प्रौढ व्यक्ति 18.3 औंस की वृद्धि हो जाएगी । खाद्यान्न मे एक करोड़ टन की वृद्धि, चावल मे कोई 30 से 40 लाख टन, गेहूँ मे कोई 20 से 30 लाख टन,अन्य अनाजों मे कोई 20 से 30 लाख टन वृद्धि की सभावना रखी गयी ।

पूर्व उल्लिखित एक करोड टन की वृद्धि मोटे तौर पर निम्नलिखित विकास कार्यक्रमों से होनी थी -

	लाख टन
सिचाई के बडे साधनों से	24
सिचाई के छोटे साधनों से	18
उर्वरक और अन्य खादों से	25
सुधरे हुये बीजों से	10
भूमि के विकास और उसे खेती योग्य बनाने से	8
कृषि प्रणाली मे आम सुधार से	15
योग-	100

स्रोत द्वितीय पचवर्षीय योजना संक्षिप्त, भारत सरकार, अध्याय 13, पृष्ठ 102

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे विचार था कि 2 करोड 10 लाख एकड भूमि में सिचाई होगी । 1 करोड़ 20 लाख एकड भूमि मे बडी और मध्यम सिचाई योजनाओं से और 90 लाख एकड भूमि मे सिचाई के लघु साधनों द्वारा ।

विचार था कि नत्रजन उर्वरक की खपत जो 1955 मे 610,000 टन थी बढाकर 18 लाख टन कर दी जायेगी । फास्फेट की खाद की खपत भी बढायी जायेगी

योजना मे कूडा और नगरों के कचरे के उपयोग की भी व्यवस्था थी । क्षेत्रों मे हरी खाद, खली और अन्य खादों के प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया जाना था । राज्य योजनाओं मे बीज विकास के कोई 3,000 फार्मों की व्यवस्था थी जिनके अन्तर्गत कुल मिलाकर कोई 93,000 एकड का क्षेत्र आता था । साधारणतया प्रत्येक राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्ड मे एक बीज फार्म और एक बीज गोदाम की योजना थी । सहकारी बीज गोदामों की स्थापना के भी कार्यक्रम अनेक राज्यों मे बनाये गये थे ।

दूसरी योजना मे केन्द्रीय और राज्य ट्रैक्टर सगठनों, व्यक्तिगत खेतिहरों और अन्य साधनों द्वारा 15 लाख एकड भूमि को फिर से खेती योग्य बनाने और 20 लाख एकड से अधिक के क्षेत्र में भूमि सुधार के कार्य करने का प्रस्ताव था ।

जिस पैमाने पर सिचाई के कार्यक्रम चल रहे थे उनके बावजूद काफी अधिक अनुपात मे भूमि वर्षा पर निर्भर रहती थी । इसलिये शुष्क खेती (बिना नहरों वाली भूमि की खेती) की सर्वोत्तम प्रणाली को व्यापक रुप से स्वीकार करने के महत्व पर विशेष जोर देना था । विशेष तौर पर जल और भूमि संरक्षण के लिये राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक कार्य क्षेत्रों मे ऊँची - नीची मीन पर बॉध बनाने को खास तौर पर प्रोत्साहित किया जाना था ।

पौधों को कीड से बचाने का कार्य तेजी से किया गया । वर्तमान केन्द्रों को सुदृढ़ किया जाना तथा पॉच नये केन्द्रों की स्थापना का विचार था ।

खाद्य और कृषि मत्रालय ने एक ऐसी योजना बनाने की व्यवस्था की थी जिसके अनुसार खेती के औजारों की सुधारा जाना और नया रुप प्रदान करना था । अनेक राज्यों ने किसानों को उचित मूल्य पर खेती के सुधरे हुये औजार देने की व्यवस्था की थी ।

राज्यों की योजनाओं मे 5,00,000 एकड़ के वर्तमान बागों को नया रुप देने और कोई 2,00,000 एकड़ भूमि मे नये बाग लगाने की व्यवस्था की गयी थी । सब्जियों के उत्पादन को भी प्रोत्साहन दिया गया, विशेष तौर पर नगरों के आस-पास । इसके लिये बीज उत्पादन गृह स्थापित किये जाने की व्यवस्था थी तथा सब्जी पैदा करने वालों को बीजों और पौधे उधार देने और फल और सब्जी की खेती करने वालों के लिये क्रय विक्रय सहकारी समितियॉ सगठित करने की व्यवस्था थी । राज्य योजनाओं मे आलू के बीजों की वृद्धि की भी व्यवस्था थी । फल और सब्जी सरक्षण को डिब्बा बदी उद्योग की सहायता देकर और ठडे गोदाम घर स्थापित करके प्रोत्साहन दिया जाना था तथा डिब्बे मे बद किये हुये फल और सब्जी का निर्यात बढाने का भी विचार था ।

दूसरी योजना मे कृषि कार्यक्रम इस विचार से बनाये गये थे कि बढ़ी हुई जनसख्या के लिये यथेष्ठ खाद्य सामग्री की व्यवस्था हो सके और विकासोन्मुख औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता को ध्यान मे रखकर कच्चा माल तेयार किया जा सके । साथ ही निर्यात के लिये और अधिक कृषि सामग्री बच सके । कृषि आयोजन के प्रमुख तत्व निम्न थे -

1- भूमि उपयोग की योजना

2- दीर्घकालीन और अल्पकालीन लक्ष्यों का निर्धारण

3- विकास कार्यक्रमों और सरकारी सहयोग को उत्पादन लक्ष्यों और भूमि उपयोग योजना के साथ श्रृखलाबद्ध करना जिसमे योजना के अनुसार खाद का आबण्टन शामिल था,

4- एक उचित मूल्य नीति

प्रत्येक जिले और विशेष तौर पर प्रत्येक राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास कार्य क्षेत्र के पास सतर्कता से निर्मित कृषि योजना होनी थी । इन स्थानीय

योजनाओं को फसल की किस्म, प्रमुख रुप से सिंचाई की व्यवस्था, ऋण और बाजार की सुविधायें, खाद की व्यवस्था और विस्तार कार्यकर्ताओं, विशेष तौर पर ग्राम सेवकों और खेतिहरों के निकट सम्पर्क को ध्यान मे रखकर तय करना था । कृषि उत्पादन को मोड़ देने की और अनाज की फसल पर अत्यधिक बल देने की दिशा मे भी कदम उठाये जाने की व्यवस्था थी ।

3.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना व कृषि -

तृतीय पचवर्षीय योजना मे 5 साल मे राष्ट्रीय आय मे कम से कम 30 प्रतिशत वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति आय मे कम से कम 17 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान था । उस समय उपलब्ध आर्थिक साधनों का अनुमान 7500 करोड रुपये था किन्तु जॉच पडताल से पता चला कि यदि देश मे बचत बढाने के लिये और उपाय किये जायें तो ये साधन और भी बढ सकते थे ।

आगे दी गई तालिका मे दिखाया गया है कि 7500 करोड़ रुपये किन-किन मुख्य-मुख्य मदों मे खर्च किये जाने थे -

सारणी-3.4

खर्च का ब्योरा

मद	दूसरी योजना कुल खर्च	प्रतिशत	राज्य	केन्द्र शासित प्रदेश	केन्द्र	तीसरी योजना कुल खर्च	प्रतिशत
खेती और सामुदायिक विकास	530	11	919	24	125	1068	14
सिंचाई के बड़े और मध्यम काम	420	9	630	2	18	650	9
बिजली	445	10	880	23	109	1012	13
ग्रामोद्योग और छोटे उद्योग	175	4	137	4	123	264	4
बड़े उद्योग और खनिज	900	20	70	-	1450	1520	20
यातायात और सचार	1300	28	226	35	1225	1486	20
सामाजिक सेवा, आदि	830	18	863	87	350	1300	17
कच्चा माल और अर्द्ध तैयार माल (इन्वेटरी)					200	200	3
योग -	4600	100	3725	175	3600	7500	100

स्रोत संक्षिप्त तीसरी पचवर्षीय योजना, अध्याय 4, पृष्ठ 26 योजना आयोग, भारत सरकार ।

तीसरी योजना के लिये कृषि उत्पादन के कार्यक्रमों के निर्माण मे नियामक विचार यह था कि कृषि सम्बन्धी प्रयत्नों मे किसी भी रुप मे वित्तीय या अन्य साधनों के अभाव के कारण रुकावट पैदा न हो । तदनुसार ही आवश्यकता के अनुरुप वित्त की पर्याप्त व्यवस्था की गई थी । इसके साथ यह आश्वासन दिया गया था कि यदि उत्पादन के लक्ष्य की पूर्ति के लिये अतिरिक्त साधन उपलब्ध करना आवश्यक पाया गया तो उन्हे भी योजना के बढने के साथ सुलभ किया जाएगा । उर्वरकों की आपूर्ति भी बडे पैमाने पर की जाने की व्यवस्था थी । राज्यों मे कृषि प्रशासन को सगठित करने के प्रयत्न किये जा रहे थे और विभिन्न अभिकरणों मे विशेषत उनमे जो कृषि सहकारिता सामुदायिक विकास और सिचाई से सम्बद्ध थे अधिकतम सभव समन्वय स्थापित करने पर बल दिया गया था । सहकारी सस्थाओं के माध्यम से ऋण की आपूर्ति को विस्तृत किया जा रहा था और ऋण को उत्पादन तथा हाट व्यवस्था से सम्बद्ध करने पर जोर दिया गया फिर भी यह कहना होगा कि इन प्रयत्नों का काफी महत्व होने के बावजूद ये अपने आप में इस बात की सतोषजनक गारण्टी नहीं थी कि इनसे तीसरी योजना के कृषि लक्ष्यों को प्राप्त ही कर लिया जायेगा ।

पहली और दूसरी योजना मे जो कृषि कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये थे उनमें एक बड़ी भारी कमी यह रह गयी थी और वह थी उन्नत प्रकार के कृषि उपकरणों का प्रयोग । उन्नत प्रकार के कृषि उपकरणों के प्रयोग मे प्रगति करने के लिये कई दिशाओं मे कदम उठाने की आवश्यकता थी । सम्बद्ध अधिकारियों द्वारा जिन अधिक महत्वपूर्ण दिशाओं मे कदम उठाये गये थे उनका सम्बन्ध निम्न बातों से था -

1- कृषि उपकरणों के लिये जिस प्रकार के लोहे और इस्पात की आवश्यकता हो, उसकी पर्याप्त आपूर्ति ।

2- प्रत्येक राज्य मे उन्नत प्रकार के कृषि उपकरणों के लिये अनुसन्धान,

परीक्षण तथा प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना,

3- उन्नत प्रकार के कृषि उपकरणों का प्रर्दशन करने और उन्हे लोकप्रिय बनाने के लिये जिला और खण्ड स्तर पर राज्य सरकारों द्वारा उपयुक्त विस्तार व्यवस्था ।

4- राजकीय कृषि विभागों के कृषि इंजीनियरिग अधिभागों को सुदृढ़ करना ।

5- उन्नत प्रकार के उपकरणों की आपूर्ति के लिये ऋण सम्बन्धी निश्चित प्रबन्ध करना और समस्त विस्तार प्रशिक्षण केन्द्रों मे कृषि कारखानों की स्थापना ।

कार्यान्वित किये जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की दृष्टि से तीसरी योजना के अन्त तक उत्पादन के जो लक्ष्य सामने रखे गये थे वे निम्न थे -

उत्पादन मे उन वृद्धियों का अर्थ था कि प्रति एकड़ पैदावार को काफी हद तक बढ़ाना होगा अर्थात् दूसरी योजना की औसत पैदावार से प्रति एकड़ चावल की पैदावार लगभग 27 5 प्रतिशत, गेहूँ की लगभग 20 प्रतिशत, तेलहन की लगभग 11 प्रतिशत, कपास की लगभग 14 प्रतिशत, पटसन की लगभग 16 प्रतिशत और गन्ने की पैदावार लगभग 18 प्रतिशत बढ़ानी थी । पैदावार मे ये अधिकाश वृद्धिया उन क्षेत्रों में कमी थी जिनमे सिंचाई होती थी और जहाॅ वर्षा निश्चित रुप से होती थी किन्तु अन्य क्षेत्रों मे भी भूमि सरक्षण और सूखी खेती के द्वारा औसत पैदावार मे कुछ वृद्धि जरुर होनी चाहिये थी ।

ऊपर जो लक्ष्य दिये गये थे उनके अनुसार कृषि उत्पादन का निदेशांक 1960-61 मे 135 से बढ़कर 1965-66 में 176 हो जाना चहिये था यानि 5 वर्ष

सारणी-3.5

तीसरी योजना मे उत्पादन के लक्ष्य

वस्तु	एकक	आधार-स्तर पर उत्पादन 1960-61	अतिरिक्त उत्पादन के लक्ष्य 1961-66	अनुमानित उत्पादन 1965-66	प्रतिशत मे वृद्धि
खाद्यान्न	लाख टन	760	240	1000	31 6
तेलहन	'	71	27	98	38 0
गन्ना (गुड़)	'	80	20	100	25 0
कपास	लाख गाँठे	51	19	70	37.2
पटसन	'	40	22	62*	55.0
नारियल	लाख फल	45000	7750	52750	17 2
सुपारी	हजार टन	93	7	100	7 5
काजू	'	73	77	150	105 5
काली मिर्च	'	26	1	27	3 9
इलायची	'	2 26	0.36	2 62	15.9
लाख	'	50	12	62	24 0
तम्बाकू	'	300	25	325	8 3
चाय	लाख पौंड	7250	1750	9000	24.1
काफी	हजार टन	48	32	80	67 7
रबड़	'	26 4	18 6	45	70 5

* इसमे मेस्ता सम्मिलित नहीं है जिसकी तीसरी योजना मे 13 लाख अतिरिक्त गाँठे प्राप्त हो सकती है ।

स्रोत संक्षिप्त तृतीय पचवर्षीय योजना, पृ0 73 योजना आयोग, भारत सरकार ।

की अवधि मे कुल वृद्धि लगभग 30 प्रतिशत होनी चाहिये थी । खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि 1960-61 में 16 औंस से बढ़कर 1965-66 मे 17.5 औंस हो जाने की सभावना रखी गयी थी । कपड़े की खपत प्रति वर्ष 15.5 गज से बढ़कर 17.2 गज होने की थी । तीसरी योजना की अवधि मे प्रतिदिन खाद्य तेलों की खपत 0.4 औंस से 0 5 औंस होने की आशा थी ।

तीसरी योजना मे व्यावसायिक फसलों विशेषत कपास, पटसन, तेलहनों का उत्पादन बढ़ाने के लिये और अधिक प्रयत्न किये जाने थे । इन फसलों के लिये विभिन्न वस्तु समितियों द्वारा विसतृत कार्यक्रम बनाये गये थे । इन फसलों और बागान फसलों विशेषत चाय, कॉफी और रबड के लिये पर्याप्त वित्त और उर्वरकों को उपलब्ध कराना था । योजना मे कई सम्बद्ध कृषि कार्यक्रमों की व्यवस्था की गई थी जिनमें फल, सब्जियॉ और सहायक अन्नों के उत्पादन के कार्यक्रम सम्मिलित थे ।

इस समय देश के कुल 2500 बाजारों मे 725 मडियों का नियमन किया जा रहा था । तीसरी योजना में शेष मडियों को भी नियमन की योजना के अन्तर्गत ले लिया जाने का विचार था हाट व्यवस्था /सूचना सेवा के अन्तर्गत सूचना केन्द्रों की सख्या काफी बढाई गयी । लगभग 500 हाट बाजार इन केन्द्रों के अन्तर्गत थे ।

इस समय सरकार के पास कुल भण्डारण क्षमता 25 लाख टन थी जिसमे से एक तिहाई पर उसका स्वामित्व था । इस क्षमता को बढाकर 50 लाख टन करना था जिसमे से लगभग 35 लाख टन क्षमता पर सरकार का अपना स्वामित्व होता । गोदाम निगमों की भण्डारण क्षमता को लगभग 3 लाख 50 हजार टन से बढ़ाकर 16 लाख टन से अधिक करना था और सरकारी समितियों के गोदामों की क्षमता को 8 लाख टन से बढ़ाकर लगभग 20 लाख टन करने का उद्देश्य था ।

कृषि कालेजों की सख्या 53 से बढ़ाकर 57 करनी थी और उसमे प्रतिवर्ष दाखिल होने वाले विद्यार्थियों की संख्या 56,00 से बढ़ाकर 6,200 करनी थी । उत्तर प्रदेश मे जो कृषि विश्वविद्यालय स्थापित किया जा चुका था, उसी के ढंग पर अन्य कृषि विश्वविद्यालय स्थापित करने के प्रस्तावों पर विचार किया जा रहा था । कृषि अनुसंधान के कार्यक्रमों मे जो बातें सम्मिलित की गई थी वे ये थीं - राज्यों मे अनुसन्धान संगठनों को सुदृढ़ बनाना, क्षेत्रीय आधार पर अनुसन्धान का विकास, भूमि विज्ञान और मृदा विज्ञान की नई संस्थाओं की स्थापना, चारा और घास-भूमियों के सम्बन्ध मे अनुसन्धान, विषाणु अनुसन्धान तथा सिचाई प्रणालियों तथा सिंचित क्षेत्रों मे उर्वरकों के प्रयोग से सम्बद्ध समस्याओं का गहन अध्ययन । राज्यों मे कृषि प्रशासन को दृढ बनाने वाले कार्यक्रमों को सर्वाधिक प्राथमिकता देकर कार्यान्वित करने की आवश्यकता थी । सूरतगढ के राजकीय फार्म के ढग पर एक या सम्भवत दो और राजकीय यांत्रिक फार्म स्थापित करने का विचार था ।

योजना की अवधि मे महत्वपूर्ण अन्न और कपास, तेलहन तथा पटसन जैसी व्यावसायिक, फसलों के लिये न्यूनतम लाभकारी दाम निश्चित कर देने से उत्पादन बढ़ाने के लिये आवश्यक उद्दीपक प्राप्त होने थे और इस प्रकार तीसरी योजना में विकास के जो विभिन्न कार्यक्रम रखे गये थे, वे और अधिक प्रभावशाली हो जायेगें । इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए सरकार को जिन मूल्यों पर खरीदना और बेंचना चाहिये, उनका निर्णय बुवाई के मौसम से काफी पहले ही करने का विचार था ।

3.4 चौथी पंचवर्षीय योजना और कृषि :-

कृषि क्षेत्र में चौथी योजना के दो प्रमुख लक्ष्य थे, पहला लक्ष्य अगले दस वर्षों मे 5% प्रतिवर्ष के हिसाब से उपज में वृद्धि करना था । दूसरा लक्ष्य यह था कि गॉव की आबादी के बडे से बडे हिस्से को, जिसमे छोटे किसान, पानी की कमी वाले

इलाकों के किसान शामिल थे, विकास में हिस्सा लेने का अवसर दिया जाना था जिससे उन्हें इसका लाभ मिले । अत प्राथमिकता वाले कार्यक्रम दो श्रेणियों के अन्तर्गत आते थे - वे कार्यक्रम जिनका लक्ष्य उत्पादन को अधिकतम बढ़ाना था और वे कार्यक्रम जिनका उद्देश्य असतुलन को समाप्त करना था ।

खेती किस गति से उत्पन्न होती है, उस पर उद्योगों का विकास, निर्यात और पूरी अर्थव्यवस्था का विकास निर्भर करता है । इसी आधार पर आर्थिक और सामाजिक स्थायित्व कायम किया जा सकता था और जन सामान्य के रहन-सहन को ऊँचा किया जा सकता था जिससे उन्हे अधिक पोषक आहार दिया जा सके । अत चौथी योजना की सफलता को अन्य बातों के अतिरिक्त सबसे अधिक खेती के क्षेत्र की उपलब्धियों के आधार पर आँका जाना था ।

अनाज और प्रमुख व्यापारिक फसलों के उत्पादन के चुने हुये लक्ष्य नीचे की सारणी मे दिये गये हैं - तब तक जितना हुआ था योजना के निर्धारित लक्ष्य उससे कहीं अधिक ऊँचे थे । उत्पादन का जो कार्यक्रम निश्चित किया था, उसमे अतिरिक्त भूमि मे खेती पर अधिक निर्भरता नहीं दिखायी गयी थी । अनुमान था कि खेती के कुल स्रोत में लगभग 10 लाख ट्रैक्टर की वृद्धि होने की आशा थी जो बेकार भूमि को खेती योग्य बनाने का लक्ष्य था । उत्पादन के लक्ष्यों को समन्वित अनुसंधान सिंचाई सुविधाओं, उर्वरकों, कीड़ों आदि से रक्षा करने वाली दवाओं तथा खेती के उपयोग की मशीनों के भरपूर प्रयोग द्वारा पूरा करने का प्रयास था ।

सारणी-3.6

अनाज और प्रमुख व्यापारिक फसलों के उत्पादन के लक्ष्य

क्र0 स0	जिन्स	इकाई	उत्पादन (1968-69)	1973-74 लक्ष्य
1	2	3	4	5
1-	अनाज	दस लाख टन	98.0	129.0
	चावल	'	39 0	52 0
	गेहूँ	'	18.0	24 0
	मक्का	'	6.2	8 0
	ज्वार	'	10 0	15.0
	बाजरा	'	5.1	7 0
	अन्य अनाज	'	7 2	8.0
	दालें	'	12.5	15.0
2-	गन्ना गुड़	'	12.0	15.0
3-	तिलहन	'	8.5	10.5
4-	कपास	दस लाख गाँठे	6.0	8.0
5-	पटसन	'	6 2	7 4
6-	तम्बाकू	दस लाख किग्रा0	350	450
7-	नारियल	दस लाख नारियल	5600	6600
8-	सुपारी	हजार टन	126	150
9-	काजू	'	131	207
10-	काली मिर्च	'	23	42
11-	लाख	'	35	52

स्रोत संक्षिप्त चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 41 योजना आयोग, भारत सरकार

सारणी-3.7

सघन खेती के अन्तर्गत विभिन्न लक्ष्य

क्रम स0	मद	इकाई	1968-69 प्रत्याशित	चौथी योजना के लक्ष्य
1-	अधिक उपज दने वाली किस्मे	दस लाख हेक्टर	9.20	25.00
	धान	"	2 60	10.10
	गेहूं	"	4 80	7 70
	मक्का	"	0 40	1 20
	ज्वार	"	0 70	3 20
	बाजरा	"	0 70	2 80
2-	एकाधिकार फसलें	"	6 00	15.00
3-	उर्वरकों की खपत	दस लाख टन		
	नाइट्रोजन	"	1.14	3.20
	फास्फेट	"	0.39	1.40
	पोटासी	"	0 16	0 90
4-	खाद और हरी खाद			
	कूड़े की खाद	"	4 00	6.50
	हरी खाद	दस लाख हेक्टेय्	8.46	12.00
5-	पौधों का संरक्षण	"	40.00	80.00
6-	छोटी सिंचाई	"	1.40	7.20
7-	कृषि भूमि पर भू संरक्षण	अतिरिक्त दस लाख हेक्टेयर अतिरिक्त	1 44	5.65
8-	सहकारियों की मार्फत ऋण			
	छोटी और मध्यम अवधि	करोड रु0	490	750
	लम्बी अवधि ।		120	700 *

* चौथी योजना की पूरी अवधि के लिये इसमें 200 करोड़ रु0 के उन ऋणों की राशि शामिल नहीं थी जो कृषि पुनर्वित्त निगम के पुनर्वित्त कार्यक्रमों के अन्तर्गत दिये गये थे ।

स्रोत . संक्षिप्त चौथी योजना, पृष्ठ 43, योजना आयोग भारत सरकार ।

खेती और अन्य सम्बन्धित कार्यक्रमों के लिये योजना मे 2,728 करोड रु0 की व्यवस्था की गई थी । विभिन्न मदों मे कितना धना रखा गया था, उसका विवरण निम्न है -

सारणी-3.8

क्रम सख्या	मद	तीसरी योजना	वार्षिक योजना 1966-69	चौथी योजना
1-	कृषि उत्पादन	203	252	420 (ख)
2-	छोटे किसानों और खेत मजदूरों का विकास	-	-	115
3-	अनुसन्धान और शिक्षा	(क)	(क)	85
4-	छोटी सिचाई	270	314	516
5-	भू-सरक्षण	77	88	159
6-	क्षेत्र विकास	2	13	38
7-	पशु पालन	43	34	94
8-	दुग्ध शालाये और दूध की सप्लाई	34	36	139 (ग)
9-	मछली पालन	23	37	83
10-	वन	46	44	93
11-	गोदाम, भण्डारण और हाट व्यवस्था	27	15	94
12-	अनाज को साफ करना और सहायक भोजन	(क)	(क)	19
13-	वित्त सगठनों को केन्द्रीय सहायता		40	324
14-	कृषि जिन्सों के समीकरण	-	140	255
15-	सहकारिता	76	64	179
16-	सामुदायिक विकास			
17-	पचायतें	280	99	115
	कुल	1089	1166	2778

(क) कृषि उत्पादन मे शामिल
(ख) राज्यों की योजनाओं मे छोटे किसानों के विकास तथा अनुसंधान और शिक्षा के लिये रखी गई राशि इसमे शामिल थी ।
(ग) भारतीय दुग्धशाला निगम के लिये निर्धारित 95 करोड़ रूपये की राशि इसमें शामिल थीं ।

स्रोत : चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 44 योजना आयोग भारत सरकार.

कुल निर्धारित राशि का एक बडा हिस्सा अर्थात् 1,425 करोड़ 51 लाख रुपये राज्यों के कार्यक्रमों, 71 करोड 58 लाख रुपये केन्द्र शासित प्रदेशों, 126 करोड़ 83 लाख रुपये केन्द्र द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रमों और 1,104 करोड 26 लाख रुपये केन्द्रीय कार्यक्रमों के लिये निर्धारित किये गये थे ।

योजना मे धन की व्यवस्था के अतिरिक्त खेती मे कुछ सस्थाये और निजी व्यक्ति भी धन लगाते थे । सस्थाओं मे भूमि विकास बैंक, कृषि पुनर्वित्त निगम और कृषि उद्योग निगम अपने कार्यक्रम पर्याप्त रुप से बढ़ाने वाले थे । इसके अलावा उन राज्यों में जहाॅ सहकारी आधार पर ऋण देने की समुचित व्यवस्था नहीं थी वहाॅ कृषि ऋण निगम स्थापित किये जाने का विचार था । एक ऋण गारण्टी निगम भी बनाया जाना था, जो उर्वरकों और खेती के उपयोग की अन्य वस्तुओं के लिये धन उपलब्ध कराने मे सहायक होगा । यह भी आशा की गयी थी कि व्यावसायिक बैंक किसानों की आवश्यकता को अधिकाधिक मात्रा मे पूरा करेगे । अनुमान था कि निजी आधार पर 1600 करोड रुपये की पूजी लगायी जायेगी ।

चौथी योजना में खेती की उपज बढाने के लिये विज्ञान और टेक्नॉलाजी के भरपूर उपयोग को सर्वाधिक महत्व देने के निर्णय के फलस्वरुप कृषि अनुसन्धान और शिक्षा के महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था । केवल केन्द्रीय क्षेत्र मे ही 55 करोड़ रुपये कृषि अनुसंधान के लिये 30 करोड़ रूपये कृषि शिक्षा के लिये रखे गये थे । कृषि अनुसन्धान कार्य मुख्यत केन्द्रीय अनुसन्धान सस्थाये, कृषि विश्वविद्यालय और कुछ सीमा तक कुछ राज्यों मे अनुसधान केन्द्र करेगे । देश की सर्वोच्च कृषि अनुसन्धान और शिक्षा संस्था भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद को मजबूत बनाने का विचार था । यह प्रयास था कि विभिन्न संस्थायें एक ही प्रकार का अनुसन्धान कार्य न करें और बड़ी संस्था मे संस्थाओं की स्थापना को भी रोकने का प्रयास था ।

कृषि अनुसन्धान की एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि पूरे देश मे समन्वित कृषि अनुसन्धान कार्यक्रम चलेगें जिनके लिये विभिन्न कृषि वैज्ञानिकों के पारस्परिक सहयोग और मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता थी । इस कार्य के लिये योजना मे 34 करोड़ 70 लाख रुपये की व्यवस्था की गई थी । चौथी योजना शुरु होने के समय 38 कार्यक्रमों को मजूरी दी जा चुकी थी और 32 कार्यक्रम चालू थे । चौथी योजना की अवधि मे 44 नये कार्यक्रम प्रारम्भ करने का विचार था ।

बारानी खेती, पौधों की रक्षा तथा अधिक उपज देने वाली किस्मे उगाने के बाद मिट्टी के पोषक तत्वों मे कमी और फसल की कटाई के बाद अनाज की गहाई करने, अनाज सुखाने, गोदामों में रखने और साफ करने आदि के बारे मे अनुसंधान पर विशेष जोर देना था ।

मिट्टी पौधे और पानी के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे मे अनुसन्धान के लिये नई दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसन्धान सस्था में एक जल टेक्नालॉजी केन्द्र और करनाल मे लोनी मिट्टी सम्बन्धी अनुसंधान के लिये केन्द्रीय अनुसधान सस्था बनायी जानी थी ।

छ नये कृषि विश्वविद्यालय खोलने का प्रस्ताव था । 21 करोड 50 लाख रुपये की राशि केवल इसलिये रखी गई थी कि भारतीय कृषि अनुसधान परिषद कृषि विश्वविद्यालयों को कुछ विशेष विकास कार्यक्रमों के लिये सहायता दे सके ।

किसानों की शिक्षा और प्रशिक्षण में जटिलता और मशीनों के उपयोग पर आधारित उत्पादन कार्यक्रम की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बदला जाना था । इसके अन्तर्गत पूरे देश में नई विधियों से खेती के प्रदर्शनों की विशेष रुप से व्यवस्था

की गई थी इसके लिये 2 करोड़ 45 लाख रुपया रखा गया था । अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम जिन जिलों में चालू थे वहाँ 100 प्रदर्शन किये जाने थे, प्रत्येक जिले में 15 प्रदर्शन होने थे ।

3.5 पाँचवीं योजना व कृषि :-

पाँचवीं योजना के पूर्व की योजनाओं मे कृषि विकास के क्रम मे इस योजना के अन्तर्गत कृषि विकास हेतु कुल परिव्ययों, उत्पादन लक्ष्यों तथा विकास कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया जा सकता है । पाँचवीं योजना के प्रमुख उद्देश्यों के संदर्भ में गरीबी निवारण, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति तथा आवश्यक न्यूनतम विकास दर को प्राप्त करना व आर्थिक रुप से कमजोर वर्गों के विकास हेतु कृषि विकास कार्यक्रम व लक्ष्य निर्धारित किये गये । इस योजना मे 53,441 करोड रुपये के कुल परिव्यय में से 37,250 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र तथा 16,101 करोड रु0 व्यक्तिगत क्षेत्र में निर्धारित किया गया । सार्वजनिक क्षेत्र की कुल मात्रा से 4730 करोड़ रुपये था 20.1 प्रतिशत कृषि विकास के ऊपर निर्धारित किया गया । इस योजना मे कृषि विकास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बात यह है कि कृषि फसलों के उत्पादन का लक्ष्य पूरे 5 वर्ष की समयावधि हेतु निर्धारित किया गया तथा चौथी योजना मे 3.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर की तुलना मे इस योजना में कृषि विकास की दर को 4 2 प्रतिशत निर्धारित किया गया । पाँचवीं योजना में कृषि विकास हेतु विकास के मुख्य मदों के अन्तर्गत संशोधित परिव्यय का विवरण निम्न तालिका मे देखा जा सकता है -

सारणी-3.9

पॉचवीं पंचवर्षीय योजना परिव्यय 1974-79

(करोड़ रु0)

	पांचवी योजना प्रारुप (1)	1974-77 (2)	1977-79 (3)	1974-79 (4)
1- कृषि तथा सम्बद्ध कार्यक्रम	4935.00	2130.19	2513.40	4643.59
2- विद्युत	6190.00	3513.05	3780 85	7293.90
3- उद्योग तथा खनन	9029 00	5205 35	4995 25	10200.60
4- सिचाई तथा बाढ़ नियन्त्रण	2681 00	1651.50	1788 68	3440.18
5- परिवहन तथा सचार	7115 00	3552 67	3328 76	6881.43
6- शिक्षा	1726 00	587 77	696 52	1284.29
7- आर्थिक व सामान्य सेवाओं सहित सामाजिक और सामुदायिक सेवायें जिसमें शामिल नहीं है	5074.00	2322 42	2444.35	4766.77
8- पहाड़ी तथा जनजातीय क्षेत्र तथा उत्तर पूर्वी परिषद स्कीमे	500.00	177.50	272.50	450.00
9- वितरण अभी किया जाना है		260.44	66.29	326.73
10- योग	3725 00[2]	19400.89	19886 60[1]	39287.49[1]

1- इसमे 16 करोड़ रु0 की वह राशि शामिल नहीं की गई जिसके लिये क्षेत्रवार व्योरा नहीं दिया गया है ।

2- इसमें क्षेत्रवार व्योरे में 203 करोड़ रु0 की राशि शामिल नहीं है जो बाद में जोडी गई है ।

स्रोत पॉचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79), अध्याय 5, पृष्ठ 50-51, योजना आयोग, भारत सरकार ।

इस तरह कृषि व सिंचाई सम्बन्धी विकास कार्यक्रमों पर व्यय की इस मात्रा के साथ कृषि आगतों के प्रयोग में वृद्धि पर जोर दिया गया अर्थात् इस योजना में ऊँची उपज किस्म के बीजों के प्रयोग तथा अतिरिक्त सिंचाई शक्ति को उत्पन्न करने तथा कुल उर्वरकों के उपभोग विस्तार पर बल दिया गया । योजना की इस समयावधि में कृषि उत्पादन महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित होता रहा है, इस तरह 1975-76 में खाद्यान्नों का उत्पादन 121 मिलियन टन पहुँच गया जबकि 1976-77 में यह गिरकर 112 मिलियन टन हो गया । पुनः अच्छी मानसून के कारण यह और अधिक ऊँचे स्तर 126 मिलियन टन पर पहुँच गया, इसी तरह 1975-76 में तिलहनों का उत्पादन जो 10 मिलियन टन था वह गिरकर 1976-77 में 7.8 मिलियन टन हो गया 1977-78 में यह पुनः 8.9 मिलियन टन हो गया । पाँचवीं योजना में विभिन्न खाद्यान्नों तथा अन्य कृषि फसलों के उत्पादन स्थिति के आधार पर कृषि विकास की असन्तोषजनक स्थिति ही मोटे तौर पर मौसम व जलवायु सम्बन्धी अनिश्चिततायें तथा योजना की असफलता कही जा सकती है । इस योजना में कृषि विकास सम्बन्धी विभिन्न फसलों के उत्पादन लक्ष्यों की स्थिति को आगे दी गयी सारणी में दिखाया जा सकता है -

सारणी-3.10

पाँचवी योजना - फसल उत्पादन के लक्ष्य

फसल	यूनिट	चौथी योजना के पाँच वर्षों का प्रत्याशित उत्पादन	पाँचवी योजना के पाँच वर्षों के लक्ष्य	परिकल्पित आधार स्तर 1973-74	उच्च लक्षित उत्पादन 1978-79
0	1	2	3	4	5
1- चावल	मीट्रिक टन	208.0	254 0	44 0	54.0
2- गेहूँ	"	126 0	168.0	30.0	38.0
3- मक्का	"	30.0	37.0	6.5	8.0
4- ज्वार	"	42.0	51.0	9.5	11.0
5- बाजरा	"	30.0	37.0	6 5	8.0
6- अन्य अनाज	"	29.0	33.0	6.0	7.0
7- दालें	"	55.0	65.0	11.5	14.0
8- कुल अनाज	"	520.0	645.0	114.0	140.0
9- तिलहन	"	41.5	55.0	9.4	12.5
10-गन्ना	"	635.0	775.0	134.0	170 0
11-कपास	लाख गाँठे	281.0	360.0	65.0	80.0
12-पटसन तथा मेस्टा	"	320.0	360 0	67.0	77.0

स्रोत . पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79) प्रारुप भाग 2, अध्याय 2, पृष्ठ 6, योजना आयोग, भारत सरकार ।

उपर्युक्त फसलों के उत्पादन लक्ष्यों एव प्राप्तियों के आधार पर यह परिकल्पना की गयी है कि इसके आधार पर देश मे खाद्यान्नों के सम्बन्ध मे आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकेगी तथा साथ ही साथ खाद्यान्नों का संचित भण्डार भी उत्पन्न किया जा सकेगा । इस योजना मे वाणिज्यिक फसलों की वृद्धि से औद्योगिक कच्चे माल द्वारा स्वदेशी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त कुछ निर्यात की आवश्यकता पर भी विचार किया गया ।

पॉचवी योजना मे कृषि उत्पादन की तकनीकी, व्यूहनीति व्यापक स्तर पर शुष्क कृषि विधियों का प्रयोग करना, सिंचित क्षेत्रों मे उन्नतशील बीजों के प्रयोग को बढ़ावा देना आदि था । कृषि क्षेत्र में विकास सम्बन्धी विभिन्न भौतिक कार्यक्रमों मे कुछ विशेष के लक्ष्यों के आधार पर कृषि फसलों, उर्वरकों के प्रयोग, कीटनाशक दवाओं के प्रयोग, भूमि संरक्षण, पशु पालन व डेरी व्यवसाय, मत्स्य पालन व वानिकी सम्बन्धी विकास कार्यक्रमों के लक्ष्यों को सारणी 3.11 मे प्रदर्शित किया गया है -

सारणी-3.11

पाँचवी योजना के चुने हुये भौतिक कार्यक्रमों के लक्ष्य

	वस्तु	इकाई	1973-74 अनुमानित	1978-79 अस्थायी लक्ष्य
	0	1	2	3
1-	अधिक पैदावार वाली किस्मों का कृषि क्षेत्र	दस लाख हेक्टेयर		
	धान	"	9 50	16 50
	गेहूँ	"	10 80	15.00
	मक्का	"	0.60	1.00
	ज्वार	"	1.10	2.50
	बाजरा	"	3 00	5 00
	कुल	"	25.00	40.00
2-	रासायनिक खाद की खपत	मीट्रिक टन		
	नाइट्रोजन युक्त (एन)	"	1 97	5 20
	फास्फेट युक्त (पी-2 ओ-5)	"	0 62	1 80
	पोटाशयुक्त (के-2 ओ-5)	"	0 41	1 00
3-	कीटनाशकों की खपत	टन	40 00	74 00
4-	कृषि भूमि की उर्वरता भी रहना	दस लाख ट्रैक्टर	15 00	25 00
5-	बड़ी और मध्यम सिचाई (उपयोगिता स्तर)	"	19.6	24.8
6-	छोटी सिंचाई	"	23 5	29 5
7-	अल्पावधि कृषि ऋण	करोड़ रुपये मे		
	(क) सहकारी		650	1300
	(ख) व्यावसायिक बैंक		75	400
	कुल योग		725	1700

स्रोत : पाँचवी पंचवर्षीय योजना प्रारुप 1974-79, अध्याय 2, पृष्ठ 8, योजना आयोग, भारत

पॉचवी योजना मे कृषि विकास के सम्बन्ध मे ग्रामीण निर्धनता निवारण हेतु विशेष कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के किसी भी विकास कार्यक्रमों मे निर्धन लोगों को जोडा जा सके । चौथी पचवर्षीय योजना मे ग्रामीण व कृषि विकास हेतु चलाये गये विभिन्न कार्यक्रमों को इस योजना मे समन्वित करने के प्रस्तावित किया गया । इस तरह कृषि व फसलों के विकास के साथ-साथ सहायक कार्यों तथा रोजगार अवसरों के सृजन पर बल दिया गया ।*

3.6 छठी पंचवर्षीय योजना व कृषि .-

छठी योजना की अवधि मे कृषि सवृद्धि स्वरुप को देशीय खपत और निर्यात दोनों ही के लिये कृषि वस्तुओं की तात्कालिक तथा दीर्घावधि आवश्यकताओं को ध्यान मे रखना था ।

इस शताब्दी के आरम्भ से लेकर हमारे कृषि विकास मे तीन प्रमुख अवस्थाये निर्धारित की जा सकती है । 1900 से 1947 तक पहली प्रावस्था मे कृषि मे लगभग प्रतिरोध रहा । जैसा कि इस अवधि मे प्राप्त कृषि उत्पादन की लगभग 0.3% प्रति वर्ष की सवृद्धि दर से स्पष्ट है । 1950 से 1980 तक दूसरी प्रावस्था मे कृषि प्रणालियों के आधुनिकीकरण मे पर्याप्त प्रगति हुई है जिसके लिये (क) वैज्ञानिक अनुसधान पर आधारित शिल्पविज्ञान, (ख) सेवाओं की व्यापकता (ग) भूमि सुधार, कीमत निर्धारण, वसूली और वितरण मे सरकारी नीतियों के विकास और विस्तार के संबंध में किये गये उपाय सराहनीय है । इनके परिणामस्वरुप 1967-68 से 1978-79 तक की अवधि मे कृषि उत्पादन 2.8% की वार्षिक मिश्रित दर से बढ़ा । तीसरी प्रावस्था जो 1980 से आरम्भ हुई है उसकी विशेषता विपणन और व्यापार और संस्थागत आधारस्वरुप कार्यों पर अधिक ध्यान देने से स्पष्ट होगी तथा इनसे छोटे और मझोले किसानों की कठिनाइयाँ कम करने और छोटी जोतों द्वारा प्राप्त सघन कृषि के

---

* स्रोत इकनोमिक सर्वे, 1974-75, अध्याय 2, पृष्ठ 9, भारत सरकार ।

अधिकतम लाभ प्राप्त करने मे सहायता मिल सकती है ।

हमारी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का कृषि स्वरुप इस प्रकार का है जिसमें छोटे और मझौले किसान देश की लगभग 73% प्रचालनात्मक जोतों की काश्त करते है, यद्यपि व केवल लगभग 23% काश्त क्षेत्र को ही सभालते है । इसीलिये अकेले कृषि से उनकी कुल आय कम रहती और असिंचित क्षेत्रों मे यह अनिश्चित भी होती है । इस समस्या का दीर्घावधि हल जैसे उपायों से नहीं किया जा सकता जैसे ऋणों को बट्टे खाते मे डालना और वसूली कीमतों का ऐसे स्तरों पर निर्धारण करना जिनसे कृषि उत्पादनों की खपत के निम्न स्तर और भी कम होते जाये ।

छठी योजना की अवधि मे कृषि कार्यक्रमों के उद्देश्य ये थे -

(क) पहले प्राप्त हो चुके लाभों को समेकित करना ,

(ख) भूमि सुधारों के कार्यान्वयन की गति को तेज करना और लाभग्राहियों के लिये सस्था निर्माण की गति तेज करना ,

(ग) नये शिल्पविज्ञान के लाभों का और अधिक किसानों तक फसल पद्धतियों और क्षेत्रों तक विस्तार करना, और नकदी और गैर नकदी निवेशों की ओर साथ ही ध्यान देते हुये फार्म प्रबन्ध की अधिक दक्षता को बढ़ावा देना ,

(घ) प्रभावी राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा पद्धति के रुप मे कृषि सवृद्धि को न केवल बनाये रखने के लिये उपकरण के रुप मे बनाना, बल्कि इसे ग्रामीण क्षेत्रों में आय और रोजगार सृजन के उत्प्रेरण के रुप मे बनाना,

(ड) परिस्थितिकी, मितव्ययिता, ऊर्जा सरक्षण और रोजगार सृजन के विचारों पर आधारित भूमि जल उपयोग के वैज्ञानिक स्वरुप को बढ़ावा देना ,

(च) उत्पादन, संरक्षण, विपणन और वितरण की आवश्यकताओं पर एकीकृत रुप में ध्यान देकर उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के हितों की रक्षा करना ।

फसल के उत्पादन मे प्रवृत्तियाँ और वर्ष 1950-51 से उपज की दर के ऑकडों से प्रति हेक्टेयर भूमि में कृषि उत्पादन और उत्पादकता दोनों ही के स्तर को बढ़ाने के संबध मे हुई पर्याप्त प्रगति के बारे मे पता चलता है । वर्तमान अधिक स्थायी कृषि मे योगदान देने वाले मुख्य उपादान ये है - (1) अधिकाधिक सिंचाई क्षमता (2) उर्वरकों तथा कीटनाशकों का अधिकाधिक उपयोग (3) फसल की अधिक किस्में और बढ़िया बीज, (4) प्रमुख अनाज, कपास, गन्ना आदि के लिये उत्पादन शिल्प विज्ञान का अधिक ऊँचा स्तर ।

छठी योजना की अवधि मे फसल उत्पादन के लिये मुख्य कार्यनीति निम्नांकित सिद्धान्तों पर आधारित होगी -

(क) बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये खाद्यान्न के उत्पादन मे निरन्तर सवृद्धि और लोगों के भोजन के पोषाहार के स्तर मे सुधार करने के लिये दालों के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करना ।

(ख) तिलहनों के उत्पादन मे आत्म निर्भरता प्राप्त करने का उद्देश्य रखना ताकि खाद्य तेलों का आयात समाप्त किया जा सके ।

(ग) चाय, काफी, तम्बाकू, काजू, मसाले, पटसन, कपास, फल, सब्जियों जैसी निर्यातोन्मुख फसलों के उत्पादन मे वृद्धि करना ।

1967-68 से 1978-79 तक की अवधि मे कृषि उत्पादन मे 2.8% वार्षिक यौगिक दर से वृद्धि हुई है जबकि छठी पचवर्षीय योजना मे अर्थव्यवस्था की 5 2% के लगभग समग्र वार्षिक सवृद्धि दर प्राप्त करने के लिये यह महत्वपूर्ण और

आवश्यक है कि उत्पादन की वार्षिक सवृद्धि दर, जो विभिन्न फसलों के सबध मे भिन्न-भिन्न होगी, वर्ष 1979-80 मे मूल्य पर 4 5% के भीतर होनी चाहिये ।

खाद्यान्न सम्पूर्ण खाद्यान्न के लिये उत्पादन, क्षेत्र और उपज की सवृद्धि दर 1949-50 से 1978-79 तक की अवधि मे क्रमश 2 66, 0 84, और 1 52% प्रतिवर्ष रही । हाल ही की 1967-79 की अवधि मे यह प्रतिशत क्रमश 2 77, 0 44 और 1 84 रही । 1975-76 मे 1210 लाख टन, 1970-71 मे 1084 लाख टन, 1969-70 मे 995 लाख टन के मुकावले 1977-78 1264 लाख टन के उत्पादन सहित पॉचवीं योजना की अवधि के अत मे प्रमुख प्रगति हुई थी । वर्ष 1978-79 मे और सुधार दिखाई दिया और 1319 लाख टन उत्पादन हुआ ।

लेकिन वर्ष 1979-80 मे लगभग 1090 लाख टन तक की तेजी से कमी आई जो देश के अनेक भागों मे खरीफ के मौसम मे गंभीर सूखे के कारण थी । इस कमी के बावजूद, भारतीय कृषि मे बढ़ती हुई मजबूती और प्रगति के प्रमाण दिखाई देते है । छठी योजना का लक्ष्य 1985-86 1536 लाख टन का है, इसे प्राप्त करने के लिये हमें अनुसंधान और विकास दोनों ही के बारे में अपने प्रयत्नों को बढ़ाना है ।

पिछले कुछ वर्षों मे चावल के उत्पादन मे महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जो 1978-79 में 538 लाख टन के सभी समय के स्तर तक पहुँच गयी । लेकिन व्यापक सूखे के कारण 1979-80 मे इसमे कमी आ गई और यह घटकर 422 लाख टन रह गयी । चावल के उत्पादन मे यह वृद्धि, मिनीकिट (लघु) कार्यक्रम समुदाय कार्यक्रमों के जरिये समय पर फसल की पौध लगाने, सतुलित उर्वरकों के अधिकाधिक उपयोग, विभिन्न विस्तार और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिये अपनायी गयी अच्छी फसल प्रबन्ध पद्धतियों की सहायता से चावल की अधिक उपज देने वाली किस्म के क्षेत्र का विस्तार

करने के द्वारा ही सभव हो सकी । इसके अलावा चावल का उपभोग न करने वाले पजाब और हरियाणा राज्यों मे बडे पैमाने पर चावल की काश्त आरम्भ की गई है ।

1984-85 के लिये जो छठी योजना का अतिम वर्ष है वर्ष 1967-69 मे परिकल्पित 512 4 लाख टन के प्रवृत्ति आधार स्तर से 630 लाख टन करने का विचार है । 120 लाख टन का अतिरिक्त उत्पादन इनके जरिये प्राप्त किया जायेगा (1) अधिक उपज देने वाली किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्र को 136 लाख हेक्टेयर से बढाकर 250 लाख हेक्टेयर करके (2) समुदाय रोपणी मिनीकेट (लघु) प्रदर्शन और प्रशिक्षण सबधी वर्तमान स्कीम, का विस्तार करके, (3) नवीनतम शिल्पविज्ञान को अपना करके उपरिभूमि के चावल की उपज मे वृद्धि करने के लिये गहन उपाय करके ।

1978-79 मे गेहूँ का उत्पादन 355 लाख टन प्राप्त किया गया था। वर्ष 1979-80 मे गेहूँ का उत्पादन घटकर 316 लाख टन रह गया । गेहूँ के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र लगभग 62% है जिसमे से दो तिहाई नलकूपों तथा पम्प सैटों के अन्तर्गत है और शेष नहर सिचाई के अतर्गत है । अल्पावधि की किस्मे पूर्वी राज्यों मे बहुत लोकप्रिय रही है । लगातार मिलने वाली नलकूप सिचाई के अन्तर्गत पजाब और हरियाणा मे उत्पादन मे पर्याप्त रुप से वृद्धि हुई है । लगभग 1500 किग्रा० के के राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा इन राज्यों के अनेक जिलों मे प्रति हेक्टेयर उपज राष्ट्रीय औसत से लगभग दूनी है ।

356 4 लाख टन के आधार के मुकाबले छठी योजना का उद्देश्य 440 लाख टन का लक्ष्य प्राप्त करने का है । गेहूँ के उत्पादन मे वृद्धि करने की कार्यनीति में ये शामिल होंगे - (क) सिंचाई क्षेत्र मे वृद्धि करने के साथ अधिक उपज देने वाली

किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्र को 135 लाख हे0 से बढाकर 190 लाख हे0 करना (ख) रासायनिक उर्वरकों का अधिक उपयोग करना (ग) कमियों को सुधारने के लिये जस्ते और अन्य अलग-अलग पोषकों का उपयोग करना (घ) अधिक अच्छे अकुरण और अच्छी फसल की वृद्धि के लिये उपयुक्त बीज दर का उपयोग करके बीज बोने के यंत्र के साथ बड़े क्षेत्रों मे कतार मे गेहूँ बोने का प्रदर्शन करना, (ङ) पर्याप्त विस्तार सेवाओं सहित शिल्प विज्ञान का अधिक विस्तार करना ।

मोटे अनाज के उत्पादन की मात्रा खाद्यान्न के उत्पादन मे लगभग 300 लाख टन है । उनके उत्पादन मे व्यापक उतार-चढ़ाव होता रहता है जो मौसम की दशाओं पर निर्भर करता है । विशेषकर 1976-79 के पिछले तीन वर्षों मे मोटे अनाज के अन्तर्गत क्षेत्र में मामूली कमी दिखाई दी । उत्पादन में कुछ वृद्धि हुई है जो मुख्य रुप से उत्पादकता मे वृद्धि होने के कारण है और ऐसा अधिक उपज देने वाली किस्म के सकर (बीज) किस्मों और उन्नत कृषि पद्धतियों के फलस्वरुप हो सका है ।

छठी योजना का मुख्य उद्देश्य मोटे अनाज का 320 लाख टन का लक्ष्य प्राप्त करने का है । इससे सबंधित कार्यनीति मे 14 लाख हे0 क्षेत्र मे वृद्धि (10 लाख हे0 खरीफ जवार का क्षेत्र और 4 लाख हे0 मकई का क्षेत्र) और अधिक उपज वाली किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्र को बढ़ाना ।

अनाज की दिशा मे दालों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि वर्ष 1949-50 से 1978-79 तक की अवधि मे उनके उत्पादन, क्षेत्र और उपज की सवृद्धि दर 1. प्रतिवर्ष से भी काफी कम रही है । पिछले समय में दालों के अन्तर्गत क्षेत्र 220 लाख हे. से 240 लाख हे के मध्य रहा और उनका उत्पादन 100 और 130 लाख टन के बीच रहा । लेकिन 1979-80 में यह उत्पादन घटकर

84 लाख टन रह गया । सामान्यत रुप से इनका उत्पादन वर्षा सिचित दशाओं मे होता है जिसका परिणाम यह होता है कि किसान दालों की काश्त मे अपने सीमित संसाधनों का निवेश करने मे सकोच करते है ।

लोगों के भोजन मे दालों के महत्व देखते हुये और इसकी माग और पूर्ति के अतर को कम करने की दृष्टि से तथा आयात के सीमित क्षेत्र को देखते हुये छठी योजना मे दालों के उत्पादन को बढाने के लिये विशेष प्रयत्न किया जायेगा । 116 लाख टन के आधार के मुकाबले छठी योजना मे दाल उत्पादन का लक्ष्य 145 लाख टन रखा गया ।

सारणी-3.12

1980-85 की छठी पचवर्षीय योजना मे फसल उत्पादन के लक्ष्य

क्रम स0	फसल	1979-80 को आधार स्तर मानकर (प्रवृत्ति अनुमान	योजना लक्ष्य 1984-85	कॉलम 4 की कॉलम 3 से यौगिक सवृद्धि दर (प्रतिशत प्रतिवर्ष)
	1	2	3	4
खाद्यान्न (दस लाख टन)				
1-	चावल	51 24	63 00	4 2
2-	ज्वार	10.88	12 00	
3-	बाजरा	5.28	5.80	
4-	मक्का	6.23	6.80	
5-	रागी	2.85	2.70	
6-	छोटा बाजरा	1.83	1.90	
7-	गेहूँ	35 64	44 00	4 3
8-	जौ	2 30	2 90	
कुल अनाज		116 25	139 10	
दालें		11 61	14 50	
जोड़ खाद्यान्न		127.86 या 128 00	153.60	3 9

3.7 सातवीं पंचवर्षीय योजना एवं कृषि .-

सातवीं पचवर्षीय योजना का प्रारुप राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकृत किया गया । यह बात स्वीकार की गयी कि आयोजन के आरम्भ के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था ने अपने मूल उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर लगातार प्रगति की है । ये उद्देश्य थे एक स्वतत्र, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की स्थापना, साम्य एवं न्याय पर आधारित सामाजिक प्रणाली की स्थापना, सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं को प्रभावी रुप मे कम करना और देशीय तकनालॉजीय विकास के लिये सुदृढ आधार तैयार करना । अब इस बात के ठोस प्रमाण प्राप्त थे कि विशेष रुप मे 1970-80 के मध्य के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था विकास पथ के ऊँचे स्तर पर चल रही थी । छठी योजना के सफल समापन के पश्चात् अब यह सम्भव हुआ कि सातवीं योजना के दौरान सामाजिक न्याय के साथ आत्मनिर्भर विकास के उद्देश्य की ओर तेजी से बढ़ा जा सकता है ।

कृषि उत्पादन छठी योजना मे वृद्धि की ओर बढ रहा था, यह वृद्धि खासतौर पर अन्न उत्पादन की दिशा मे दृष्टिगोचर हुई । अनाज उत्पादन जो कि 1978-79 मे 132 मिलीयन टन था, 1983-84 मे तीव्र गति से बढकर 151.5 मिलियन टन हो गया । आगे दी गई तालिका के द्वारा कृषि उत्पादन तथा अन्य साधनों के मध्य सम्बन्ध को देखा जा सकता है -

सारणी-3.13

कृषि उत्पादन मे वृद्धि तथा चुने हुये आगत

	इकाई	1978-79	छठी योजना लक्ष्य	1983-84 वास्तविक	1984-85 अनुमानित
1- अनाज	मिली0टन0	131 9	153 6	151.5	148.15
2- तेल बीज	"	10 1	13 0	12.8	13 0
3- गन्ना	"	151.6	215 00	177.0	180.0
4- कपास	मिली0 गॉठ	7.9	9.20	6.58	8.50
5- जूट एव मेस्टा	"	8.3	9 08	7 40	7.80
6- एच0वाई0वी0	मिली0हे0	41 1	56 00	52 50	56.00
7- खाद	मिली0टन				
यन	"	3.4	6 00	5 24	5 6
पी0	"	1 1	2 30	1 76	1 9
के0	"	0 6	1 30	0 80	0 9
कुल	"	5 1	9 60	7 80	8.4
8- सिचाई					
सभाव्य	मिली0हे0	54.46	70.35	65.62	67.89
क्षमता	"	50 65	66 24	58.71	60.47

स्रोत सातवीं पचवर्षीय योजना भाग-2, अध्याय 1, पृष्ठ 1 योजना आयोग, भारत सरकार ।

सारणी-3.14

कृषि उत्पादन

फसल	इकाई	1984-85 अनुमानित आधार पर	सातवीं योजना लक्ष्य 1989-90	सकल वृद्धि दर कॉलम 4 से कॉलम 3 % प्रतिवर्ष
1	2	3	4	5
1- अनाज	मिली0 टन			
अ- चावल	"	60 00	73.00-75 00	4 00-4 56
ब- गेहूँ	"	45.00	56.00-57 00	4 47-4 84
स- मोटे अनाज	"	32 00	34.00-35 00	1 22-1 81
द- दाल	"	13 00	15.00-16.00	2 90-4.25
कुल अनाज	"	150 00	178 00-183 00	3.48-4 06
2- तेल-बीज				
अ- मूँगफली	"	7 30	9 37	5 11
ब- तिल्ली एवं सरसो	"	2 60	3 82	8 03
स- सीसामम	"	0.60	0.74	4 28
द- सैफ्लावर	"	0.50	0.72	7.71
न- नाइगर	"	0.20	0.25	4.56
प- सोयाबीन	"	0 60	1 28	16.27
फ- सूरजमुखी	"	0.30	0.06	14.98
ब- लिन्सीड	"	0 50	0 66	5.61
भ- कैस्टर	"	0 40	0 56	6 96
कुल तेल बीज	"	13 00	18 00	6.72
3- गन्ना	मिली0टन	180 00	217.00	3.81
4- कपास	मिली0 गाँठ 170 किग्रा0	7.50	9.50	4.84
5- जूट व मेस्टा	180 "	7 50	9 50	4.84

स्रोत.सातवीं पचवर्षीय योजना, भाग-2 अध्याय-1, पृ0 5, तालिका 1 2, योजना आयोग, भारत सरकार

सातवीं योजना के दौरान कुल उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर 4% और मूल्य वृद्धि दर 2.5% रहने की सभावना थी । कृषि उत्पादन के लक्ष्यों का निरीक्षण करने से पता चलता है कि योजना के अन्त तक खाद्यान्न का उत्पादन जो 1984-85 मे 15,00 लाख टन था, बढकर 1,780-1,830 लाख टन हो जाना था । इसमें चावल का उत्पादन 1984-85 मे 600 लाख टन से बढकर 1989-90 मे 730-750 लाख टन हो जाना था अर्थात् इसमे 4 0-4 6% की वार्षिक वृद्धि होनी थी । इसी प्रकार गेहूँ का उत्पादन 450 लाख टन से 560-570 लाख टन तक बढ जाने की सभावना की अर्थात् 4 5-4 8% की वार्षिक वृद्धि दर ।

जहाँ तक वाणिज्यिक फसलों का सबध है, तिलहनों के उत्पादन की वृद्धि दर 9.7%, रुई एव पटसन मे यह 4 8% और गन्ने मे यह 3.8% होनी थी । योजना के सबध मे एक सन्तोषजनक बात यह है कि दूध का उत्पादन 388 लाख टन से बढ़कर 509 लाख टन करने का लक्ष्य है अर्थात् 5.6 प्रतिशत की वृद्धि दर और अण्डों के उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर 8.1 प्रतिशत होनी थी । जाहिर है कि ये दोनों वस्तुये एक पौष्टिक एवं संतुलित भोजन उपलब्ध कराने मे महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है ।

सातवीं योजना मे यह कल्पना की गयी थी कि कृषि मे अतिरिक्त उत्पादन का महत्वपूर्ण भाग छोटे तथा सीमान्त किसानों और वर्षा वाले एव शुष्क खेती क्षेत्रों से प्राप्त किया जाना था । कृषि विकास विधि में सिचाई सुविधाओं के विस्तार को केन्द्रीय महत्व दिया गया । योजना का बल इस बात पर था कि चल रही जो परियोजनाये निर्माण की दृष्टि से काफी आगे बढ चुकी है उन्हें पहले पूरा किया जाना था और जल प्रबन्ध मे उन्नति द्वारा स्थापित क्षमता का शीघ्र उपयोग किया जाना था । सूखा प्रेरित क्षेत्रों, जनजातीय एवं पिछडे क्षेत्रों मे मध्यम सिचाई योजनाओं या छोटी सिचाई योजनाओं तक ही नयी परियोजनाओं को सीमित रखा जाना था । छोटी सिचाई योजनाओं के

आधीन, पूर्वीय एव उत्तर पूर्वीय राज्यों मे भू-गर्भ जल के विकास पर बल दिया जाना था । इससे इन क्षेत्रों मे उन्नत जल प्रबन्ध द्वारा चावल के उत्पादन को बढ़ाने में सहायता मिलनी थी ।

इस समय भारत मे कृषि उत्पादन क्षेत्र के विस्तार की क्षमता बहुत ही सीमित है और इस प्रकार बोया जाने वाला शुद्ध क्षेत्रफल तो लगभग 1,430 लाख हेक्टेयर ही रहेगा । किन्तु योजना मे सिचाई क्षमता के आधीन 130 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र लाया जायेगा । इससे थोडे समय मे पकने वाली फसलों के आधीन क्षेत्रफल मे उन्नत किस्म के बीजों द्वारा उत्पादन बढाया जा सकेगा । साथ ही फसल गहनता को जो 1984-85 मे 1 26 थी, बढ़ाकर 1989-90 मे 1 33 तक ले जाने का लक्ष्य रखा गया । अत फसल आधीन कुल क्षेत्रफल जो 1984-85 मे 1,800 लाख हैक्टेयर था, बढ़कर 1989-90 मे 1900 लाख हैक्टेयर हो जाना था । इसके साथ-साथ उर्वरक उपयोग में 1984-85 मे 84 लाख टन से बढकर 1989-90 मे 135-140 लाख टन हो जाने की संभावना थी ।

अध्याय-4

कृषि क्षेत्र में नई तकनीकी व हरित क्रांति के प्रभाव

(IMPACT OF NEW TECHNOLOGY & GREEN REVOLUTION ON AGRICULTURAL SECTOR)

अध्याय-4

कृषि क्षेत्र में नई तकनीकी व हरित क्रांति के प्रभाव

इस अध्याय का प्रमुख उद्देश्य कृषि क्षेत्र व ग्रामीण विकास कार्यक्रमों मे 1966 के बाद हुये महत्वपूर्ण क्रातिकारी उन परिवर्तनों से है जिसमे कृषि उत्पादन व उत्पादिता मे अनैतिहासिक वृद्धि हुई तथा देश खाद्यान्नों के उत्पादन मे आत्मनिर्भरता को प्राप्त कर सका । 1966 के पूर्व देश की कृषि उत्पादन व्यवस्था पिछड़ी कृषि व्यवस्था पर आधारित थी, जिसमें परम्परागत बीजों, खादों, सिचाई के साधनों व तकनीकी का प्रयोग किया जाता था तथा पी0एल0 480 अन्य खाद्यान्न आयातों के रुप में देश का बहुत बड़ा विदेशी विनिमय इसके भुगतान मे समाप्त हो जाता था । इस संबंध में विलियम पोडॉक के फेमिन 1975- हू बिल सरवाइव ? में यह दिखाया गया कि भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था इस स्थिति मे है कि यदि महत्वपूर्ण परिवर्तन न किये गये तो देश की बहुत बड़ी जनसख्या भुखमरी आदि रुप मे समाप्त हो जायेगी।[1] ऐसी विशिष्ट. स्थिति मे भारत सरकार तथा कृषि विशेषज्ञों विशेषकर स्वामीनाथन आदि कृषि विशेषज्ञों, कृषि सस्थानों यथा पंत कृषि विद्यालय आदि द्वारा नये उच्च उत्पादन वाले कृषि बीजों, नवीन तथा लघु कृषि सिंचाई योजनाओं उर्वरकों व कीटनाशक दवाओं तथा बहुफसल योजनाओं आदि के माध्यम से देश की कृषि पद्धति मे एक नवीन सरचनात्मक परिवर्तन किया गया । फलस्वरुप भारतीय कृषि की उपज व उत्पादन जो पहले पीतवर्ण व स्वरुप मे था, धीरे-धीरे हरे रग मे बदलने लगा और कृषि क्षेत्र मे

1- विलियम पोडॉक, फैमिन 1975 हू विल सरवाइव ।

हुये इस परिवर्तन को 'हरित क्रांति' कहा गया ।[2]

इस अध्याय के विश्लेषण का दूसरा प्रमुख उद्देश्य यह है कि 1966 के पूर्व तथा 1966 के बाद की कृषि उत्पादन व उत्पादिता का विवरण प्रस्तुत करे । यह विवरण उन्नत आगतों के प्रयोग यथा उन्नतशील बीज, सिंचित क्षेत्र का विकास, उत्पादन व उत्पादिता मे वृद्धि तथा फसलवार हुये परिवर्तनों से है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन नवीन तकनीकी तथा हरित क्राति के परिणामस्वरुप कृषि क्षेत्र के विभिन्न आयामों में आशातीत वृद्धि हुई, वहीं कुछ हानिकारक आर्थिक व सामाजिक प्रभाव भी रहे । इस अध्याय के विश्लेषण मे सारणियों, ऑकडों के माध्यम से इस नवीन परिवर्तन के प्रभावों का मूल्याकन किया जायेगा ।

4.1 1966 के पूर्व कृषि उत्पादन व उत्पादिता .-

कृषि क्षेत्र पर नई तकनीकी व हरित क्राति के मूल्याकन करने के पूर्व भारत मे कृषि उत्पादन व उत्पादकता की स्थिति विशेषकर 1966 के पूर्व का विवरण देना उपयुक्त होगा । पहली योजना के प्रारम्भ मे कई कारणों से अर्थव्यवस्था अस्त - व्यस्त अवस्था मे थी । देश मे मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी और खाद्यान्न तथा कच्चे माल का अभाव था । अत प्रथम पचवर्षीय योजना बनाते समय कृषि एव सामूहिक विकास को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । इस योजना मे कृषि विकास दर 2.8 प्रतिशत थी । खाद्यान्न उत्पादन 1951-52 मे 51.2 मीट्रिक टन था जो 1955-56 मे बढ़कर 65.0 मीट्रिक टन हो गया । इसी तरह तिलहन, कपास इत्यादि के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि हुई । कुल मिलाकर कृषि क्षेत्र को प्रथम पचवर्षीय योजना मे आशा से अधिक सफलता मिली पर इसके बावजूद भारतीय कृषि में कोई

2- पी.एन. चोपड़ा, ग्रीन रिवोल्यूशन इन इण्डिया, पार्ट I एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन एण्ड इन्ट्रोडक्शन ऑफ ग्रीन रिवोल्यूशन इन इण्डिया, पृष्ठ 10-21.

स्थायी तकनीकी सुधार अभी न हो सके थे ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे बुनियादी व भारी उद्योगों को महत्व देते हुये तीव्र औद्योगीकरण को प्राथमिकता दी गयी । यद्यपि कृषि क्षेत्र की अवहेलना नहीं की गई परन्तु प्राथमिकता के दृष्टिकोण से उसे बुनियादी महत्व नहीं दिया गया । इस तरह कृषि सिंचाई आदि क्षेत्र का व्यय इस योजना मे केवल 20 प्रतिशत हो गया जबकि प्रथम योजना मे यह केवल 31 प्रतिशत था । अनेक कारणों से इस तरह यह देखा जा सकता है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना मे कृषि आयोजन दोषपूर्ण था और द्वितीय योजना की असफलता का मुख्य कारण भी यही था ।

1951 से 1961 के प्रथम दशक मे कृषि उत्पादन मे कोई निश्चित प्रवृत्ति नहीं पायी गयी । उत्पादन व उत्पादिता मे वृद्धि के साथ योजनाबद्ध विकास के प्रथम चरण मे भारतीय कृषि मे कुछ गुणात्मक परिवर्तन भी पाये गये । द्वितीय योजना के अत तक कृषि उत्पादन सूचकाक 135 हो गया जबकि खाद्यान्न फसलों के लिये 132 तथा अन्य फसलों के लिये 142 था । प्रति एकड उत्पादिता मे वृद्धि केवल 18 प्रतिशत थी और उत्पादिता की अधिकतम वृद्धि केवल खाद्यान्नों में प्राप्त हुई । द्वितीय योजना मे कृषि विविधीकरण पर बल दिया गया जिसमे पशुधन के विकास एव ग्रामीण निर्माण योजनाओं को स्थान मिला ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अतिम वर्ष में खाद्यान्न उत्पादन संशोधित लक्ष्य तक पहुँच गया था फिर भी पिछले वर्षों मे उत्पादन की कमी के कारण खाद्यान्न मूल्यों मे भारी वृद्धि हुई थी । तृतीय पचवर्षीय योजना मे कृषि क्षेत्र को पुन प्राथमिकता दी गई और 30-33 प्रतिशत तक कृषि उत्पादन मे वृद्धि का विचार प्रस्तुत किया गया । कृषि व सामुदायिक विकास पर लगभग 14 प्रतिशत व्यय करने का उद्देश्य रखा गया, जबकि दूसरी योजना में यह केवल 11 8 प्रतिशत था ।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे कई ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी जिनसे ससाधनों का प्रयोग सुरक्षा कार्यों की ओर मोड़ना पडा । 1962 में चीन द्वारा हमला और 1965 मे भारत पाक युद्ध के कारण विकास पर बहुत कुप्रभाव पडा । फलत प्रथम तीन वर्षों मे उत्पादन मे लगभग अवरोध विद्यमान था परन्तु 1964-65 मे उत्पादन मे यथेष्ट वृद्धि हुई और लगभग सभी फसलों का उत्पादन रिकार्ड उच्चतम सीमा तक पहुँच गया था । कृषि उत्पादन का सूचकांक 158 5 था जो 1960-61 की तुलना में लगभग 11 प्रतिशत अधिक था । अगले दो वर्षों मे अत्यन्त सूखा के कारण उत्पादन मे भारी गिरावट आयी । 1965-66 मे खाद्यान्न उत्पादन लगभग 20 प्रतिशत कम हो गया । बेकारी, खाद्य सकट तथा मुद्रास्फीति के बने रहने से देश मे आर्थिक आयोजन के प्रति निराशाजनक वातावरण उत्पन्न हुआ ।

कृषि विकास प्रयासों के दृष्टिकोण से योजनाकाल को दो विशिष्ट अवधियों 1949-50 से 1964-65 अवधि तथा 1965-66 के बाद की अवधि मे विभक्त किया जा सकता है । प्रथम अवधि मे जिसमे सस्थागत सुधारों पर अधिक बल दिया गया, कृषि उपज की वृद्धि 3.13 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही । 1949-50 से 1964-65 की अवधि मे खाद्यान्न उत्पादन मे 2.93 प्रतिशत की वार्षिक दर से वृद्धि हुई तथा कुल कृषि क्षेत्र मे 1 35 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई । इस समयावधि मे कृषि विकास की दर को निम्न सारणी से व्यक्त किया जा सकता है -

सारणी-4.1

कृषि विकास की दर . प्रतिशत प्रतिवर्ष

विवरण	1949-50 से 1964-65
खाद्यान्न उत्पादन	2.93
खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र	1.41
खाद्यान्न उत्पादिता	1.43
समस्त कृषि फसलों का उत्पादन	3.13
कुल कृषित क्षेत्र	1.35
कुल सिंचित क्षेत्र	2.23

स्रोत द हिन्दू सर्वे ऑफ एग्रीकल्चर, 1989.

इसी तरह विभिन्न कृषि फसलों के विकास को इस मध्यावधि मे देखा जा सकता है -

सारणी-4.2

भारतीय कृषि का विकास 1950-51 से 1965-66 तक

मद	इकाई	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66
1	2	3	4	5	6
कृषि उत्पादन	आधार वर्ष				
सूचकांक	1949-50=100	95.6	116.8	142 2	133 1
खाद्यान्न	मिलियन टन	51	67	82	72
कपास	मिलियन बेल	2.1	3.1	5 3	4 8
जूट	"	3.3	4.2	4.1	4 5
गन्ना (गुड़)	मिलियन टन	5.7	6 1	11 2	12.8
तिलहन	"	5.2	5 7	7.0	6 4
सिंचित क्षेत्र (सकल)	मिलियन हे0	22 6	25 6	28 0	31 1
उर्वरक प्रयोग	हजार टन	63	120	306	760
सहकारी साख (अल्पकालीन)	करोड रु0	22 1	49 6	202 8	650
जनसंख्या	मिलियन व्यक्ति	363	397	442	548

स्रोत.

(क) पी.सी. बंसिल, एग्रीकल्चरल प्रॉब्लेम्स ऑफ इण्डिया टेबिल 26.5

(ख) फिफ्थ फाइव इयर प्लान ड्राफ्ट : एनक्सर । एवं 2 पृष्ठ 46-47 एण्ड फाइनल रिपोर्ट फिफ्थ प्लान ।

(ग) इण्डिया 1976

4.2 नवीन तकनीकी एवं हरित क्रांति .-

भारतीय कृषि के 1966 के पूर्व स्थिति एक परम्परागत कृषि के रुप में थी । देश मे अत्यधिक खाद्यान्नों के आयात एव निम्न कृषि की उत्पादिता के कारण कृषि विकास मे कुछ गुणात्मक परिवर्तन किये गये जिससे खाद्यान्नों मे आत्मनिर्भरता के साथ उत्पादन एवं उत्पादिता मे वृद्धि की जा सके । कृषि मे इस नवीन तकनीकी जो हरित क्रांति के रुप में मानी जाती है उसमें निम्नलिखित बातें समाहित हैं[3]

1. कृषि क्षेत्र मे आगतों का प्रयोग जिसमे उन्नतशील बीजों, कीटनाशकों, उर्वरकों तथा सिंचित क्षेत्रों मे सुधरे हुये कृषि उपकरणों का प्रयोग समाहित है ।

2. प्रमुख खाद्यान्नों के अल्प समयावधि किस्मों का प्रयोग जिससे एक वर्ष मे दो या तीन फसलों को प्राप्त किया जा सके ।

3. कृषकों को सभी प्रकार के आगतों को उपलब्ध कराने हेतु पर्याप्त एवं समय के अन्दर साख सुविधाओं का प्राविधान ।

4. परम्परागत फसलों के अलावा कुछ नये खोज किये गये व्यापारिक फसलों को प्रारम्भ करना ।

5. सिचाई सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था जिसमें लघु सिचाई को प्राथमिकता दी गई ।

3- वी.के. त्रिपाठी एवं जी.सी. त्रिपाठी (एडीटेड) डायनामिक्स ऑफ एग्रीकल्चर, पृष्ठ 2-3.

1961 के पहले यह आशा की जाती थी कि भारतीय कृषि की उत्पादन क्षमता बहुत कम है जिसके कारण को निम्न उपजाऊ बीजों के प्रयोग को माना गया था । 1966-67 मे उच्च उत्पादन वाले बीजों के प्रयोग की शुरुआत को ही हरित क्रांति माना गया । वास्तव मे यह परम्परागत व पिछडी कृषि के स्थान पर एक तकनीकी परिवर्तन है जिसमे एक नवीन दृष्टिकोण से उत्पादन व उत्पादिता पर बल दिया गया । इस क्रांति का अभिप्राय किसी तुरन्त व तात्कालिक परिवर्तनों से नहीं था, जबकि कृषि क्षेत्र में नये उपकरणों व आगतों के प्रयोग से बढ़ते हुये उत्पादन को प्राप्त करना था और इस तरह भारतीय परम्परावादी कृषि के स्थान पर आधुनिक वैज्ञानिक कृषि को उत्पन्न करने से था ।

हरित क्रांति को मोटे तौर पर कृषि आगतों मे क्रांति भी माना जाता है । थोड़े समय के अन्तर्गत ही उन्नतशील किस्म के बीजों के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया । 1967-68 से 1971-72 तक के चार वर्षों मे उन्नतशील बीजों का क्षेत्र 5 प्रतिशत से बढ़कर 15 प्रतिशत हो गया । इन उन्नतशील बीजों के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र 1968-69 मे 9.2 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 38.0 मिलियन हेक्टेयर 1977-78 मे हो गया । विभिन्न फसलों के उन्नतशील बीजों के क्षेत्र को निम्न सारणी मे दिखाया जा सकता है -

सारणी-4.3

उन्नतशील बीजों के अन्तर्गत क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर)

फसलें	1966-67	1968-69	1980-81	1987-88	1988-89	1989-90	1990-91*
1	2	3	4	5	6	7	8
धान	0.89	2 6	18.2	22 1	25.4	27 6	29.2
गेहूँ	0 54	4.8	16.1	19 7	20.2	20.7	21.9
मक्का	0.21	0.4	1.6	2 2	2 5	2.8	2.9
ज्वार	0 19	0 7	3.5	6.1	6.1	6 8	7.6
बाजरा	0 06	0 7	3 6	4 0	5.9	5.2	5 4
योग	1.89	9 2	43 0	54 1	60 1	63 1	67.0

* अनन्तिम

स्रोत. (1) चतुर्थ पचवर्षीय योजना (1969-74)

(2) आर्थिक समीक्षा 1990-91, सारणी 23

हरित क्रांति के अन्तर्गत उर्वरकों का प्रयोग सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। नई तकनीकी के प्रादुर्भाव से उर्वरकों का प्रयोग 7 84 लाख टन 1965-66 से बढकर 1974-75 मे 26.0 लाख टन तथा 1977-78 मे 43 0 लाख टन हो गया । विभिन्न वर्षों में उर्वरकों के प्रयोग को निम्न सारणी में दिखाया जा सकता है -

सारणी-4.4

उर्वरकों का उपभोग

(लाख टन)

वर्ष	समस्त उर्वरक (नाइट्रोजन, फास्फेट) पोटाश	प्रति हेक्टेयर(किग्रा0)
1952-53	0.62	0.5
1960-61	3 94	2.5
1965-66	7 84	5 1
1970-71	21 77	23 7
1975-76	29.00	17.1
1980-81	55 02	31 9
1981-82	60 6	34 6
1984-85	82.11	-
1985-86	84 74	-
1986-87	86.45	-
1987-88	87.84	-
1988-89	110.36	-
1989-90	116.95	-
1990-91*	126.77	-

* अनन्तिम

स्रोत (अ) आर्थिक समीक्षा 1990-91, सारणी 28

(ब) फर्टिलाइजर स्टैटिस्टिक्स, दि फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इण्डिया

हरित क्राति तथा नई कृषि नीति मे कीटनाशक दवाइयों का भी बडा महत्वपूर्ण स्थान है । भारत मे नियोजन प्रारम्भ के पूर्व कीटनाशकों का प्रयोग लगभग नगण्य था । प्रथम पचवर्षीय योजना आरम्भ के समय 100 टन कीटनाशकों का प्रयोग होता था । नियोजन काल मे कीटनाशकों के प्रयोग मे वृद्धि हुई है । हरित क्राति के प्रारम्भ के बाद से पौध सरक्षण हेतु कीटनाशकों का अधिक प्रयोग होने लगा है । 1980-81 मे 60,000 टन कीटनाशकों का प्रयोग हुआ । 1976-77 मे किये गये एक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि देश मे बोये कुल क्षेत्र का 19 8 प्रतिशत भाग विभिन्न बीमारियों से प्रभावित था, जबकि कीटनाशकों से उपचारित क्षेत्र 7 2 प्रतिशत था । फसल बीमारियों को ध्यान मे रखते हुये सातवीं पचवर्षीय योजना मे 1989-90 तक पचहत्तर हजार टन कीटनाशकों का प्रयोग लक्ष्य रखा गया है ।

नवीन कृषि नीति एव हरित क्राति की एक प्रमुख बात कृषि क्षेत्र मे वैज्ञानिक एव नवीन कृषि यन्त्रों से है जिसमे यन्त्रीकरण के परिणामस्वरुप एक नये दृष्टिकोण का विकास हुआ है । इससे कृषि कार्य कम समय व उचित समय पर पूरा हो जाता है । भारत मे 1966 मे केवल 53,000 हजार ट्रैक्टर थे । 1971 में इनकी सख्या बढकर 1,35,000 और 1981 मे 5,23,000 हो गयी । यह अनुमान किया जाता है कि भारत मे प्रतिवर्ष 80,000 ट्रैक्टर की मॉग की जाती है । पजाव, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के कृषक ट्रैक्टर के प्रयोग मे अधिक सक्रिय है । इसी प्रकार थ्रेशर, तेल, इजन, विद्युत चालित पम्पसेट, सुधरे प उन्नत हल आदि का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है । इन यन्त्रों की सहायता से कृषक अपेक्षाकृत कम समय मे अधिक कार्य पूरा कर लेते है ।

4.3 हरित क्रांति के प्रभाव - 1966 के पश्चात् कृषि उत्पाद की प्रवृत्तियाँ. -

भारतीय कृषि क्षेत्र मे हरित क्रांति एवं नवीन तकनीकी के प्रादुर्भाव से 1966 के बाद कृषि उत्पादन की प्रवृत्तियाँ क्रांतिकारी रुप में परिवर्तित हुई हैं । इस क्रांतिकारी मोड़ से पूर्व दो दशकों तक भारतीय कृषि की तकनीकी संरचना निम्न स्तर की थी । इसके अतिरिक्त उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि के कारण देश में विशाल खाद्यान्न भण्डार को भी सृजित किया जा सका । इस तरह कृषि क्षेत्र में हुये प्राविधिक परिवर्तन और हरित क्रांति के प्रभाव का अनुमान कृषि उत्पादन व उत्पादिता में वृद्धि, फसल संरचना में परिवर्तन, कृषि और उद्योगों की परस्पर निर्भरता में वृद्धि तथा रोजगार में हुई वृद्धि के सदर्भ के आधार पर लगाया जा सकता है ।

भारतीय कृषि में तकनीकी सुधार की इस व्यवस्था द्वारा खाद्य संकट को दूर करके कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि प्राप्त करने में सफलता मिली। हरित क्रांति के प्रारम्भिक वर्षों 1965-66 और 1966-67 में भयंकर सूखा पड़ने के कारण कृषि विकास में बाधा आयी किन्तु बाद के वर्षों में महत्वपूर्ण सुधार हुआ। विभिन्न खाद्यान्नों का उत्पादन तीव्र गति से बढ़ने लगा, सर्वाधिक सफलता गेहूँ व चावल में मिली । पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश को हरित क्रांति में विशेष सफलता मिली । गेहूँ का कुल उत्पादन 1965-66 में 10.4 मिलियन टन था जो 1988-89

मे 53 3 मिलियन टन हो गया । 1965-66 से 1989-90 मे मक्का, ज्वार, आदि के उत्पादन में भी सामान्य वृद्धि हुई । 1965-66 के बाद चावल, उत्पादन मे विशेष उल्लेखनीय वृद्धि हुई पर यह गेहूँ के उत्पादन से कम थी । यह 1965-66 मे 30 5 मिलियन टन था जो 1988-89 मे बढकर 70 5 मिलियन टन हो गया । हरित क्रांति की अवधि में विभिन्न फसलों के उत्पादन मे हुई वृद्धि को निम्न सारणी में दिखाया जा सकता है -

सारणी-4.5

कुछ मुख्य फसलों का उत्पादन (मिलियन टन)

वर्ष	चावल	गेहूँ	मक्का	बाजरा	दालें	कुल खाद्यान्न
1965-66	30 5	10 4	-	-	-	72 3
1970-71	42 2	23 8	7.5	8 1	11 8	108 4
1975-76	48 7	28 1	7 3	5.7	13 0	121 1
1980-81	53 6	36 3	7 0	5.3	10 6	129 6
1984-85	88 34	44 7	8 4	6 0	12 0	145 4
1985-86	63 8	47 0	6.6	3 6	13 4	150.4
1986-87	60 6	44.3	7 6	4 5	11 7	143.4
1987-88	56 8	46 1	5 7	3 4	11 0	140 3
1988-89	70 5	63 4	8 0	5 1	13 8	170.2
1989-90*	74 1	66 3	6 6	4 2	12 6	170 6

* अनन्तिम

स्रोत आर्थिक समीक्षा 1990-91, सारणी 17

अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के प्रचलन के बाद सम्पूर्ण अवधि को तीन भागों मे बॉटा जा सकता है । प्रथम अवस्था की अवधि 1966-67 से 1970-71 तक रही जिसमे अधिक उपजाऊ किस्म की फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र मे अत्यन्त तेजी से वृद्धि हुई । गेहूँ, धान, मक्का व ज्वार बाजरा फसलों में अधिक उपजाऊ किस्म के अधीन क्षेत्र 1966-67 मे 1 88 मिलियन हेक्टेयर था जो 1970-71 में बढ़कर 15 29 मिलियन हेक्टेयर हो गया । द्वितीय अवस्था की अवधि 1971-72 से 1974-75 तक रही जिसमे पहली अवस्था की तुलना मे कृषि उत्पादन में गिरावट की प्रवृत्ति रही । समस्त खाद्यान्न उत्पादन जो 1971 में 108 मिलियन टन तक पहुँच गया था वह 1972-73 मे घटकर 97 मिलियन टन हो गया । तृतीय अवस्था की अवधि 1975-76 के बाद के वर्षों मे रही, इस अवधि मे सामान्य उतार-चढावों के साथ उत्पादन मे वृद्धि की प्रवृत्ति रही । 1988-89 में खाद्यान्नों का कुल उत्पादन 138 मिलियन टन था, 1990-91 मे कुल उत्पादन लगभग 173 मिलियन टन हो गया ।

हरित क्रांति की अवधि मे जहॉ कृषि उत्पादनों मे आशातीत वृद्धि हुई, वहीं फसलों की उत्पादिता में भी वृद्धि हुई है । उत्पादिता के सदर्भ मे गेहूँ की फसल को विशेष सफलता मिली है । समस्त खाद्यान्नों की औसत उपज 1967-68 मे 783 किग्रा0/हेक्टेयर थी, 1970-71 में बढकर 872 किग्रा0/हेक्टयर, 1989-90 मे 1349 किग्रा0/हेक्टेयर हो गयी । इसी प्रकार चावल, की औसत उपज मे भी वृद्धि हुई है । विभिन्न फसलों के प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन को आगे दी गयी सारणी में दिखाया जा सकता है -

सारणी-4.6

मुख्य फसलों की औसत उपज (किग्रा०/हेक्टेयर)

फसल	1970-71	1980-81	1985-86	1988-89	1989-90*
गेहूँ	1307	1630	2046	2244	2117
चावल	1123	1336	1552	1689	1756
मक्का	1279	1159	1146	1395	1606
तिलहन	579	532	570	824	729
गन्ना (मीट्रिक टन / हेक्टेयर)	48.0	58 0	60 0	61 0	65.0
कुल खाद्यान्न	872	1023	1175	1331	1349

* अनन्तिम

स्रोत आर्थिक समीक्षा 1990-91, सारणी 19

इस तालिका से स्पष्ट है कि हरित क्रांति की अवधि में कृषि उत्पादिता में तीव्र वृद्धि हुई है । 1970-71 से 1988-89 की अवधि में गेहूँ की उत्पादिता में 71.5 प्रतिशत तथा चावल की उत्पादिता में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई । दलहन तथा तिलहन उत्पादन मे भी इसी तरह वृद्धि हुई है । 1980-81 के बाद

कृषि उत्पादन मे जो भी वृद्धि हुई है उसका एकमात्र आधार कृषि उत्पादिता की वृद्धि हुई है । इस प्रकार क्षेत्र बढाकर उत्पादन बढाने की सभावनाये अत्यन्त कम हो गयी है । आगामी वर्षों मे कृषि उत्पादिता बढाने के लिये विज्ञान और प्रौद्योगिकी कृषि का अधिक सघन प्रयोग करना होगा ।

मात्रात्मक उपलब्धियों के अतिरिक्त हरित क्राति मे कृषि अवस्था मे गुणात्मक परिवर्तन भी किये गये है । कृषि को अब मात्र जीवन-निर्वाह का साधन न मानकर इसके व्यावसायिक गतिविधि की व्यवस्था की गई है और लाभ कमाने के लिये नई तकनीकी के प्रयोग मे तत्परता बढी है । हरित क्राति के कारण अब कृषक अच्छे अनाजों व व्यापारिक फसलों की ओर अग्रसर हुये है और छोटे कृषकों का झुकाव सब्जी की फसलों के प्रति बढा है । इसके परिणामस्वरुप फसलों की सरचना मे आधारभूत परिवर्तन आया है ।

भूमि उपयोग के ऑकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि गेहूँ व चावल की फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र बढ़ा है तथा साथ ही साथ तिलहन की फसलों, फल वाली फसलों, सब्जी व रेशेदार फसलों के अन्तर्गत भी क्षेत्र बढा है । निम्न तालिका से स्पष्ट है कि 1960-61 मे गेहूँ की फसलों के अन्तर्गत 12 0 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र था जो 1987-88 मे बढकर 23 0 मिलियन हेक्टेयर हो गया । उसी प्रकार उक्त अवधि मे चावल की फसल के अन्तर्गत 34.1 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 41 0 मिलियन हेक्टेयर हो गया । विभिन्न फललों के अन्तर्गत क्षेत्र के कुछ फसलों के ऑकड़े निम्न तालिका मे दिखाये गये है जिससे फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र मे परिवर्तन का स्पष्ट आभास होता है -

सारणी-4.7

विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर)

फसलें	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1989-90*
चावल	30 8	34 1	37 6	40 0	42 2
गेहूँ	9 8	12 9	18 2	22 3	23 5
ज्वार	15.6	18.4	17 4	15 8	15 0
मक्का	3.2	4 4	5 8	6 0	5 9
बाजरा	9.0	11.5	12 9	11 7	10 9
दालो से भिन्न अनाज	78 2	92 0	101 8	104 2	103 3
कुल दालें	19 1	23 6	22 6	22 5	23 2
कुल खाद्यान्न	97 3	115 6	124 3	126 7	126 5
तिलहन	10 7	13 8	16 6	17 6	23 0
अन्य फसलें	20 7	24.7	26 2	37 4	39 2
कुल कृषि क्षेत्र	128 7	154 1	157 1	181 7	188 7

* अनन्तिम

स्रोत आर्थिक समीक्षा 1990-91, सारणी 18, भारत सरकार

अर्थव्यवस्था के विभिन्न उद्योग अपने उत्पादन के लिये एक दूसरे पर निर्भर रहते है । कृषि क्षेत्र मे नियोजन के पूर्व बहुधा आतरिक आगतों का ही प्रयोग किया जाता था । इसी तरह बीज, सिंचाई, खेत की तैयारी आदि विभिन्न उपकरणों की व्यवस्था कृषक स्वय करते थे पर बाद मे औद्योगिक उत्पादनों का कृषि क्षेत्र मे प्रयोग बढ गया जिससे कृषि यत्र, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाइयॉ, ट्रैक्टर इत्यादि कृषि उत्पादन प्रणाली के अभिन्न अग बन गये है । कृषि की नवीन तकनीकी के प्रचलन के बाद इस दिशा मे उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है । आगामी वर्षों मे कृषि उत्पादन बढाने के लिये उद्योगजन्य कृषि निवेशों को अधिक बढाना होगा क्योंकि कृषि उत्पाद की लगातार बढ़ती मॉग को फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र बढाकर पूरा करने की सभावना अत्यन्त कम हो गयी है । इस तरह कृषि क्षेत्र के रुप मे आगत के रुप मे प्रयोग होने वाली वस्तुओं का उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाइयों का अस्तित्व कृषि क्षेत्र पर ही निर्भर करता है । इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन को मध्यवर्ती उत्पाद के रुप मे प्रयोग करने वाली औद्योगिक इकाइयों की भी सख्या बढी है तथा फसल सरचना मे भी परिवर्तन होने से सरक्षण और प्रक्रिया करने वाली औंद्योगिक इकाइयों की सख्या बढी है ।

हरित क्राति के परिणामस्वरुप कृषिगत रोजगार मे भी वृद्धि हुई है इससे जहॉ एक ओर यन्त्रीकरण की प्रवृत्ति बढी है वहीं दूसरी ओर फसल सघनता बढी है । यन्त्रीकरण श्रम बचाने वाली तथा फसल सघनता वृद्धि श्रम मॉग बढाने वाली प्रक्रिया है । पजाब मे वर्तमान तकनीक व यन्त्रीकरण के अध्ययन द्वारा यह विदित हुआ है कि खेतों मे मानव श्रम का उपयोग बढा है क्योंकि हरित क्रांति से एक ओर फसल सघनता और दूसरी ओर प्रति एकड उत्पादिता मे वृद्धि हुई है । निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट होता है कि ट्रैक्टर, ट्यूबवेल, थ्रेशर आदि अन्य आधुनिक यत्रों के अतिरिक्त चालक शक्ति उपलब्ध हो जाने के कारण फसल सघनता 1966-67 के

126 69 से बढकर 1969-70 मे 144 26 हो गयी । इसी के परिणामस्वरुप मानव श्रम के प्रयोग से 58% की वृद्धि हुई जबकि पशु-श्रम का प्रति एकड उपयोग घटा है

सारणी-4.8

कृषि यन्त्रीकरण एव श्रम उपभोग

वर्ष	फसल सघनता	कुल श्रम उपभाग (मि. घण्टे)	प्रति एकड पशु श्रम का प्रयोग (घण्टे)	प्रति एकड ट्रैक्टर उपयोग (घण्टे)
1966-67	128.69	11481	127 58	11.94
1967-68	132 06	13821	67.15	9 58
1968-69	135 39	16310	48 40	12 72
1969-70	144 26	18145	35 69	17 29

स्रोत मार्टिन एच बिलिग्स एण्ड अर्जन सिह दि इफेक्ट ऑफ टेक्नोलॉजी ऑन फार्म एम्पलायमेन्ट इन इण्डिया

इस तरह भारतीय अर्थव्यवस्था मे लगातार विद्यमान खाद्य सकट को हरित क्राति एव नई तकनीकी के द्वारा दूर किया जा सका है । 1966 के बाद देश के कृषि विकास प्रयासों के परिणामस्वरुप आज कोई यह नहीं कह सकता कि आज कृषि

प्रधान देश होते हुये भारत को खाद्यान्न का आयात करना पडता है । इस उपलब्धि मे देश के वैज्ञानिक सस्थानों और कृषि विशेषज्ञों की अनवरत साधना निर्णायक रही है। हरित क्रांति खाद्यान्नों की मात्रात्मक वृद्धि के प्रति कटिबद्ध रही है । इसमे हरित क्रांति की सफलता निर्विवाद है तथा इसके अगले चरण मे यह आवश्यक है कि तिलहनों के उत्पादन तथा मोटे अनाजों के उत्पादन मे वृद्धि की जाये ।

4.4 नई तकनीकी के आर्थिक व सामाजिक प्रभाव -

भारतीय कृषि मे हरित क्राति व नई तकनीकी का प्रादुर्भाव कृषि क्षेत्र मे क्रातिकारी परिवर्तनों तथा उत्पादन व उत्पादिता सबधी उपलब्धियों का पर्याय माना जाता है, परन्तु इस तकनीकी के अनेक आर्थिक व सामाजिक प्रभाव हुये है जो देश के सतुलित आर्थिक विकास मे बाधक है । इस तकनीकी ने अभी तक देश के कुछ राज्यों एव कुछ खाद्यान्न फसलों को ही प्रभावित किया है । मुख्य रुप से यह क्रांति पजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों मे ही आयी है तथा आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु व केरल मे धान की फसलों पर भी वैज्ञानिक कृषि प्रणाली का प्रभाव पडा है । देश के उन भागों मे जहाॅ सिचाई की सुविधाये नहीं है या बहुत कम है और जो कुल कृषि भूमि का लगभग 78% है वहाॅ हरित क्राति को सफलता नहीं मिली है। इन भूखण्डों पर यदि वर्षा पर्याप्त न हो तो ऐसे समय में उन्नत बीजों व उर्वरकों का प्रयोग पूजी व खेती के साधनों का अपव्यय मात्र ही होगा । हरित क्राति के अन्तर्गत अभी तक कृषिगत भूमि के केवल 7% भाग मे ही उन्नत बीजों का प्रयोग किया गया है। सूखे क्षेत्रों मे इस क्रांति का विस्तार नहीं के बराबर है ।

हरित क्राति के प्रभाव का सीमित होना जहाॅ कुछ राज्यों तक है वहीं इसकी सफलता कुछ गिनी चुनी फसलों तक सीमित है । मुख्य सफलता गेहूॅ की फसल

मे मिली है और आंशिक सफलता धान की फसल मे मिली है, ज्वार, बाजरा, मक्का व गन्ना की फसलों मे सफलता अत्यन्त सीमित है । इसी तरह दलहन और तिलहन की फसलों पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पडा है अपितु अधिक गेहूँ की खेती का तुलनात्मक रुप से इनकी खेती पर कुप्रभाव पडा है । हरित क्राति में जहाँ गेहूँ, धान की कृषिगत भूमि मे खेती बढी है, वहीं दालों तथा तिलहन की खेती व उत्पादन मे कमी हुई है । पूरी हरित क्रांति व नई तकनीक मे दलहन और तिलहनों के उत्पादन व उत्पादिता पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है । हरित क्रांति के पूर्व इन फसलों को गेहूँ व अन्य फसलों के साथ मिलाकर बोया जाता था पर गेहूँ के बढते हुये उत्पादन को देखते हुये अब इन फसलों की मिश्रित खेती समाप्त हो गयी है ।

हरित क्रांति की सफलता की इन सीमाओं के कारण देश मे यह विवाद उत्पन्न हो गया कि इसे क्राति की सज्ञा दी जानी चाहिये या नहीं । कुछ शोधों मे 1964-65 तथा 1968-69 के खाद्यान्न ऑकडों का प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि गेहूँ को छोड़कर हरित क्रांति की चर्चा भ्रामक मात्र है । इन लेखकों के अनुसार 1964-65 में चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा तथा अन्य अनाजों का उत्पादन क्रमश 39, 12 3, 9 8, 4 4 मीट्रिक टन था । इसके विपरीत 1968-69 मे इन फसलों का उत्पादन क्रमश 39 8, 18 7, 9 8 3.9 मीट्रिक टन था । दूसरी विचारधारा के अनुसार नई तकनीकी के अभाव मे 1968-69 मे खाद्यान्न उत्पादन प्राप्त किये उत्पादन से लगभग 6 मीट्रिक टन कम हो जाता है । अतएव इन लेखकों के अनुसार खेती मे तकनीकी सुधारों की वजह से देश मे खाद्य सकट की स्थिति समाप्त हो गयी । अत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृषि उत्पादन को बढाने मे महत्वपूर्ण योगदान होने पर भी हरित क्रांति अभी तक सीमित दायरे मे ही सफल हुई है।

कभी-कभी यह विचार व्यक्त किया गया है कि खेती की नई तकनीकी जोत के आधार से सबंधित नहीं है पर पिछले दशक के ग्रामीण विकास के अवलोकन से यह विदित होता है कि उन्नतशील कृषि पद्धति अपनाने से बडे तथा छोटे कृषक की आय विषमता मे वृद्धि हुई है । हरित क्राति की यह बडी आलोचना रही है कि केवल बडे किसान खेती की इस तकनीकी को अपनाकर आय-वृद्धि तथा उत्पादन मे वृद्धि कर सके है । पूजीवादी खेती की इस पद्धति से सामाजिक व आर्थिक असमानता बढी है । उत्तर प्रदेश तथा पजाब के फार्म सर्वेक्षण मे यह सिद्ध हुआ है कि कृषि क्षेत्र की असमानताये न केवल भूस्वामित्व की विषमता के कारण बढी है बल्कि कृषिगत साधनों ऋण व तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति और प्रयोग करने मे असमानताओं के फलस्वरुप भी बढी है । अतत सूक्ष्म रुप से विचार करने पर आर्थिक उन्नति का भी इससे निकट सबध है । छोटे किसान अधिकतर खाद्यान्न फसलें उत्पन्न करते है, यदि हम किसी प्रकार इन छोटे किसानों व सूखे क्षेत्रों की विकास सम्बन्धी समस्याओं को हल करने मे सफल हो सके तो खाद्यान्न समस्या मे आत्मनिर्भरता के लिये भारी कदम माना जायेगा और तभी हरित क्राति दीर्घकाल मे पूर्णत विकसित हो सकेगी । सामान्य रुप से कृषि की नवीन तकनीक जोत आकार के प्रति तटस्थ होती है क्योंकि अधिक उपज देने वाले बीजों को चाहे छोटे खेत पर बोया जाये या बड़े खेतों पर उत्पादन बढेगाही परन्तु नवीन कृषि आगतों की पूर्ति छोटे किसानों को नहीं हो पाती है । अधिकतर नवीन कृषि आगतें महगी है, मौद्रिक सस्थाओं से समान्तर प्रतिभूमि के अभाव मे इनकी सुविधा नहीं मिल पाती है । कृषि आगतों की पूर्ति जोत आकार से सम्बद्ध होने के कारण कृषि की नवीन तकनीक भी जोत आकार के प्रति तटस्थ नहीं रह जाती है।

हरित क्रांति के कुछ अन्य परिणाम अधिक घातक हो रहे है । यह पाया गया है कि रासायनिक उर्वरकों का बढ़ता प्रयोग मिट्टी को कड़ी बना देता है । उसकी जल अवशोषण क्षमता कम हो जाती है, इसमे मिट्टी के गुण मे धीरे-धीरे स्वत

परिवर्तन होने लगता है । यह भी पाया गया है कि उर्वरकों के बुद्धिमान प्रयोग से ही किसी खेत पर उत्पादन का समान स्तर बनाये रखा जा सकता है । विभिन्न कीटनाशक दवाओं का बढता प्रयोग भी हानिकारक प्रभाव उत्पन्न कर रहा है । इन दवाइयों का कुछ अश अनाजों अवशोषित हो जाता है जिसका मनुष्यों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है । अन्य विकासशील देशों की भाँति भारत भी कृषि बीज धनी देश था । चावल व गेहूँ की हजारों किस्मे भारत मे थी । बहुधा एक ही कृषक अपनी जोत पर कई किस्मों का प्रयोग करता था । अब यह शका की जाने लगी है कि इन विभिन्न बीजों के रुप बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ एकत्र कर ले रही है और अधिक उपज लेने के नाम पर अधिक उर्वरक, पानी, कीटनाशक दवाइयाँ, उन्नत कृषि यन्त्र की अपेक्षा करने वाली अधिक उपजाऊ किस्मों का प्रयोग बढ रहा है ।

उत्पादक रोजगार की कमी भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की एक मुख्य समस्या है । अन्य विकासशील अर्थव्यवस्था की भाँति भारत मे भी अधिकाश श्रम शक्ति खेती व उससे सम्बद्ध कार्यों मे लगी है तथा पारिवारिक श्रम की अधिकता रहती है । हरित क्राति का एक प्रमुख पहलू कृषि यन्त्रीकरण से सम्बन्धित है, ऐसी स्थिति मे कृषि यत्रीकरण की नीति को अत्यन्त सूझ-बूझ के साथ लागू करना होगा । खेती मे यत्रीकरण की वृद्धि से बेरोजगारी समस्या के अधिक जटिल होने की सभावना है, यद्यपि निश्चित रुप से हरित क्राति के कारण फसल सघनता तथा प्रति एकड़ उत्पादिता मे वृद्धि हुई है । कृषि कार्य लगातार वर्ष पर्यन्त चलता रहता है परन्तु सिचाई, जुलाई एव अन्य कृषि कार्य मे मशीनों के प्रयोग से श्रम विस्थापित हुआ है । यही कारण है कि खेतिहर मजदूर की स्थिति मे कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है । इसके फलस्वरुप ग्रामीण क्षेत्रों मे सम्पन्न कृषकों का एक नवीन वर्ग उत्पन्न हो रहा है ।

हरित क्रांति के परिणामस्वरुप ग्रामीण कृषि क्षेत्र मे शाति व सतोष के विपरीत छोटे कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों तथा बटाई करने वाले कृषकों मे असतोष की

भावना बढी है और इस तरह यह ग्रामीण क्षेत्रों मे सामाजिक परिवर्तन को लाने के स्थान पर नये सामाजिक विवादों को जन्म मिला है । इस तरह जब तक हरित क्राति को भूमि सुधारों के साथ नहीं जोडा जायेगा इसके बडे गम्भीर परिणाम प्राप्त होंगे । यह देखा जा सकता है कि हरित क्राति के लाभों की प्राप्ति निर्धन व भूमिहीन कृषकों को नहीं है बल्कि यह कुछ विशिष्ट सुविधाजनक अल्पसख्यक बडे व मध्यम कृषकों को है । 47% फार्म परिवार जो एक एकड़ भूमि रखते है तथा 22% परिवार जिनके पास कोई भूमि नहीं है वहीं 4-5% बडे कृषक हरित क्राति के लाभों को प्राप्त कर रहे है । इसीके साथ-साथ बटाई वाले कृषकों के सम्बन्ध मे दो महत्वपूर्ण बातें उत्पन्न हुई है । एक तो बटाई वाले कृषक आगतों के रुप मे विभिन्न विनियोग नहीं कर सके है । दूसरी बात यह उत्पन्न हुई है कि बडे कृषक इन बटाई वाले कृषकों को कृषि कार्य से अलग करके स्वय सीधे कृषि क्षेत्र मे उत्पादन कर रहे है । इस तरह हरित क्राति की सफलता मे छोटे कृषकों तथा भूमिहीन कृषकों का कोई महत्व नहीं है । अत यह शका व्यक्त की जाती रही है कि जब तक हरित क्राति को सामाजिक न्याय पर आधारित करके सचालित नहीं किया जायेगा, यह सदैव हरा नहीं रह सकता।[4]

4.5 योजनावधि में विकास तथा असमानता :-

पिछले दो दशकों के सदर्भ मे भारतीय कृषि की यह विशेषता रही है कि उत्पादन व उत्पादिता के साथ उसमे आशातीत वृद्धि हुई पर साथ ही साथ अधिकांश विकासशील देशों मे इस सवृद्धि के लाभ का असमान वितरण और विशेषकर ग्रामीण आय में असमान वितरण हुआ है । इस सम्बन्ध मे जो महत्वपूर्ण ऑकडे, प्राप्त हुए है वह यह दिखाते है कि आय मे असमानता बढी है । जहॉ तक भारत मे इन ऑकडों की उपलब्धता है वह एन.सी ए.ई आर द्वारा व्यक्तिगत आय के ऑकडों के सकलन पर आधारित है । ग्रामीण क्षेत्रों मे कृषि परिवार आयों के सकेन्द्रण का लॉरैन्ज गुणॉक

4- वी.एस.व्यास, ग्रीन रिवोल्यूशन - ए प्रोमिस एण्ड प्रॉब्लेम, इण्डस्ट्रियल इण्डिया, एनुअल नम्बर 1969.

0 41 से बढकर 1962 और 1967-68 के बीच 0 46 हो गया और साथ ही साथ आय वृद्धि के इस सकेन्द्रण के साथ ग्रामीण जनसख्या के निचले 70% लोगों के हिस्से मे गिरावट तथा ऊपर 30% हिस्से मे वृद्धि प्राप्त हुई । ग्रामीण कृषि क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक सबधों मे बढी हुई असमानता अन्य रुपों मे भी पायी गयी है । यह अध्ययनों मे प्राप्त हुआ है कि एक कम वर्ग के कृषक जिनके पास 10 एकड या उससे अधिक कृषि जोत है वे ही अतिरिक्त पूजी भूमि विकास मे विनियोग हेतु लगा पाये है । विशेषकर लघु सिचाई योजनाओं मे और इस तरह भारतीय कृषि मे असमान लाभ के बॅटवारे के कारण आय की असमानता मे वृद्धि हुई है ।

कृषि क्षेत्र में यह बढी हुई असमानता और आय मे वितरण ग्रामीण परिवारों मे व्यक्तिगत आदेयों के बॅटवारे मे देखी जा सकती है । यह देखा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र मे कुल आदेय का एक बहुत बडा हिस्सा कुछ लोगों तक संकेन्द्रित है । उदाहरण के लिये 1971 मे ग्रामीण जनसख्या के 30% ऊपरी वर्ग के पास कुल आदेयों का 82% भाग था जबकि दूसरी ओर निम्न वर्ग के 20% ग्रामीण परिवारों के पास 1% से कम आदेय थे । निम्न सारणी मे आदेय वर्गों के अनुसार तुलनात्मक सम्पत्ति की स्थिति को देखा जा सकता है -

सारणी-4.9

आदेय मूल्य के अनुसार ग्रामीण परिवारों का वर्गीकरण

आदेय वर्ग (रुपये)	प्रतिशत
500 से कम	13 27
500 से 999 तक	18 32
1000 से 2999 तक	41 00
3000 से 4999 तक	14 32
5000 से 9999 तक	9 06
10,000 से अधिक	3 83
अवर्गीकृत	0 10
सभी वर्ग	100 00

स्रोत एन एस एस का 25 वॉ दौर, नम्बर 233, टेबिल्स विथ नोट्स ऑन अर्निग्स, इनडेब्टेडनेस, कल्टीवेटेड होल्डिग्स एण्ड स्टेट्स ऑफ वीकर सेक्शन हाउसहोल्ड्स इन रुरल इण्डिया 1976, पृष्ठ 940

नई तकनीकी के सामाजिक आर्थिक प्रभावों के सम्बन्ध मे विभिन्न वर्गों के कृषकों की क्षेत्रीय स्थिति को भी देखा जा सकता है । इस समस्या का पूरा विवरण चार महत्वपूर्ण दृष्टिकोण मे रखा जा सकता है -

(1) पूजीवादी कृषि

(2) आय मे असमानता की वृद्धि

(3) कृषि मजदूरियों और जीवन-स्तर पर प्रभाव

(4) क्षेत्रीय असमानताये

नई कृषि तकनीकी मोटे तौर पर पूंजीवादी सघन तकनीकी पर आधारित है और श्रम आधारित तकनीकी के स्थान पर एक महत्वपूर्ण व क्रातिकारी परिवर्तन है। निरपेक्ष रुप मे ऊँची उत्पादन वाले बीज की तकनीकी से उत्पादन के सभी साधनों मे लाभ हुआ है जिससे बीजों, खादों, कीटनाशकों और सिचाई के विनियोग मे भारी मात्रा मे वृद्धि हुई है पर पूजीवादी वर्ग के लाभ और ब्याज मे तुलनात्मक रुप से उत्पादन के श्रम व भूमि की तुलना मे अधिक वृद्धि हुई है । निम्न सारणी मे पजाब में हुई हरित क्राति के प्रथम चरण मे इस स्थिति को देखा जा सकता है -

सारणी-4.10

पजाब के एक जिले मे साधनों का हिस्सा (1968-70)

	गेहूँ (मैक्सिकन)		गेहूँ (देसी)	
	निरपेक्ष हिस्सा	सापेक्ष हिस्सा	निरपेक्ष हिस्सा	सापेक्ष हिस्सा
	(रु0)	%	(रु0)	%
श्रम	161 1	30 7	117 1	36 5
भूमि	215.5	41 1	175.2	54 6
ब्याज	30.0	5.8	22.5	7 0
लाभ	117 5	22.4	6.0	1.9

स्रोत सी.एच. हनुमन्ता राव - टेक्नॉलॉजिकल चेन्ज एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ गेन्स इन इण्डियन एग्रीकल्चर, पृष्ठ 128

कृषि जोतों के बॅटवारे के सम्बन्ध मे लघु एव सीमान्त कृषक जो कुल कृषि जोत का 70% भाग है वे केवल 24% कृषि जोतों पर कार्यशील थे जबकि दूसरी ओर बड़े कृषकों के 6% वर्ग 40% कृषि जोतों पर कार्यरत थे । परिणामस्वरुप नई कृषि नीति ने ग्रामीण क्षेत्रों मे दोहरी व्यवस्था उत्पन्न की है । आय व वितरण मे इस असमानता का कारण मुख्य रुप से भूमि संसाधनों को विना ध्यान मे रखे हुये पूजी मे संकेन्द्रण था । बड़े कृषि जोतों मे उत्पादन मे अधिक वृद्धि तथा पूजीवादी कृषि के

कारण इस नई तकनीकीय परिवर्तन से बडे व लघु कृषकों के बीच बहुत असमान लाभों का वितरण हुआ है जिससे उनके जीवन-स्तर व क्षेत्रीय आय असमानता पर भारी प्रभाव पडा है ।

प्रति एकड उत्पादन और कृषि जोतों के आकार के बीच विपरीत सम्बन्ध अब समाप्त हो गये है तथा पजाब और उत्तर प्रदेश के आँकडों से यह स्पष्ट होता है कि लघु कृषकों की तुलना मे बडे कृषकों के उत्पादन मे अधिक वृद्धि हुई है । यह उपलब्धि बडे जोतों मे प्रति एकड उत्पादन मे अधिक श्रम के लगाने से नहीं अपितु उसके स्थान पर बढते हुये पूजी आगतों के कारण हुई है । इस असमानता का एक प्रधान कारण यह भी है कि ऊँची भूमि जोतों में अधिक भूमि ससाधनों की उपलब्धता रही है । अध्ययनों में इस तरह यह स्पष्ट हुआ कि कृषि के आधुनिकीकरण मे श्रम की तुलना मे पूंजी की अधिक प्रधानता रही है जिससे आय मे असमानता और बढी है। इस समस्या के सर्वेक्षण सम्बन्धी आँकडों से भी इसी प्रकार का निष्कर्ष प्राप्त हुआ है । यहाँ कृषि जोतों को उनके आकार के अनुसार बढते हुये आकारों के रुप मे रखा गया है और उससे लॉरेन्ज अनुपात प्राप्त किया गया है, उसे उपयुक्त रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है । इससे यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि नई तकनीकी के परिणामस्वरुप आय मे वृद्धि असमान रुप से हुई है और इस वृद्धि के मुख्य लाभकर्ता बडे कृषक है।

1971 की जनगणना के अनुसार कुल ग्रामीण कार्यशील का 30 7% कृषि श्रमिक का है जबकि 1961 मे यह 17 5% था । कृषि श्रमिकों की इस बढ़ी हुई सख्या का प्रधान कारण सीमित भूमि संसाधनों पर अपनी जीविका प्राप्त करने वाले कार्यरत आयुवर्ग की बढ़ी हुई सख्या है । साथ ही साथ पिछले दशकों मे कृषि श्रमिकों की माँग मे भी वृद्धि हुई है। इस सबध मे कृषि श्रमिकों की आर्थिक दशाओं को देखा जा सकता है । 1956-57 से 1964-65 के बीच कृषि श्रमिकों की आय

मे 49% की वृद्धि हुई है ।[5] इस समयावधि के ऑकडों मे मजदूरी वृद्धि मे अन्तर्राज्यीय परिवर्तन भी महत्वपूर्ण रहे है । यह उल्लेखनीय है कि निरपेक्ष वृद्धि का प्रतिशत अपेक्षाकृत उन क्षेत्रों मे अधिक हुआ है जहॉ मजदूरी दर निम्न थी । ऑकडों से यह स्पष्ट हुआ है कि केवल 6 राज्यों मध्य-प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उडीसा, आसाम, केरल तथा राजस्थान मे दैनिक वास्तविक आमदनी 1956-57 और 1964- के बीच बढी है, जबकि पश्चिमी बगाल, बिहार, कर्नाटक, हरियाणा, पजाब मे वास्तविक आमदनी कम हुई है ।

इससे स्पष्ट होता है कि मौद्रिक और वास्तविक आमदनी मे परिवर्तन ऐसे कारकों द्वारा निर्धारित होता है जैसे कृषि विकास का स्तर, कृषि व गैर कृषि जोतों मे श्रम शक्ति तथा भूमिहीन श्रमिकों के प्रबन्ध का स्तर आदि।[6]

नई तकनीकी के प्रादुर्भाव से कृषि क्षेत्र मे कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध मे कृषि के व्यापारीकरण की तीव्र प्रवृत्तियॉ उत्पन्न हुई है । कृषि पर आधारित किराये के मजदूर मे परिवर्तन, ग्रामीण जनसख्या का कृषि कार्य मे गिरता दर और दुष्कर रोजगार अवसरों का उदय होना पर इन अध्ययनों के आधार पर कृषि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरियों के बारे मे सामान्य निष्कर्ष नहीं लगाया जा सकता । किसी भी कार्यक्षेत्र मे मजदूरी दरों का सम्बन्ध तीन कारकों से होता है - मॉग, पूर्ति तथा सस्थाये। मॉग पक्ष मे अनेक अनुभवगन्म्य अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि फसल सघनता तथा सिचाई सुविधाओं के साथ मजदूरी दरों मे धनात्मक सम्बन्ध रहा है जबकि पूर्ति पक्ष के अनुभवगम्य अध्ययनों से कृषि श्रम और मजदूरी दरों मे नकारात्मक सम्बन्ध रहा है । सस्थागत कारकों से यह स्पष्ट हुआ कि उन क्षेत्रों मे जहॉ भूमि स्वामित्व का सकेन्द्रण अधिक है और कृषि श्रमिकों की पूर्ति अधिक है, वहॉ भूमि मालिकों द्वारा कृषि मजदूरी को कम करने मे सफलता मिली है । इस तरह पिछले दशकों के अनुभव यह दिखाते है कि जबकि कृषि कार्य में वृद्धि हुई है पर वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि उस

6- रिपोर्ट नेशनल कमीशनश ऑन एग्रीकल्चर, पार्ट 4, पृष्ठ 243

5- एपोन्डिक्स 69.1, रिपोर्ट नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर.

अनुपात मे नहीं हुई है क्योंकि कृषि श्रमिकों की पूर्ति मे वृद्धि और सस्थागत कारक श्रमिकों की ऊँची मजदूरी के लिये सौदेबाजी शक्ति को कम करते है ।[7]

नई कृषि तकनीकी का मुख्य प्रभाव इसके चयनात्मक रुप मे हुआ । अनुकूल विकास सुविधाओं, सुनिश्चित सिचाई व साख सस्थाओं मे सकेन्द्रित रहा । इसके परिणामस्वरुप अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की क्रांति केवल पजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गेहूँ की खेती मे हुई है । इस उत्पादन की असमानता के कारण राज्यों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति मे क्षेत्रीय असमानता मे वृद्धि हुई है । इन क्षेत्रों मे जहाँ कृषि उत्पादन व उत्पादिता मे कोई सुधार नहीं हुआ है वहीं गरीबी तथा बेरोजगारी मे वृद्धि हुई है । कृषि उत्पादन के सम्बन्ध मे राज्यों के निष्पादन को महत्वपूर्ण आगतों जैसे सिचाई, उर्वरक प्रयोग तथा उन्नत किस्म के बीजों के अन्तर्गत क्षेत्र आदि को निम्न सारणी मे दिखाया जा सकता है -

---

7- दासगुप्ता बी, द न्यू एग्रेरियन टेक्नोलॉजी इन इण्डिया, पृष्ठ 333

सारणी-4.12

उपलब्धता/आगतों का प्रयोग - राज्यवार

राज्य	सकल बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत सकल सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत 1978-79	सकल बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत उन्नत बीजों के क्षेत्र का प्रतिशत 1978-79	प्रति एकड खाद उपभोग 1981-82 (किग्रा /हेक्टे)	संस्थागत ऋण प्रति/हेक्टे क्षेत्रफल 1978-79 (रु0)	खाद्यान्न की औसत उपज प्रति/हेक्टे. 1981-82 टन हेक्टे
आन्ध्र प्रदेश	35 8	24 8	50 0	7 29	1 24
आसाम	17 3	19 7	3 3	4 0	0 97
बिहार	32 6	27 8	18 0	21 8	0 87
गुजरात	18 6	18 7	38 6	146 0	1.07
हरियाणा	53.9	36 1	45 5	177 9	1.39
हिमाचल प्रदेश	16 7	42.9	19 5	2 5	1.24
जम्मू एव कश्मीर	40 9	42 9	21 8	27 9	1 53
कर्नाटक	15.4	15 3	34 4	71 7	0 98
केरल	12 3	9 7	32 9	481 5	1 54
महाराष्ट्र	11 6	19 4	26 6	81 3	0.74
मध्य प्रदेश	11 1	13 5	10.9	47 0	0 72
उडीसा	19 2	11 7	9.9	23.5	0.91
पजाब	83 0	56 3	123 7	184 2	2 67
राजस्थान	19 6	8 4	7 9	41 0	0 55
तमिलनाडु	49 7	35 6	66 7	159 4	1.52
उत्तर प्रदेश	43 5	33 8	52 2	74 0	1 19
पश्चिमी बगाल	19 6	26 3	32 8	81.3	1 07
सम्पूर्ण भारत	27.5	22.9	34 6	83 1	1 03

स्रोत आर.के.गोविल एव बी बी. त्रिपाठी, एग्रीकल्चर प्लानिग एण्ड सोशल जस्टिस इण्डिया, अध्याय 6, तालिका 6 4, पृष्ठ 124, किताब महल, 1986

आर0 बी0 आई0 के एक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण कृषि जोत परिवारों मे क्षेत्रीय असमानता के आर्थिक आधारों को देखा जा सकता है जिसमे 1967-68 वर्ष के सदर्भ मे लघु कृषकों की समस्याओं और दशाओं का विवरण है । यहाॅ देश के विभिन्न भागों मे 12 अलग - अलग जनपदों के निदर्श आधार पर आर्थिक वर्ग के जोत परिवारों की असमान दशाओं को दिखाया गया है । इस अध्ययन हेतु 1967-68 मे जिन कृषि जोतों का सम्पूर्ण कुल उत्पाद मूल्य 3000/- से कम था उन्हे लघु कृषक के रुप मे परिभाषित किया गया । इस परिभाषा मे अनेक गैर लाभ वर्गों को भी रखा गया जो अल्पकालिक कृषक के रुप मे थे और मजदूरी पर निर्भर थे तथा पूर्णकालिक मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिकों को रखा गया । इस सर्वेक्षण के आधार पर लघु कृषकों की दशाओं को देखा जा सकता है । अमृतसर व जामनगर के दो जनपदों मे लघु कृषकों की समस्याओं को बहुत विस्तृत रुप मे नहीं पाया गया क्योंकि कुल जोत परिवारों मे ऐसे कृषकों का अनुपात बहुत कम था परन्तु बडे कृषि जोत वाले आकारों के परिवार उच्च मूल्य वाले व्यापारिक फसलों के कृषि से सम्बन्धित पाये गये । सिचाई सुविधाओं की प्राप्तता के अलावा वहाॅ उच्च फसल सघनता कृषि का विविधीकरण आदि इन जिलों की मुख्य विशेषतायें पायी गयीं । सहायक व्यवसायों के विकास मुख्य रुप से डेरी उद्योग द्वारा लघु कृषकों की आय मे बहुत वृद्धि पायी गयी । दूसरी ओर बालासोर, जोधपुर, शोलापुर जनपदों मे निम्न आय के विस्तार की स्थिति पायी गयी । इन जिलों के 3/4 कृषि जोत परिवारों की कुल कृषि आय 1500/- से कम थी । इन जनपदों मे सिचाई सुविधाओं की कम व्यवस्था, मानसून पर आधारित रही और यहाॅ लघु कृषकों मे गरीबी की समस्या अधिक व्याप्त थी । अन्य जनपदों मे भी लघु कृषकों की समस्याये कम गभीर नहीं थी । फैजाबाद, पूर्णिया, दक्षिणी कनारा और पश्चिमी दिनाजपुर मे लघु कृषकों की असमर्थता देखी गयी फिर भी इन सभी जनपदों मे फैजाबाद को छोडकर कृषि जोत का एक बहुत बडा भाग बटाई प्रथा की कृषि का पाया गया । बचे हुये अन्य जनपदों खम्मम तथा पश्चिमी नीमार भी

इसी तरह के वर्गों मे आते है । दोनों मे शुष्क कृषि पायी गयी किन्तु वहॉ कृषि मे विविधीकरण देखा गया । वहॉ कपास एक महत्वपूर्ण फसल पायी गयी । इसके विपरीत सिंचित क्षेत्रों मे ज्वार एक महत्वपूर्ण कृषि व्यवस्था के रुप मे देखी गयी । इस तरह इन चयनित जिलों के लघु कृषकों की सरचना और विविधीकरण मे बहुत अतर पाया गया पर इन सबमे एक बात तो समान रही वह इन वर्गों की निम्न आय का होना है।[8]

4.6 कृषि लाभों का वितरण :-

भारतीय कृषि व्यवस्था अब एक स्थिरावस्था मे न होकर एक अत्यन्त गत्यात्मक आधुनिक, वैज्ञानिक कृषि व्यवस्था का रुप ले चुकी है । पिछले बीस वर्षों के नियोजन के परिणामस्वरुप कृषि क्षेत्र मे महत्वपूर्ण सरचनात्मक तथा तकनीकी परिवर्तन हुये है जिसके परिणामस्वरुप उत्पादन व राष्ट्रीय आय मे कृषि के योगदान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु इस तरह के विकास से आय, सम्पत्ति तथा आर्थिक शक्तियों का कितना सकेन्द्रण हुआ है, यह अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है । तृतीय पचवर्षीय योजना मे यह कहा गया था कि आर्थिक विकास समाजवादी आधार पर तीव्र आर्थिक विकास, रोजगार मे वृद्धि, सम्पत्ति व आय के अतर मे कमी, आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रीकरण मे रोक के साथ ऐसे मूल्यों को उत्पन्न करेगी जिससे एक स्वतन्त्र तथा समतावादी समाज की कल्पना पूरी की जा सके । राष्ट्रीय क्षेत्र मे कृषि एक केन्द्रीय भूमिका रखती है तथा राज्यों के सिचाई सुविधा व सस्थागत कारणों के आधार पर कृषि की नई तकनीकी ने देश के भिन्न भागों मे अपने प्रभाव को अलग-अलग रुपों मे प्रदर्शित किया है । ऊॅचे लाभों की प्रत्याशा मे कृषि क्षेत्र मे भारी विनियोग किये गये हैं इस तरह जहॉ ग्रामीण क्षेत्रों मे विकास व विनियोग की भारी सभावनाये उत्पन्न हुई

---

8. पैटर्न ऑफ रुरल इनइक्वुलिटि पृष्ठ 56, मथली कमेटरी 1975

है, वहीं इसके लाभों के बॅटवारे सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण बातें सामने आयी है।[9] यद्यपि नई तकनीकी से उत्पादन लाभों को पूरी तरह स्वीकार किया गया पर ऐसे लाभों का कृषि जोतों के आकार के अनुसार अनेक विरोधी बातें सामने आयी है । कृषि क्षेत्र मे आय मे वृद्धि तथा कृषि जोतों के आकार के साथ उत्पादन समान रुप से विपरीत नहीं हुआ है । पजाब तथा उत्तर प्रदेश के ऑकडों से यह स्पष्ट हुआ हे कि बडे कृषि जोतों मे उत्पादन की वृद्धि छोटे कृषि जोतों की तुलना मे अधिक रही है । इस शोध प्रबन्ध मे किये गये सर्वेक्षण से इलाहाबाद जनपद की स्थिति भी इसी निष्कर्ष की प्रस्तुति करती है । अध्ययन मे इस बढती हुई असमानता की समस्या का विश्लेषण कृषि जोतों की व्यावसायिक आय मे होने वाले अतर के रुप मे किया गया है इसका विस्तृत विवरण अध्याय 6 मे किया गया है ।

---

9 जी आर सैनी, ग्रीन रिवोल्यूशन एण्ड डिस्ट्रीव्यूशन ऑफ फार्म इन्कम्स, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, मार्च 1976

अध्याय-5

कृषि क्षेत्र में गरीबी तथा बेरोजगारी - प्रमुख नीतियाँ

(POVERTY AND UNEMPLOYMENT IN AGRICULTURAL SECTOR -MAJOR POLICIES)

अध्याय-5

कृषि क्षेत्र में गरीबी तथा बेरोजगारी - प्रमुख नीतियॉ

5.1 गरीबी की प्रकृति एवं विस्तार :- भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी तथा बेरोजगारी की भीषण समस्या विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र मे 1947 से ही विद्यमान थी । ब्रिटिश सरकार की शोषणात्मक नीति ने अर्थव्यवस्था को पिछडी अवस्था मे रखा जिससे स्वतत्रता प्राप्ति के समय भारत की गणना विश्व के गरीब देशों मे की जाती थी । गरीबी तथा पिछडेपन से मुक्ति पाने हेतु देश ने आयोजित विकास का अनुसरण 1951 से किया । विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करना तथा गरीबी उन्मूलन के द्वारा समृद्ध समाज का निर्माण करना था । यह विचार व्यक्त किया गया कि उन लोगों के जीवन स्तर को रोजगार के अवसरों मे वृद्धि उत्पादन तथा सामाजिक सेवाओं के माध्यम से ऊपर उठाया जाये जो कि निर्धनता के निम्नतम स्तर पर जीवन यापन कर रहे है । प्रस्तुत अध्याय मे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या तथा उनके विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला जायेगा ।

1951 से नियोजित आर्थिक विकास के प्रयासों से भारत की स्थिरावस्था मे पड़ी अर्थव्यवस्था को औद्योगिक व कृषि दोनों क्षेत्रों मे गत्यात्मक प्रवृत्तियों को उत्पन्न किया है । परिणामत औद्योगिक विकास की दृष्टि से भारत विश्व मे अपना नौवां स्थान रखता है और इसी तरह कृषि मे भी नवीन तकनीकी से खाद्यान्न उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त हो गयी हे । फलस्वरुप योजना के प्रारम्भिक दशकों मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि 1% थी वह योजना के तीसरे दशक के बाद 3 3% हो गयी पर आर्थिक विकास की इस वृद्धि की प्रक्रिया मे गरीबी व अमीरी का अन्तराल भी बढ़ता गया ।

गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों का प्रतिशत भी धीरे-धीरे बढता गया । वर्तमान समय मे गरीबी का आयाम और प्रसार योजना के प्रारम्भिक दशकों की तुलना मे अधिक है और लगभग 40% से अधिक लोग निम्न जीवनयापन करने के लिये मजबूर है परन्तु गरीबी की समस्या ग्रामीण क्षेत्रों मे अधिक भयकर है[1] । 1960-61 मे भारत सरकार द्वारा नियुक्त अर्थशास्त्री विशेषज्ञ समिति ने यह अनुमान दिया कि जो लोग 240/-या उससे कम व्यय प्रतिवर्ष करते है वे गरीबी रेखा के नीचे है और ऐसे लोग 40% है । इस अनुमान के बाद कुछ अर्थशास्त्री तथा शोधकर्ता जैसे दाण्डेकर तथा रथ, बी एस मिन्हाज, बी के आर.वी राव तथा पी डी ओझा ने भी गरीबी सघनता तथा आयाम का अनुभव किया । 1978-83 की पॉचवीं पचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट रिपोर्ट मे योजना आयोग ने भोजन मे कैलोरी तत्व प्रयोग के आधार पर यह अनुमान लगाया कि ग्रामीण जनसख्या का 48% तथा शहरी जनसख्या का 41% गरीबी रेखा के नीचे है जबकि छठी योजना के ड्राफ्ट रिपोर्ट मे यह क्रमश 51% तथा 38% ऑकी गयी है । बी एस मिन्हाज ऐसे अर्थशास्त्री है जिन्होंने 1956-57 और 1967-68 मे गॉव मे निर्धनता के प्रतिशत मे कमी का सकेत दिया है, इसके विपरीत पी डी ओझा तथा पी के. वर्द्धन ने ग्रामीण निर्धनों के अनुपात मे वृद्धि का सकेत दिया है । उनके विचार मे परिवर्तन की यह दिशा देश मे बढते हुये दरिद्रीकरण का सूचक है । दाण्डेकर और रथ ने 1960-61 व 1967-68 के दौरान ग्रामीण तथा नगरीय दोनों निर्धन वर्ग मे स्थिर अनुपात बताया है किन्तु इनके अनुमान मे ग्रामीण निर्धनों की सख्या 13.5 करोड से बढ़कर 16 6 करोड और नगरीय निर्धनों मे 4 2 करोड से बढ़कर 4.9 करोड हो गयी है । मॉण्टेक आहलूवालिया का मत है कि भारत के पिछले दो दशकों के अनुभव से निर्धनता की प्रवृत्ति मे वृद्धि का सकेत नहीं मिलता ।

---

1. दाण्डेकर एण्ड रथ, पावर्टी इन इण्डिया

सामान्यतयायह देखा गया है कि ग्रामीण निर्धनता का प्रभाव कृषि के अच्छे कार्यकाल के दौरान कम होता जाता है और कृषि की दृष्टि से बुरे वर्षों मे बढ़ जाता है । सातवे वित्त आयोग के अनुसार 1970-71 में 27 7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे रह रहे थे जिनमे 22 5 करोड ग्रामीण क्षेत्रों मे तथा 5 2 करोड शहरी क्षेत्र मे थे । डॉ कोस्ट ने अपने अनुमान मे निर्धनता के तीन स्तर बताये है अतिदीन, दीन व निर्धन। उनके अनुमान के अनुसार 1963-64 मे 6 2 करोड व्यक्ति अतिदीन, 10 4 करोड दीन और 16 2 करोड व्यक्ति निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे । अर्थशास्त्रियों के इन अनुमानों को तैयार करने की विधि के बारे मे मतभेद हो सकता है और इस कारण उनके अनुमानों मे अन्तर हो सकते है पर दो बातों मे सहमति प्राप्त हो चुकी है । प्रथम निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या का प्रतिशत कम नहीं हुआ है और दूसरे यह बढा नहीं है । गरीबी सबधी इन विभिन्न अनुमानों को निम्न तालिका मे दिखाया गया है -

सारणी-5.1

भारत मे निर्धनता के विभिन्न अनुमान

अनुमाता	वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल करोड व्यक्ति
पी0डी0 ओझा	1960-61	18 4(51 6)	0 6(7 6)	19 0(44 0)
	1967-68	28 9(70 0)		
डॉ कॅोस्टा	1963-64			16 1(34 5)
पी0के0 वर्धन	1960-61	13 1(38 0)		
	1967-68	22 0(53 0)		
बी0एस0मिन्हाज	1956-57	21 5(65 0)		
	1963-64	22 1(57 8)		
	1969-70	21 0(50 6)		
मॉन्टेक आहलूवालिया	1956-57	18 1(54 1)		
	1963-64	17 1(44.5)		
	1967-68	23 5(56 5)		
	1973-74	24.1(46.1)		
दाण्डेकर एव रथ	1960-61	13 5(40 0)	4 2(50 0)	17 7(41 0)
	1969-70	16 6(40 4)	4 9(50 0)	21 5(41.0)
सातवा वित्त आयोग	1970-71	22 5(53 0)	5 2(51 0)	27 7(52 0)
पॉचवीं योजना				
(1978-83)	1977-78	23 9(47 9)	5 5(40 7)	29.4(46 3)
छठी योजना				
(1980-85)	1979-80	26.0(50 7)	5 7(40 0)	31 7(48 2)
बी.एम दाण्डेकर	1977-78	28.4(49 5)		
	1983-84	28 6(44 4)		
विश्व बैंक	1970	23 7(53 0)	5 1(45 5)	28 7(52.4)

क्रमश

अनुमाता	वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल करोड व्यक्ति
	1983	25 2 (44 9)	6.5 (36 4)	31 7 (42 5)
	1988	25.2 (41.7)	7 0 (33.6)	32 2 (39.6)

नोट- कोष्ठक मे दिये गये ऑकडे कुल जनसख्या के प्रतिशत के रुप मे है । ग्रामीण तथा नगरीय निर्धनता के अनुमान कुल ग्राम जनसख्या और कुल नगरीय जनसख्या के प्रतिशत के रुप मे है ।

स्रोत रुद्र दत्त एव सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ 421, 1992

विश्व बैंक ने अपने देश सम्बन्धी अध्ययन, "भारत निर्धनता, रोजगार एव सामाजिक सेवाये" (1989) मे गरीबी रेखा निर्धारित करने के लिये वही विधि अपनायी है जो योजना आयोग ने अपनायी थी । 1973-74 मे योजना आयोग ने ग्रामीण एव शहरी क्षेत्रों के लिये क्रमश 49 1 रुपये और 56 6 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति मास की निर्धनता रेखाये परिभाषित की थीं । विश्व बैंक ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण और भारतीय सांख्यिकीय सस्थान द्वारा विकसित विधि के आधार पर निर्धनता, अनुपात का अनुमान लगाने की वैकल्पिक विधि का प्रयोग किया । इसके अनुसार 1977-78 के लिये (वर्तमान कीमतों पर) ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 55 2 रुपये और शहरी क्षेत्रों के लिये 111.2 रुपये निर्धनता रेखा निर्धारित की गयी । विश्व बैंक ने भी अति निर्धन व्यक्तियों के अनुमान गरीबी रेखा के व्यय के 75% अनुपात को आधार बनाकर लगाये हैं । इस आधार पर 1970, 1983, 1988 के लिये गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या के लिये तैयार किये गये अनुमानों से निम्नलिखित परिणाम निकाले है-

(1) ग्रामीण क्षेत्रों मे निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या का अनुपात 1970 मे 53% से गिरकर 1983 मे 44 9% हो गया अर्थात् 1970 से 1983 की अवधि के दौरान इसमे लगभग 8% की कमी हुई और यह अनुमान लगाया गया कि 1988 तक इसमे 3% की और गिरावट हुई है और अब यह लगभग 42% है किन्तु कुल रुप मे ग्रामीण निर्धनों की सख्या जो 1970 मे 23 7 करोड़ थी बढकर 1983 मे 25.2 करोड हो गयी और 1988 मे यह लगभग इतनी ही रही ।

सारणी-5 2

विश्व बैंक के अनुसार निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या के अनुपात

	निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या करोड व्यक्ति			निर्धन जनसख्या का प्रतिशत		
	1970	1983	1988	1970	1983	1988
ग्रामीण	23 6	25 2	25.2	53 0	44 9	41.7
नगरीय	5 1	6 5	7 0	45 5	36 4	33 6
कुल	28 7	31 7	32 2	52 4	42 5	39 6
	अति निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या (करोड व्यक्ति)			अति निर्धन जनसख्या का अनुपात		
ग्रामीण	13 5	12 8	12.3	30 1	22 8	20.4
नगरीय	2 8	3 1	3.3	25 6	17 7	15.8
कुल	16.3	15 9	15 6	29 8	21 8	19 2

स्रोत वर्ल्ड बैंक, इण्डिया पावर्टी, एम्पलायमेण्ट एण्ड सोशल जस्टिस

(2) गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली शहरी जनसख्या का अनुपात जो 1970 मे 45.5% था, तेजी से गिरकर 1983 मे 36 4% और फिर 1988 मे और गिरकर 33 6% हो गया । फिर भी शहरी क्षेत्रों मे निर्धनों का कुल जनसख्या मे भाग जो 1970 मे 18% था बढकर 1988 मे 22 प्रतिशत हो गया । कुल रुप मे शहरी निर्धन व्यक्तियों की सख्या जो 1970 मे 5 05 करोड थी, बढकर 1983 मे 6 46 करोड हो गयी अर्थात् इस अवधि मे इसमे लगभग 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह मात्रा और बढकर 1988 मे 7 करोड गयी लगभग 8 प्रतिशत की वृद्धि ।

(3) गरीबों का कुल अनुपात जो 1970 मे 52 4 प्रतिशत था गिरकर 1988 मे 40 प्रतिशत हो गया किन्तु कुल रुप मे, उनकी सख्या जो 1970 मे 28 7 करोड थी बढकर 1988 मे 32 2 करोड हो गयी अर्थात् इसमे लगभग 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई ।

(4) भारत मे अति निर्धन व्यक्तियों का अनुपात जो 1970 मे 30 प्रतिशत था, भी गिरकर 1988 मे लगभग 19 प्रतिशत रह गया किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों मे अति निर्धनों का अनुपात 20 4 प्रतिशत था, जबकि शहरी क्षेत्रों मे यह 15.8 प्रतिशत था । यह एक विरोधाभास सा प्रतीत होता है कि ग्रामोण अति निर्धन जिनकी सख्या 1970 मे 13 46 करोड थी, गिर कर 1988 मे 12 36 करोड रह गयी परन्तु इसके विरुद्ध शहरी अति निर्धनों की सख्या जो 1970 मे 2 84 करोड़ थी बढकर 1988 मे 3 29 करोड़ हो गयी ।

(5) अनूसूचित जातियों एव जनजातियों का ग्राम क्षेत्रों मे निर्धनों मे अनुपात एक

तिहाई था और अति निर्धनों का 38 प्रतिशत परन्तु शहरी क्षेत्रों मे निर्धनों मे इनका अनुपात 13% था और अति निर्धनों मे 15 प्रतिशत ।

(6) मजदूरी पर आश्रित परिवारों के व्यक्तियों का ग्राम क्षेत्रों के निर्धनों मे अनुपात 1983 मे लगभग 46% था । इनमे वे व्यक्ति भी शामिल है जो कृषि भिन्न कार्यों मे काम कर रहे है । ऐसी इकाइयों का आन्ध्र प्रदेश, उडीसा और महाराष्ट्र जैसे राज्यों मे निर्धनों मे भाग 50 प्रतिशत से अधिक था । कृषि श्रम परिवारों मे, 1983 मे लगभग 64 प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा के नीचे रह रहे थे । यह अनुपात बिहार और मध्य प्रदेश में 70 प्रतिशत से भी अधिक था । स्व-रोजगार प्राप्त परिवार ग्रामीण निर्धनों का दूसरा बडा खण्ड था । स्वरोजगार प्राप्त परिवारों मे लगभग 38 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे थे ।

इसमे सन्देह नहीं कि विश्व बैंक रिपोर्ट ने पिछले अठारह वर्षों की अवधि मे निर्धनता का चित्र प्रस्तुत किया है और इस दृष्टि से यह हमे गत दो दशकों मे गरीबी की प्रवृत्ति का बोध कराती है परन्तु 1988 के ऑकडे विभिन्न राज्यों एव समग्र भारत मे वृद्धि दरों के आधार पर तैयार किये गये है और यह कल्पना की गयी है कि जहाँ तक वितरण का प्रश्न है, वृद्धि इस सम्बन्ध मे तटस्थ है । स्पष्ट है कि 1988 के ऑकडे कम विश्वसनीय ही समझे जा सकते है । इसके लिये 1987-88 के वर्ष सम्बन्धी राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 42वे दौर के ऑकडे अधिक विश्वसनीय सूचना प्रदान करेगे । चूँकि 1983 के ऑकड़े एक बहुत ही अच्छे फसल वर्ष से सम्बन्धित हैं, इसलिये गरीबी रेखा के बारे मे उन पर आधारित अनुमान अल्पानुमान ही होगे और उनको आधार बनाकर 1988 के लिये तैयार किये गये अनुमान अल्पानुमान की मात्रा को और बढ़ायेगे ।

निर्धनता की स्थिति का एक बहुत ही निराशाजनक पहलू यह है कि जहाॅ समग्र भारत के लिये ग्रामीण निर्धनता जो 1970 मे 53% थी, कम होकर 1988 मे 41 7% हो गयी और शहरी निर्धनता 45 5 प्रतिशत से कम होकर 33.6% हो गयी, वहाॅ इसी अवधि के दौरान अति निर्धनता ग्रामीण क्षेत्रों मे 20 4 प्रतिशत के स्तर तक और शहरी क्षेत्रों मे 15 8 प्रतिशत के स्तर तक कम हुई । जाहिर है कि निर्धनता स्तर मे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों मे लगभग 8% की गिरावट आयी किन्तु अति निर्धनता स्तर मे सापेक्ष दृष्टि से कम गिरावट आयी - 4 प्रतिशत से थोडी अधिक । इससे स्पष्ट सकेत मिलता है कि विकास प्रक्रिया के लाभ अति निर्धनों तक अपेक्षाकृत कम पहुॅच पाये है और ये निर्धनता की ऊपरी सतहों तक ही सीमित रहे है ।

अर्थशास्त्री किसी एक या दूसरे अनुमान के सही होने पर एक अनन्त विवाद कर सकते है परन्तु वास्तविकता यह है कि "किसी भी उचित मापदण्ड द्वारा ऑकने से पता चलता है कि ग्रामीण भारत मे घोर निर्धनता का भयानक स्तर विद्यमान है । यह ठीक-ठीक अनुमान कि क्या यह कुल ग्राम जनसख्या का 40 प्रतिशत या आधा भाग है, एक सिद्धान्त वादी विषय है । आज इससे कहीं महत्वपूर्ण और व्यावहारिक आवश्यकता इस बात की है कि गरीबों के लाभ के लिये और विशेषकर ग्रामीण निर्धनों के लिये जो सख्या मे तो कहीं अधिक है परन्तु शहरी निर्धनों की भॉति साफ दिखाई नहीं पडते, ठोस उपाय ढूॅढने की नीति पर ध्यान केन्द्रित किया जाये।" जनसख्या का गरीबी रेखा सम्बन्धी राज्यवार ऑकडा तालिका 5 3 मे दिया गया है ।

तालिका-5.3

गरीबी रेखा के नीचे की जनसख्या 1977-78

राज्य	ग्रामीण	नगरीय	कुल
आन्ध्र प्रदेश	43 89	35 68	42 18
असम	52 65	37 37	50 10
बिहार	58 91	46 07	57 49
गुजरात	43 20	29 02	39 04
हरियाणा	23 25	31 74	24 04
हिमाचल प्रदेश	28 12	16 56	27 23
जम्मू एव कश्मीर	32 75	39 33	34 06
कर्नाटक	49 88	43 97	48 34
केरल	46 00	51 44	46 95
मध्य प्रदेश	59 82	48 09	51 23
महाराष्ट्र	55 85	31 62	47 71
मणिपुर	30 54	25 48	29 71
मेघालय	53 87	18 16	48 03
नागालैण्ड	अनुपलब्ध	4 11	4 11
उडीसा	68 97	42 19	46 40
पजाब	11 87	24.66	15 13
राजस्थान	33 75	33 80	33 76
तमिलनाडु	55 68	44 79	52.12
त्रिपुरा	64 28	26 39	59 73
उत्तर प्रदेश	50 23	40 24	50 09
पश्चिमी बगाल	58.94	34 71	52 54
सम्पूर्ण केन्द्र शासित प्रदेश	34 32	10 96	21 69
अखिल भारत	50.82	38 19	48 13

स्रोत:छठी पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार ।

ये अनुमान नेशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन के 1977-78 के 32वे चक्र के आधार पर प्राप्त हुये है जिनमे ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के प्रति व्यक्ति आय तथा भोजन मे कैलोरी प्रयोग के आधार पर यह अनुमान प्राप्त किये गये है । इन ऑकडों से यह स्पष्ट होता है कि हमारी योजना के प्रयासों से गरीबी की समस्या का समाधान नहीं हो सका और यह बढती ही जा रही है ।

भारत मुख्यतया एक कृषि प्रधान व ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाला देश है जहाँ भूमि तथा श्रम, उत्पादन के दो मुख्य साधन है इस तरह भारत मे गरीबी मुख्य रुप से ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी है और शहरी गरीबी इसका एक प्रवाह है । ग्रामीण क्षेत्र मे गरीबों को आसानी से सीमान्त कृषकों, भूमिहीन कृषि श्रमिकों, ग्रामीण काश्तकारों तथा परम्परागत व्यवसायों मे लगे लोगों के रुप मे देखा जा सकता है । वास्तव मे ग्रामीण क्षेत्र मे सभी बेराजगार व्यक्ति, अर्द्धरोजगार व्यक्ति गरीबी की श्रेणी मे आते है क्योंकि उनकी उत्पादकता बहुत निम्न है तथा मजदूरी भी निम्न है । कुछ पिछडे वर्ग तथा अनुसूचित तथा अनुसूचित जनजातियों के लोग भी निर्धनता रेखा के नीचे आते है ।

योजनावधि के 1950-51 से 1978-79 के बीच लोगों के जीवन स्तर मे कुछ सुधार हुआ है और व्यक्तिगत उपभोग प्रति व्यक्ति 46% से बढा है पर व्यक्तिगत उपभोग व्ययों मे बटवारा यह दिखाता है कि सुधार बहुत ही नगण्य रहा है और गरीबों के जीवन स्तर मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है । इसे निम्न सारणी मे दिखाया गया है -

सारणी-5.4

उपभोग व्यय में 30 प्रतिशत निर्धनतम व्यक्तियों का हिस्सा

क्षेत्र	1958-59	1977-78
ग्रामीण	13 1	15 0
शहरी	13 2	13 6

स्रोत छठी पचवर्षीय योजना, पृष्ठ 7

5.2 वैयक्तिक आय, आदेय तथा भूमि वितरण की असमानता व गरीबी :-

एन.सी.ए.ई आर ने राष्ट्रीय आय के वितरण की समस्या का दो अलग - अलग वर्षों के लिये अध्ययन किया है । 1960 मे नगर परिवारों की आय और बचत के सम्बन्ध मे सर्वेक्षण किया और दूसरा सर्वेक्षण अखिल भारतीय स्तर पर 1967-68 के लिये आय बचत पर उपभोक्ता व्यय के सबध मे किया गया । राष्ट्रीय आय के वितरण मे परिवर्तन को समझने के लिये आय सकेन्द्रण के लॉरेन्ज गुणाक का परिकलन किया गया और ग्रामीण क्षेत्र मे यह गुणांक जो 1962 मे 0.41 था बढकर 1967-68 मे बढकर 0 46 हो गया । इससे यह बात स्थापित होती है कि व्यय हेतु आय मे निम्नतम 20 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों का भाग 1962 मे 5 9 प्रतिशत था परन्तु 1967-68 मे यह घटकर केवल 4 8 प्रतिशत रह गया । इसी के साथ उच्चतम 20 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों का आय मे भाग 1962 मे 48 प्रतिशत था जो बढ़कर 1967-68 मे 53 प्रतिशत हो गया । इसमे ग्राम परिवारों मे सकेन्द्रण की बढती प्रवृत्ति का सकेत मिलता है । इन सर्वेक्षणों के परिणाम को सारांशत. निम्न सारणी मे प्रदर्शित किया गया है -

सारणी-5.5

भिन्न-भिन्न वर्गों का कुल पारिवारिक निर्वत्य आय* मे प्रतिशत भाग

	1960		1962	1967-68	
	नगरीय	ग्रामीण	नगरीय	ग्रामीण	नगरीय
0-10	1 3	2 1	2 0	1 8	1 8
10-20	2 8	3 8	3 2	3 0	3.0
20-30	3 7	4 7	4 3	3 8	3.7
30-40	4.7	5.6	4.9	4 5	4 6
40-50	5.6	6.3	6.1	5.7	5.8
50-60	6 7	8 2	7 3	7 1	7 0
60-70	8 3	9.5	8 9	8 8	9 0
70-80	10 7	11 7	10 8	11 8	11 8
80-90	15 8	15 3	15 6	17 3	16.9
90-100	40 4	32 8	36 9	36 1	36 5
सकेन्द्रण का लॉरेन्ज गुणाक	0 49	0 41	0.45	0 46	0 46

* निर्वर्त्य आय का अर्थ शुद्ध पारिवारिक आय मे से प्रत्यक्ष कर घटा देने के पश्चात् प्राप्त आय से है ।

स्रोत. एन.सी.ए ई आर , ऑल इण्डिया हाउसहोल्ड सर्वे ऑफ इन्कम, सेविग एण्ड कन्ज्यूमर एक्सपेन्डीचर दिसम्बर 1972, पेज 29.

गरीबी सामान्यतया निम्न आय, निम्न बचत और विनियोग से प्रेरित निम्न रोजगार स्तर और आय के दुष्चक्र मे देखा जाता है । इस चक्र के विस्तार मे निम्न उत्पादकता, बाजारी अपूर्णता, परम्परागत तकनीकी ज्ञान तथा अति जनसख्या तथा शक्ति के सकेन्द्रण आदि आते है । उत्पादन प्रक्रिया मे एक व्यक्ति अपने आदेयों से आय प्राप्त करता है । योजना के दुष्परिणामों के कारण आदेयों के उचित बटवारे के अभाव में उत्पादक रोजगार देना सभव नहीं हो पाया है । अखिल भारतीय ऋण व विनियोग सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों मे आदेयों का वितरण निम्न सारणी मे व्यक्त किया गया है । इस सारणी मे ग्रामीण क्षेत्रों के निम्न 30 प्रतिशत वर्ग के आदेय वितरण को प्रदर्शित किया गया है । यहाँ यह स्पष्ट हुआ है कि ग्रामीण क्षेत्र के आदेय वितरण सरचना मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है । वास्तव मे ग्रामीण क्षेत्रों मे गरीब परिवारों के 1000 रुपये से कम आदेयों का प्रतिशत जो 1961 मे 30 प्रतिशत था वह 1971 मे 35 प्रतिशत हो गया । इन गरीब परिवारों का अधिकांश आदेय इनकी झोपडियों, पारिवारिक सामग्री तथा पशुधन आदि रुप मे होता है ।

सारणी-5.6

ग्रामीण क्षेत्र में आदेय वितरण

आदेयों का प्रतिशत हिस्सा	1961	1971
निम्नतम 10 प्रतिशत	0 1	0 1
निम्नतर 30 प्रतिशत	2.5	2 0
उच्च 30 प्रतिशत	79 0	8 9
उच्च 10 प्रतिशत	51 4	51 0

स्रोत · छठी पचवर्षीय योजना, पृष्ठ 7

ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे प्रथम उत्पादक आदेय भूमि है और इसका बटवारा बहुत ही असमान रहा है । एन.एस.एस. के 16वे चक्र से प्राप्त ऑकड़ों के आधार पर कुल ग्रामीण परिवारों का 12 प्रतिशत भूमिहीन परिवार था । ग्रामीण श्रम सर्वेक्षण समिति 1974-75 के अनुसार कुल 82.1 करोड़ परिवारों में कृषि श्रमिक 25.3 प्रतिशत और ग्रामीण श्रमिक 30.3 प्रतिशत थे । यह अनुमान किया गया कि 5 एकड़ तक की कृषि जोत पर्याप्त आय नहीं उत्पन्न कर सकती और कुल कार्यशील परिवारों का 72.6 प्रतिशत 2 एकड़ से कम पर कृषि कार्यरत था । इस तरह ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी वर्ग का आसानी से अवलोकन किया जा सकता है जिनके पास बहुत कम भूमि जोत है । लघु एवं सीमान्त कृषक जो 72 प्रतिशत है वे केवल 24 प्रतिशत भूमि पर कार्यरत है । ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के बंटवारे तथा जोतों पर कार्यरत कृषि परिवारों में भूमि का वितरण निम्न सारणी मे प्रदर्शित है -

सारणी-5.7

भूमि का वितरण, 1976-77

कार्यशील जोतें जो	प्रतिशत	
	सख्या	कार्यशील क्षेत्र
2 एकड़ से कम	72.6	23.5
2 से 10 एकड़	24.6	50.2
10 एकड़ से ऊपर	3.0	26.3

स्रोत · छठी पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 8

गरीबी के इन विभिन्न आयामों और विस्तार से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी मुख्य रुप से बेरोजगारी से जुड़ी हुई है । ग्रामीण क्षेत्रों मे रोजगार सृजन हेतु नीतियों एवं योजनाओं के कार्यक्रमों की विफलता से लाभदायक रोजगार उत्पन्न नहीं हो पाये हैं । ग्रामीण क्षेत्रों मे सही अर्थ मे गरीबी का निराकरण तभी संभव है जबकि उत्पादक रोजगार में वृद्धि हो सके ।

5.3 बेरोजगारी की प्रकृति व विस्तार :-

देश में गरीबी की समस्या के साथ ही साथ एक व्यापक जनसमूह में बेरोजगारी की समस्या भी जुड़ी हुई है । बेरोजगारी की यह समस्या ग्रामीण क्षेत्र में अधिक व्यापक और गहन है । समाज में उत्पादक रोजगार में कमी के कारण विभिन्न लोगों की आवश्यक अनिवार्यतायें भी पूरी नहीं हो पाती है और वे अल्पपोषण व कुपोषण के शिकार हो जाते हैं । इसके परिणामस्वरुप उनकी क्षमता घट जाती है और आय की संभावनायें कम हो जाती हैं । इसी के साथ-साथ बेरोजगारी की समस्या के कई मानसिक व सामाजिक पहलू भी हैं । ग्रामीण बेरोजगारी मोटे तौर पर अर्द्धबेरोजगारी, छिपी हुई बेरोजगारी के रुप में है । कृषि क्षेत्र मे मौसमी बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगारी का दूसरा पहलू है । ग्रामीण क्षेत्र में श्रमिकों की गतिशीलता विशेषकर महिला व बाल श्रमिकों की गतिशीलता बहुत सीमित है जिससे ऊँची मजदूरी के लाभों से वे वंचित रहते हैं ।

योजनाकाल में रोजगार सृजन प्रयासों के बाद भी बेरोजगारी की संख्या बढ़ती जा रही है । यद्यपि बेरोजगारी व अर्द्धबेरोजगारी के पर्याप्त व विश्वसनीय ऑकड़ों की कमी है फिर भी बेरोजगारी की मात्रा व प्रवृत्ति का कुछ अनुमान दिया जा सकता है। विभिन्न योजनाओं में योजना आयोग द्वारा किये गये अनुमानों से ज्ञात होता है कि योजना की समाप्ति पर बेरोजगारों की संख्या बढ़ गयी है । भारत मे प्रथम योजना के

प्रारम्भ मे बेरोजगारों की संख्या 3.3 करोड़ थी जो योजना के अत मे 5.3 करोड़ हो गयी । दूसरी योजना के अत में बेरोजगारों की सख्या बढ़कर 7.1 करोड़ तथा तीसरी योजना के अंत मे 9.6 करोड़ हो गयी । वार्षिक योजनाओं 1968-69 के अत में बेरोजगारों की संख्या 12.6 करोड़ थी तथा चतुर्थ योजना के अंत में 13.6 करोड़ हो गयी ।

सारणी-5.8

भारत मे बेरोजगार (लाख व्यक्ति)

	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	वार्षिक योजनायें
1- योजना के आरम्भ में श्रम शक्ति	1852	1970	2150	2200
2- योजना काल में श्रम शक्ति में वृद्धि	90	118	170	140
3- योजना आरम्भ के समय अवशिष्ट बेरोजगारी	33	53	71	96
4- अतिरिक्त रोजगार की आवश्यकता	123	171	241	236
5- योजना काल में सृजित रोजगार के अवसर	70	100	145	414
6- योजना के अंत में अवशिष्ट बेरोजगारी	53	71	96	126
7- कुल श्रमशक्ति के प्रतिशत के रुप में बेराजगारी	2.9	3.6	4.5	9.6

स्रोत . पॉचवीं पंचवर्षीय योजना.

कुल बेराजगारी के संदर्भ मे योजना आयोग का अनुमान है कि 1951 मे देश की कुल जनसंख्या 363 मिलियन में से कुल बेराजगारी की सख्या 3.3 मिलियन थी और छठी योजना के प्रारम्भ मे देश की कुल 680 मिलियन जनसंख्या मे बेरोजगारों की संख्या 20 मिलियन हो गयी । इस प्रकार 1951 में जहाँ देश की कुल जनसंख्या में बेरोजगारों का प्रतिशत 0.9 था, वहाँ अब कुल जनसख्या मे बेराजगारों का प्रतिशत बढ़कर 3.0 हो गया । इससे यह स्पष्ट है कि समग्र अर्थव्यवस्था मे कुल बेरोजगारों की संख्या और प्रतिशत बढ़ रहा है । 31 दिसम्बर, 1985 को देश के रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत रोजगार चाहने वालों की संख्या 26.3 मिलियन थी । सातवीं योजना के आरम्भ में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38 वे चक्र के आधार पर दीर्घकालीन बेरोजगारी के सदर्भ मे अनुमान लगाये गये है जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है । यह प्रतीत होता है कि पाँच वर्ष से अधिक आयु वर्ग के लोगों मे दीर्घकालिक बेरोजगारों की सख्या 9.20 मिलियन है । इससे यह स्पष्ट होता है कि सातवीं योजना मे लगभग 46 मिलियन लोगों के लिये अतिरिक्त रोजगार सृजन करना होगा ।

सारणी-5.9

मार्च 1985 मे दीर्घकालिक बेरोजगारी (मिलियन)

श्रेणी	आयु वर्ग		
	5 +	15 +	15-59
ग्रामीण स्त्रियाँ	1.21	1.13	1 10
ग्रामीण पुरुष	3.76	3.54	3.49
नगरीय स्त्रियाँ	0.98	0.96	0.96
नगरीय पुरुष	3.25	3.14	3.12
योग	9.20	8.77	8.67

स्रोत सातवीं पचवर्षीय योजना.

ग्रामीण बेरोजगारी के संदर्भ मे प्रथम कृषि श्रम जाँच समिति के अनुसार 1950-51 मे कुल ग्रामीण बेरोजगारों की संख्या 28 लाख थी । द्वितीय योजना के आरम्भ मे अवशिष्ट बेरोजगारों की संख्या 1950-51 के बराबर ही मानी गयी । द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिये यह अनुमान किया गया कि ग्रामीण श्रम शक्ति की इस अवधि में 72 लाख की वृद्धि होगी और इस तरह योजना के अन्त तक 1 करोड़ रोजगार अवसरों की आवश्यकता होगी । यह भी अनुमान किया गया था कि द्वितीय योजनाकाल में लगभग 80 लाख रोजगार अवसरों का सृजन होगा जिसमें से 65 लाख रोजगार अवसर कृषि क्षेत्र में होगे । चतुर्थ पंचवर्षीय योजना प्रलेख में यह अनुमान था कि 1966 में ग्रामीण क्षेत्र में अवशिष्ट बेराजगारों की संख्या 70 लाख थी । भारत में बेराजगारी की समस्या पर नियुक्त भगवती समिति ने बेरोजगारी का अनुमान करने के

लिए राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 19वे दौर के ऑकड़ों का प्रयोग कर यह अनुमान किया कि ग्रामीण क्षेत्र मे 92 लाख व्यक्ति वर्ष बेराजगारी थी ।[2] इसमे से 78.2 लाख पूर्णतया बेरोजगार थे । प्रो0 राजकृष्ण ने अल्प रोजगार की समस्या को सम्मिलित करते हुये यह अनुमान लगाया है कि 1971 मे कुल ग्रामीण बेरोजगारों की सख्या 2.62 करोड़ थी जिसमें 83 लाख पूर्णत· बेरोजगार थे और 1 करोड़ 79 लाख अल्परोजगार की स्थिति में थे ।

1978-83 के योजना प्रलेख मे यह उल्लेख किया गया है कि 1973 मे कुल ग्रामीण बेरोजगारों की संख्या 1 करोड़ 3 लाख थी जो 1978 में बढ़कर 1 करोड़ 11 लाख हो गयी । छठी पंचवर्षीय योजना मे यह अनुमान लगाया गया कि 15 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के लोगों मे अवशिष्ट बेरोजगारी की संख्या 1980 में 1 करोड़ 42 लाख थी । इसमें अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र के लोग हैं । मार्च 1985 मे 15 से 59 वर्ष आयु वर्ग के लोगों के दीर्घकालिक बेरोजगारों की सख्या 4.59 मिलियन थी।[3] वस्तुत वह समस्त ग्रामीण जनसंख्या जो गरीबी रेखा से नीचे है या तो बेरोजगार है या अल्प रोजगार की अवस्था में है । फलत इनको निम्नतम भरण पोषण भर की आय नहीं मिल पाती है । इसके पास वर्ष भर के लिये लाभदायक रोजगार नहीं होता है । इन ग्रामीण बेरोजगारों की संरचना मे सीमान्त और कुछ स्थानों के लघु कृषक, ग्रामीण कारीगर, ग्रामीण शिल्पकार और भूमिहीन खेतिहर मजदूर सम्मिलित हैं । इन सबके पास आय सृजन की कोई स्थायी परिसम्पत्ति नहीं है । वर्तमान अधिकाश शिक्षित युवक अपने को परम्परागत पारिवारिक व्यवसाय में समायोजित नहीं कर पाते हैं । अत शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है । इसके कारण एक नवीन सामाजिक तनाव उत्पन्न हो रहा है ।

2- गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया . कमेटी ऑन अनइम्पलॉयमेन्ट 1973

3- प्लानिंग कमीशन, सेवेन्थ फाइव इयर प्लान

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का परम्परागत स्वरुप और आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति के कारण ग्रामीण बेरोजगारी का स्वरुप नगरीय बेरोजगारी से भिन्न प्रकृति का है । ग्रामीण बेरोजगारी का मुख्य स्वरुप प्रच्छन्न बेरोजगारी व अल्प रोजगार का है तथा इस क्षेत्र मे पूर्णत बेरोजगार लोगों की संख्या अपेक्षाकृत कम है । श्रम शक्ति बढ़ने के साथ-साथ भूमि पर रोजगार प्राप्ति हेतु लोगों का दबाव बढ़ता जा रहा है । यह इस लक्ष्य से स्पष्ट है कि 1951 मे कृषि क्षेत्र पर कार्य करने वालों की संख्या 10 करोड़ थी जो 1971 और 1981 मे बढ़कर क्रमश 12.58 करोड़ और 14.78 करोड़ हो गयी । कृषि क्षेत्र में कार्य करने वालों की संख्या में वृद्धि की तुलना में कृषि क्षेत्र मे रोजगार अवसरों की बढ़ोत्तरी नहीं हुई है । इस तरह यद्यपि ग्रामीण समुदाय कृषि क्षेत्र में लगा हुआ प्रतीत होता है जबकि वास्तविक रुप में वह बेराजगार है । सामान्य रुप से यह माना जाता है कि किसी रोजगार प्राप्त व्यक्ति को दिन मे 8 घण्टे व वर्ष में 273 दिन कार्य मिलना चाहिये परन्तु ग्रामीण क्षेत्र मे रोजगार की अधिकांश समस्या अपेक्षित मान तक कार्य के न उपलब्ध होने का है । लघु एवं सीमान्त कृषको, छोटे ग्रामीण व्यापारियों, कृषि श्रमिकों व ग्रामीण शिल्पकारों को पूरे समय का कार्य नहीं मिल पाता है । ग्रामीण बेरोजगारी की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति इसकी मौसमी प्रकृति होने से संबंधित है । यह निश्चित रुप से देखा जा सकता है कि ग्रामीण श्रम शक्ति का एक बहुत बड़ा भाग कृषि कार्यों के मौसमी होने के कारण वर्ष के पॉच छह महीनों मे बेकार रहता है । मौसमी बेरोजगारी का समय भिन्न-भिन्न स्थानों पर कृषि पद्धति के पृथक होने के कारण अलग-अलग है । इसके अतिरिक्त भूमि की किस्मे, उगायी जाने वाली फसलों तथा फसल सघनता मे भी भिन्नता पायी जाती है । हरित क्रांति वाले क्षेत्र मे बहुफसली क्षेत्र के बढ़ने के कारण रोजगार संभावनायें बढ़ी है पर हरित क्रांति की सीमितता के कारण बहु फसली क्षेत्रों का प्रसार सीमित क्षेत्रों में रहा है । मौसमी बेरोजगारी की सघनता उन क्षेत्रों में अधिक है जहाँ केवल एक फसल संभव होती है

और जहाँ की कृषि पूर्णत वर्षा पर निर्भर है । ग्रामीण हस्तशिल्प व कुटीर उद्योगों के पतन के कारण ग्रामीण श्रम शक्ति विशेषकर महिलायें अपने अवशिष्ट समय का प्रयोग नहीं कर पाती है ।

ग्रामीण बेरोजगारी की एक दूसरी प्रवृत्ति ग्रामीण श्रमिकों के अपेक्षाकृत कम गतिशील होने के कारण है । राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 16वें चक्र के ऑकड़ों के अनुसार 1970-71 मे लघु कृषक परिवारों में से केवल 27.5% परिवारों के सदस्य अपने गॉव को छोड़कर वैकल्पिक रोजगार की खोज मे जाना चाहते थे । उक्त सर्वेक्षण के अनुसार लघु कृषक परिवारों में 46.5% परिवारों के सदस्य बैकल्पिक रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक थे । इसी प्रकार भूमिहीन परिवारों में से 57.3% परिवारों के सदस्य वैकल्पिक रोजगार अवसर प्राप्त करने के इच्छुक थे और केवल 36.9% परिवारों के सदस्य गॉव छोड़ने के प्रति तत्पर थे । इनसे ग्रामीण श्रमिकों की सीमित गतिशीलता का स्पष्ट आभास होता है । ग्रामीण बेरोजगारी के स्वरुप व प्रकृति मे ग्रामीण जनसंख्या की स्त्री पुरुष सरचना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र मे बेरोजगार महिलाओं का प्रतिशत पुरुष श्रमिकों की तुलना में सदैव अधिक रहा है । कतिपय कृषि कार्यों के अतिरिक्त ग्रामीण महिलाओं के लिये ग्रामीण क्षेत्र मे कार्य का अभाव सा है । ग्रामीण निर्माण कार्य मे तथा अनेक तरह के कार्यों की प्रकृति के कारण महिलाओं का समावेश कम हो पाता है, वहीं उनकी मजदूरी दर भी बहुत कम है । अशिक्षा व पारिवारिक दायित्व के कारण उनमें गतिशीलता का अभाव है ।

भूमि की समस्या ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मूल समस्या है । भूमि ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमि संसाधन का वितरण अत्यन्त असमान है । कुछ परिवारों के पास कृषि जोत बहुत बड़ी है जबकि अधिकांश जोतें अत्यन्त छोटे आकार की होने के कारण अनार्थिक है । अनेक ग्रामीण परिवार भूमिहीन है जिनके पास अपनी कोई भूमि नहीं है । भूमि संसाधन की भाँति

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समस्त उत्पादक परिसम्पत्ति का वितरण अत्यन्त असमान है । किसी भी व्यक्ति के लिये व्यय योग्य आय का सृजन रोजगार अथवा परिसम्पत्ति से होता है । ग्रामीण अर्थसंरचना की विशिष्ट विसगति यह है कि जो लोग बेरोजगार हैं उनके पास उत्पादक परिसम्पत्ति की भी कमी है । कई अध्ययनों मे यह दिखाया गया है कि 1961 में निम्नतम 10% परिवारों का अंश कुल ग्रामीण क्षेत्र की परिसम्पत्ति में केवल 0.1% था और 1971 मे भी यही प्रतिशत बना रहा । दूसरी ओर समस्त ग्रामीण परिसम्पत्ति के 50% भाग के स्वामी ग्रामीण क्षेत्र के केवल 10% परिवार है । स्पष्ट है कि गरीब परिवारों के पास नाम मात्र की परिसम्पत्ति है, इस बात से इस आशय की पुष्टि होती है कि ग्रामीण बेरोजगारी का मुख्य कारण उत्पादक परिसम्पत्ति के असमान वितरण में निहित है ।

छठी योजना (1980-85) के आरम्भ मे 120 लाख व्यक्ति अवशिष्ट बेरोजगार थे । 1980-85 के दौरान श्रम शक्ति मे 343 लाख नव प्रवेशकों का अनुमान लगाया गया । इस प्रकार कुल बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 463 लाख हो जायेगी । छठी योजना में यह अनुमान लगाया गया है कि 1980-85 के दौरान 343 लाख मानव वर्षों का अतिरिक्त रोजगार कायम किया जायेगा । अत छठी योजना के अंत पर 120 लाख व्यक्ति अवशिष्ट बेरोजगारों के रुप में शेष रह जायेंगे । छठी योजना में उल्लेख किया गया . वर्तमान अनुमानों से पता चलता है कि मानक - मानव वर्ष (Standard person year) के आधार पर छठी योजना मे रोजगार में 4.17% प्रतिवर्ष की वृद्धि होगी अर्थात् जो इस अवधि में श्रम शक्ति की 2.54 प्रतिवर्ष की वृद्धि दर की तुलना में काफी अधिक है । परम संख्या के रुप मे इसका अर्थ 340 लाख मानक मानव वर्ष अतिरिक्त रोगार कायम करना होगा जो श्रमशक्ति में वृद्धि के बराबर ही होगा जिसे इस अवधि में पन्द्रह वर्ष की आयु और उसके ऊपर वाले व्यक्तियों के रुप में परिभाषित किया गया है।[4]

4- योजना आयोग, छठी पचवर्षीय योजना (1980-85), पृष्ठ 46

सारणी-5.10

अवशिष्ट बेरोजगारी और 1980-85 के दौरान श्रमशक्ति की शुद्ध वृद्धि

		लाखों मे
1-	1980 में अवशिष्ट बेरोजगार	120.2
2-	1980-85 के दौरान श्रमशक्ति में शुद्ध वृद्धि	342.4
3-	कुल बेरोजगार (1+2)	462.6
4-	1980-85 में संभावित अतिरिक्त कुल रोजगार	342.3
5-	1985 मे अवशिष्ट बेरोजगार	119.8

स्रोत योजना आयोग छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)

सातवीं योजना ने सामान्य स्थिति की बेरोजगारी के लिये दो अनुमान दिये हैं - यह सबसे अधिक व्यापक अवधारणा है और इस अनुमान के लिये छठी योजना की कार्यविधि को अपनाया गया है । एक अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वें चक्र पर और दूसरा इसके 38वें चक्र पर आधारित है । इस बात का उल्लेख करना होगा कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें चक्र में जैसा कि योजना स्वयं ही स्वीकार करती है कि ये ऑकड़े अस्थिर और अस्थाई हैं ।

इसके बावजूद भी हम दोनों ही अनुमानों को सामने रख रहे हैं जिनमें 38वें चक्र के अनुसार पता चलता है कि बेरोजगारी की दर 3.0 प्रतिशत थी और कुल बेरोजगारों की संख्या 92 लाख ऑकी गयी । इसके विपरीत राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वें चक्र के अनुसार मार्च 1985 मे बेरोजगारी की दर 4.54 प्रतिशत थी और कुल

बेरोजगार 139 लाख थे । अगर हम 38वें चक्र के ऑकड़ों को आधार मान लें, तो यह साधिकार कहा जा सकता है कि भारत पूर्ण रोजगार स्तर पर पहुँच गया है । फिर भी अल्परोजगार और निम्न भृति स्तर की प्रवृत्ति बनी ही रहेगी जो कि अर्थव्यवस्था के लिये भयंकर खतरा है । लेकिन 38वें चक्र के निष्कर्षों को स्वीकार करना भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति के लिये एक घिनौना मजाक ही होगा ।

आगे तालिका में दिये गये ऑकड़ों से यह स्पष्ट है कि 1983 में शहरी बेरोजगारी की दर 6.35 प्रतिशत थी । ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की बहुत ही निम्न दर की विद्यमानता के कारण राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें चक्र के अनुसार समग्र बेरोजगारी 3.04 प्रतिशत थी । दुर्भाग्यवश पुरुषों मे बेरोजगारी दर 3.2 प्रतिशत थी जबकि स्त्रियों में यह 2.65 प्रतिशतश थी । इस सर्वेक्षण की एक और उपलब्धि यह है कि 15 से 20 के आयुवर्ग के नवप्रवेशकों में बेरोजगारी की दर बहुत ऊँची थी अर्थात् 5.54 प्रतिशत । यह दर शहरी युवकों में 13.4 प्रतिशत तक ऊँची है जबकि यह ग्रामीण युवकों मे 4.55 प्रतिशत है । अन्य सभी आयु वर्गों तथा 15 वर्ष की आयु के ऊपर के युवकों के लिये राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेरोजगारी नाममात्र ही थी ।

सारणी-5.11

मार्च 1985 में, सामान्य स्थिति की बेरोजगारी के अनुमान

(लाखों में)

		आयु वर्ग		
		(5+)	(15+)	(15-59)
राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का 32वां चक्र				
1-	ग्रामीण	78.0	73.3	72.3
2-	शहरी	60.9	59.2	58.7
3-	कुल रोजगार (1+2)	138.9	132.5	131.0
4-	कुल श्रमशक्ति बेरोजगारी दर(%)	4.54	4.60	4.86
राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का 38 वां चक्र				
5-	ग्रामीण	49.7	46.7	45.9
6-	शहरी	42.3	41.0	40.8
7-	कुल बेरोजगार(5+6)	92.0	87.7	86.7
8-	कुल श्रमशक्ति बेरोजगारी की दर	3.01	3.04	3.21

स्रोत: सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90), खण्ड दो, पृष्ठ 112 में दिये गये आँकड़ों पर आधारित ।

सातवीं योजना की पूर्व संध्या पर प्राप्त चित्र के अनुसार सातवीं योजना के प्रादुर्भाव पर ही पॉच वर्ष की आयु से ऊपर के लोगों में अवशिष्ट बेरोजगार के 92 लाख होने का अनुमान है । यह भी देखा गया है कि इस आयु वर्ग मे श्रम शक्ति की कुल वृद्धि 394 लाख होगी । इस प्रकार सातवीं योजना में 476 लाख व्यक्तियों की रोजगार उपलब्ध कराने की आवश्यकता होगी । सकल देशीय उत्पादन की 5 प्रतिशत की वृद्धि दर और समाज के गरीब वर्गों को स्वरोजगार तथा भृति रोजगार ( )दिलाने के उद्देश्य से चलाये गये गरीबी हटाओ प्रोग्रामों को देखते हुये सातवीं योजना मे कहा गया है कि "3.99 प्रतिशत प्रति वर्ष की निहित वृद्धि दर के साथ सातवीं योजना के दौरान 403.6 लाख मानक मानव वर्षों तक के अतिरिक्त रोजगार जनन की प्रत्याशा है । राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्राम भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम के विशिष्ट रोजगार कार्यक्रमों द्वारा 1989-90 के दौरान 203 लाख मानक मानव वर्ष रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा । समन्वित विकास कार्यक्रम के द्वारा 30 लाख मानक मानव वर्ष रोजगार की सभावना है, जिसका सकेन्द्रण मुख्यत कृषि एवं अन्न क्षेत्रों में है।"[5]

5- तत्रैव, पृष्ठ 115

सारणी-5.12

आवास, लिंग एवं आयु वर्ग के अनुसार सामान्य स्थिति की बेरोजगारी दरें

1983 के दौरान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का 38वाँ चक्र (जनवरी जून 1983)

प्रतिशत

आयु-वर्ग	ग्रामीण	शहरी	पुरुष	स्त्रियाँ	कुल
5-14	2.17	6.79	3.37	1.63	2.68
15-29	4.54	13.39	6.97	5.43	6.54
30-44	0.66	1.51	0.81	0.98	0.86
45-59	0.40	1.03	0.47	0.69	0.53
60 +	0.52	0.88	0.51	0.85	0.58
सभी आयु वर्ग	2.15	6.35	3.20	2.65	3.04

नोट . ये दरें बेरोजगारों मे तदनुसार श्रमशक्ति का प्रतिशत हैं ।

स्रोत . सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90), खण्ड दो ।

योजना आयोग ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 43वे चक्र के आधार पर 1987-88 के लिये बेरोजगारी के अनुमान लगाये हैं । इस अनुमान के अनुसार, सामान्य मुख्य स्थिति के आधार पर बेरोजगारी की मात्रा 124.3 लाख, साप्ताहिक स्थिति के आधार पर 153 लाख और दैनिक स्थिति के आधार पर 189.5 लाख आँकी गयी। श्रमशक्ति के प्रतिशत के रुप में, 1987-88 में इन तीन अवधारणाओं के अनुसार बेरोजगारी की दर क्रमश. 3.77, 4.80 और 6.09 थी । शहरी क्षेत्रों के लिये बेरोजगारी की दरें ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना मे कहीं अधिक हैं और पुरुषों की तुलना में

स्त्रियों में भी बेरोजगारी अधिक है । उदाहरणार्थ सामान्य मुख्य स्थिति बेरोजगारी की दर शहरी क्षेत्रों के लिये 6.56 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों के लिये यह केवल 3.07 प्रतिशत है । इसी प्रकार यह दर ग्रामीण स्त्रियों के लिये 3.52 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण पुरुषों के लिये यह 2.87 प्रतिशत है ।

चूँकि 1980-90 के दशक के दौरान, श्रमशक्ति की वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से होती रही है किन्तु रोजगार की वृद्धि दर 1.55 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है, इसलिये इसके परिणामस्वरुप बेरोजगारी की मात्रा का बढ़ना स्वाभाविक है। तालिका 5.13 में दिये गये आँकड़ों से पता चलता है कि सामान्य मुख्य स्थिति कसौटी के आधार पर बेरोजगारी की दर 1983 मे 2.77 प्रतिशत से बढ़कर 1987-88 में 3.77 प्रतिशत हो गयी और साप्ताहिक स्थिति के अनुसार 4.51 प्रतिशत से बढ़कर 4.80 प्रतिशत हो गयी । परन्तु दैनिक स्थिति कसौटी के अनुसार बेरोजगारी दर 8.25 प्रतिशत से गिरकर इस काल के दौरान 6.09 प्रतिशत हो गयी । इन प्रवृत्तियों से यह संकेत मितला है कि चाहे दैनिक स्थिति अवधारणा के अनुसार बेरोजगारी में श्रमशक्ति के प्रतिशत के रुप में कमी हुई है, बेरोजगार श्रमिकों की मात्रा मे वृद्धि हुई है । दूसरे शब्दों में, बेरोजगारी का स्वरुप अल्परोजगार की प्रधानता से बदलकर खुली बेरोजगारी का रुप धारण करता जा रहा है ।

सारणी-5.13

बेरोजगारी - श्रमशक्ति के प्रतिशत रुप मे

	वर्ष	ग्रामीण (1) पुरुष	स्त्री	कुल	शहरी (2) पुरुष	स्त्री	कुल	कुल (1+2)
सामान्य मुख्य स्थिति	1983	2.12	1.41	1 91	5.86	6.90	6.04	2.77
	1987-88	2.87	3.52	3.07	6.07	8.77	6.56	3.77
साप्ताहिक स्थिति	1983	3.72	4.26	3.88	6.69	7.46	6.81	4.51
	1987-88	4.16	4.27	4.19	6.71	8.93	7.12	4.80
दैनिक स्थिति	1983	7.52	8.98	7.94	9.23	10.99	9.52	8.25
	1987-88	4.58	6.91	5.25	8.79	12.00	9.26	6.09

बेरोजगारी का अनुमान लगाने के लिये हमारे पास देश मे सूचना के दो स्रोत हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी के आधार पर देश में 1990 के आरम्भ में 160 लाख व्यक्ति खुली बेरोजगारी के रुप मे बेरोजगार माने जा सकते है । राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के पहले चक्रों के आधार पर 1990 के आरम्भ में 120 लाख व्यक्ति अत्यन्त अल्प रोजगार की स्थिति में थे । इन्हे भी बेरोजगार ही माना जा सकता है । अत: आठवीं योजना के आरम्भ में

अवशिष्ट बेरोजगारी की मात्रा लगभग 280 लाख मानी जा सकती है ।

सूचना का दूसरा स्रोत रोजगार कार्यालयों से प्राप्त ऑकड़े हैं । 1983 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित सूचना के अनुसार बेरोजगारों का केवल 28.64 प्रतिशत अपने आपको पंजीकृत कराता है । साथ में यह तथ्य भी सामने आया है कि
का केवल 25.57 प्रतिशत बेरोजगार है । रोजगार कार्यालय
जीवित रजिस्टर पर प्रार्थियों/में सितम्बर 1989 में अद्यतन प्राप्त सूचना के आधार पर 320 लाख व्यक्ति पंजीकृत थे और यदि पंजीकृत व्यक्तियों और अपंजीकृत बेरोजगारों सम्बन्धी जानकारी के आधार पर इन ऑकड़ों मे सुधार किया जाये तो 1990 के आरम्भ में 290 लाख व्यक्ति बेरोजगार ऑके जा सकते है ।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ऑकड़े रोजगार कार्यालयों के ऑकड़ों से बेरोजगारी को थोड़ा कम बताते हैं । योजना आयोग ने 1990-2000 के दशक के लिये बेरोजगारी का पूर्वानुमान तैयार करते समय राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ऑकड़ों को तरजीह दी है ।

सारणी-5.14

1990-2000 के लिये बेरोजगारी के प्रक्षेपण

	लाख बेरोजगार व्यक्ति
1- 1990 के आरम्भ में अवशिष्ट बेरोजगार	280
2- 1990-95 के दौरान श्रमशक्ति में नव प्रवेशक	370
आठवीं योजना के लिये कुल बेरोजगार (1+2)	650
3- 1995-2000 के दौरान श्रमशक्ति में नव प्रवेशक	410
4- नवीं योजना के लिये कुल बेरोजगार (2+3)	1060

1990 में 280 लाख अवशिष्ट बेरोजगारों के साथ 1990-95 के दौरान श्रमशक्ति मे 370 लाख व्यक्ति नव प्रवेशक के रुप में शामिल हो जायेंगे । अतः आठवीं योजना के दौरान रोजगार के लिये इच्छुक कुल व्यक्तियों की संख्या 650 लाख होगी । 1995-2000 की अवधि के दौरान यह आशा की जाती है कि 410 लाख अतिरिक्त व्यक्ति श्रमशक्ति के नवप्रवेशकों के रुप में शामिल हो जाएंगे । अतः सन् 2000 तक रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या बढ़कर 1,060 लाख हो जाएगी । अत. योजना आयोग इस नतीजे पर पहुँचता है . 1990 में कुल 3,000 लाख अनुमानित रोजगार मे यदि 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि की जाये तो सभी को रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य आठवीं योजना के अन्त तक प्राप्त किया जा सकता है और यदि इस लक्ष्य को सन् 2000 तक प्राप्त करना हो, तो रोजगार मे 3 प्रतिशत से थोड़ी अधिक वृद्धि करनी होगी।" आठवीं योजना के दिशा निर्देश पत्र में 1990-95 के लिये रोजगार में 3 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य स्वीकार किया है । यदि उचित रोजगार प्रेरित विकास रणनीति अपनायी जाए, तो इस लक्ष्य को पूरा करना विल्कुल संभव है ।

5.4 निर्धनता एवं बेरोजगारी सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन :-

पिछले 1950 और 1960 के दशकों मे आर्थिक विकास के चिन्तकों में कुल राष्ट्रीय आय और वृद्धि के स्थान पर सामाजिक न्याय के साथ वृद्धि महत्वपूर्ण हो गया है । इसके अन्तर्गत वितरणात्मक न्याय को प्राप्त करने के लिए गरीबी निवारण और रोजगार मूलक नीतियॉ व कार्यक्रम चलाये गये हैं । निम्न आय वर्ग और जनसंख्या के निर्धन लोगों के लिये अनेक परियोजनायें तथा कार्यक्रम लागू किये गये है और इन कार्यक्रमों मे महत्वपूर्ण धनराशि व्यय की जा रही है ।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ भारत मे 1970 के दशक में कुछ विशेष निर्धारित लक्ष्य वर्ग के लिये किया गया जिसमें लघु कृषकों के विकास की

एजेन्सी, सीमान्त कृषकों की एजेन्सी तथा कृषि श्रमिक सम्बन्धित है जिससे नई तकनीकी व हरित क्रांति के कारण उत्पन्न असमानता को दूर करके इन निर्धारित लक्ष्यों को प्रापत किया जा सके । समन्वित ग्रामीण विकास योजना जिलों मे इन एजेन्सियों के माध्यम से कृषि परिवारों की आय पर आधारित लाभ प्राप्त करने वालों को अनुदान के आधार पर आगतों के लिये ऋण प्रदान करने की योजना बनायी गयी । इसी के साथ-साथ इसके अन्तर्गत क्षेत्र नियोजन को भी रखा गया पर आई.आर.डी.पी. के मूल्यांकन अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि वास्तविक कार्यक्षेत्र की तुलना में यह मात्र कागजी कार्यवाही रह गयी । इस तरह आई.आर.डी.पी. उत्पादक आदेयों के गरीबी रेखा क्षेत्र के नीचे के लोगों में स्थानान्तरण स्वरोजगार हेतु अनुदानों एवं अग्रिमों तथा लघु एवं सीमान्त कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों के लिये लाभकारी योजनाओं से सम्बन्धित रही । आई.आर.डी.पी. के साथ-साथ गरीबी उन्मूलन सम्बन्धी अन्य सहयोगी योजनायें अतिरिक्त रोजगार हेतु सार्वजनिक कार्यक्रमों द्वारा चलायी गयी जैसे - राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, ग्रामीण भूमिहीन श्रम रोजगार गारण्टी योजना, विशेष रोजगार योजना तथा स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवक प्रशिक्षण योजना इसमें महिला और बाल श्रमिक विकास को भी जोड़ दिया गया है ।[6]

छठी योजना के अन्तर्गत गरीबी उन्मूलन सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्रमों के अनुभव के परिप्रेक्ष्य में सातवीं योजना की नीतियाँ बड़े सावधानीपूर्वक तैयार की गयी हैं । इस योजना में गरीबीय रेखा के नीचे परिवारों की संख्या 1994-95 तक गरीबीय उन्मूलन कार्यक्रमों के द्वारा कुल परिवारों के 10 प्रतिशत तक घटाने की है तथा 1990 तक गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को 28.2 प्रतिशत से घटाने की है।[7] यह कार्यक्रम अब भी निर्धनों में निर्धनतम परिवारों के लिये चल रहा है इसमें नये निर्देशों के अनुसार कटान विन्दु के वार्षिक परिवार आय को 4800/- रूपये रखा गया है यद्यपि छठी योजना मे इन परिवारों की आय को 6400 रूपये रखा गया पर नये निर्देशों के अनुसार ऐसें परिवार को 3500/- से कम वार्षिक आय के हैं उन्हें 4800 रूपये के वार्षिक आय स्तर पर लाने से सम्बन्धित किया जायेगा । 4800 रूपये से 6400 रूपये के वार्षिक आय वाले परिवारों को गरीब परिवारों की श्रेणी में ही रखा गया है पर यह आशा की जाती यहै कि विकास के अन्य कार्यक्रमों में वे अपने प्रयास से ही ऊपर उठ सकेंगे । राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 38वें चक्र के अनुसार विभिन्न आय वाले गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के विभाजन को आगे दी गयी सारणी में दिखाया गया है -

---

6- एस0सी0 जैन, पावर्टी एलीवियेशन प्रोग्राम इन इण्डिया, सम इशुज ऑफ मैक्रो पॉलिसीज, इण्डियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकनॉमिक्स वॉल्यूम 41.

7- आई.आर.डी.पी. गाइडलाइन्स, डिपार्टमेन्ट ऑफ रुरल डेवलप्मेण्ट, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, न्यू डेल्ही, 1986.

सारणी-5.15

वर्ग	आय स्तर	परिवारों की संख्या (करोड़ में)	प्रतिशत
(अ) निर्धनतम	2,265 रु0 से कम	0.99	2.2
(ब) बहुत बहुत निर्धन	2,265 रु0 से 3,500 रु0 तक	6.13	13.8
(स) बुहुत निर्धन	3,500 रु0 से 5,000 रु0 तक	16.93	38.2
(द) निर्धन	5,000 रु0 से 6,400 रु0 तक	20.25	45.8
कुल		44.30	100.0

स्रोत . आई.आर.डी.पी. गाइडलाइन्स, वही पृष्ठ

सातवीं योजना मे आई.आर.डी.पी. के परिप्रेक्ष्य में 3500 रु0 या इससे नीचे की आय परिवारों को सम्मिलित करने का उद्देश्य इन परिवारों को जो अपनी गरीबी रेखा के ऊपर नहीं उठ पाये उन्हें पुन. सहायता प्रदान करना है पर ऐसे परिवार जिन्होंने इस सहायता का गलत प्रयोग किया या उनका गलत परीक्षण किया गया उन्हें दोबारा लाभ से वंचित किया गया । इस सम्बन्ध में यह एक सर्वेक्षण करना महत्वपूर्ण होगा कि छठी योजना में दिये गये सहायता से कितने परिवार गरीबी रेखा को पार नहीं कर पाये। सातवीं योजना के प्रारम्भ में लाभ प्राप्त करने वाले बकाया

परिवार 52 प्रतिशत थे और राष्ट्रीय सर्वेक्षण प्रतिदर्श के अनुसार दूसरी बार सहायता दिये जाने वाले कुल परिवारों की संख्या 4 मिलियन थी ।

सातवीं योजना में इस नीति से सम्बन्धित और महत्वपूर्ण अलगाव दृष्टिगत हैं । प्रथमत इस योजना में प्रति परिवार विनियोग छ. हजार रुपये है जो छठी योजना का दूना है । गरीबी की संकेन्द्रता को ध्यान में रखते हुये प्रति विकास खण्ड के समान राशि निर्धारण को बदल दिया गया है । राज्यों को यह छूट दी गयी है कि वे वित्त का आबण्टन जनपदों व विकास खण्डों में स्वयं करे और इस सम्बन्ध में महिला व बच्चों के लिये लाभ के हिस्से को 30 प्रतिशत किया गया है । जी.वी.के. राव कमेटी के अनुसार विकास खण्ड स्तर पर प्रशासन को मजबूत करने के लिये पंचायतीराज के आधार पर कई महत्वपूर्ण कदम लिये जाने हैं । इस सम्बन्ध में विभिन्न विकासात्मक ऐच्छिक एजेन्सियों के सहयोग को भी लिया गया है । तत्कालीन ट्राइसम परियोजना को विस्तृत रुप में जिला स्तर पर एक समन्वित ग्रामीण प्रशिक्षण व तकनीकी केन्द्र के रुप में स्थापित किया जायेगा । इसमें वर्ग सहयोग के लिये आई. आर. डी. पी. में विशेष जोर दिया गया है जबकि मजदूरी रोजगार योजनाओं पर मौद्रिक व्यय सातवीं योजना में लगभग 60 प्रतिशत बढ़ा दिया गया है जो छठी योजना मे 2620 करोड़ रु0 से 4700 करोड़ रुपये सातवीं योजना में हो गया । इसी तरह एन.आर. ई.पी. तथा अन्य कार्यक्रमों में 612 मिलियन श्रम दिन रोजगार को बढ़ाकर सातवीं योजना में प्रतिवर्ष 490 मिलियन श्रम दिन कर दिया गया है । इन योजनाओं का उद्देश्य विकासात्मक सुविधाओं को बढ़ाना लगातार रोजगार वृद्धि हेतु स्थायी परिसम्पत्तियों व पूंजी को बनाना है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार अवसरों को उत्पन्न करने के लिये कई रोजगार कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं इनमें रोजगार गारण्टी योजना, रोजगार के

लिये खाद्य कार्यक्रम, लघु किसान एजेन्सी, सीमांत किसान व कृषि मजदूर कार्यक्रम, सूखा-क्षेत्र कार्यक्रम आदि । छठी योजना मे यह सुझाव दिया गया कि इस प्रकार बहुत से कार्यक्रम जो ग्राम निर्धनों व बेरोजगारों के लिये बहुविध एजेन्सियों द्वारा चलाये जाते हैं उन्हें समाप्त कर उनका प्रतिस्थापन समग्र देश के लिये एवं समन्वित कार्यक्रम द्वारा किया जाना चाहिये ।

निर्धनता पर सीधा प्रहार करने के लिये यह अनुभव किया गया कि ऐसे कार्यक्रम चलाये जाये जो गरीबों को उत्पादक परिसम्पत्ति या कौशल से सम्पन्न कर दें। ताकि वे इनका प्रयोग लाभदायक ढंग से अधिक आय कमाने के लिये कर सकें । इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये छठी योजना में ग्राम विकास के समन्वित कार्यक्रम की कल्पना की गयी । इसमें उन लक्ष्यित समूहों पर ध्यान केन्द्रित किया गया जिसमें छोटे व सीमान्त किसान, कृषि मजदूर व कारीगर शामिल हैं और जिनके लिये ग्राम क्षेत्रों में आयोजन की आवश्यकता है । इस प्रकार समग्र विकास विधि के आधीन समन्वित ग्राम विकास की कल्पना अनिवार्यत एक निर्धनता विरोधी कार्यक्रम के रुप में की गयी है । यह कार्यक्रम देश के 5011 विकास खण्डों में 2 अक्टूबर 1980 को प्रारम्भ किया गया । पाँच वर्षों की अवधि के दौरान प्रत्येक विकास खण्ड में 600 गरीब परिवारों की सहायता करने का निश्चय किया गया । इस प्रकार 150 लाख परिवारों जिनमें 750 लाख निर्धनता रेखा के नीचे थे को लाभ पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया । यह कार्यक्रम सहायताओं की एक क्रमिक योजना पर आधारित है जिसके अधीन पूंजी लागत को 25 प्रतिशत छोटे किसानों को तथा 33.3 प्रतिशत सीमान्त किसानो , कृषि मजदूरों तथा ग्रामीण कारीगरों को तथा 50 प्रतिशत जनजाति लाभ प्राप्त कर्ताओं को सहायता के रुप में प्रदान किया जायेगा । अन्त्योदय सिद्धान्त का अनुसरण करते हुये कार्यक्रम का लक्ष्य सबसे पहले सबसे गरीब परिवारों तक पहुँचाना है और बाद में क्रमश. अन्य गरीब वर्गों तक लाभ पहुँचाना है । छठी योजना के दौरान 1661 करोड़ रुपये अनुदान के रुप में उपलब्ध कराये गये और 3102 करोड़ रुपये सावधि ऋण के रुप में । इस प्रकार कुल

मिलाकर 4763 करोड़ रुपये का विनियोग किया गया । कार्यक्रम का सराहनीय लक्षण यह है कि प्रति परिवार विनियोग जो 1980-81 में 1682 रुपये था उसे बढ़ाकर 1984-85 में 3339 रुपये कर दिया गया । सातवीं योजना के दौरान समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धन वर्गों को 2273 करोड़ रुपये की सहायता उपलब्ध करायी गयी । इसके अतिरिक्त 3682 करोड़ रुपये वित्तीय सस्थाओं से उधार के रुप में उपलब्ध कराये गये । इनका उद्देश्य गरीब वर्ग की आय उपार्जन क्षमता को बढ़ाना था ।

छठी योजना में समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के साथ-साथ राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम भी चलाया गया । रोजगार के लिये खाद्य कार्यक्रम को पुनर्गठित करके इसका नाम राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम रखा गया और इसे 1980 से प्रारम्भ किया गया । इसके अन्तर्गत 3000 से 4000 लाख मानव दिन का अतिरिक्त प्रतिवर्ष का रोजगार कायम करने का लक्ष्य रखा गया जिससे बेरोजगारी व अल्परोजगार को दूर किया जा सके । इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण अर्थसंरचना को मजबूत करने के लिये सामुदायिक परिसम्पदाओं का निर्माण करना है । इसके अन्तर्गत पीने के लिये पानी के कुएँ, सामुदायिक सिंचाई कुएँ, ग्राम तालाब, छोटी सिंचाई परियोजनायें, ग्रामीण सड़के, स्कूल बालवाड़ी भवन, पचायत आदि आते है । राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम की प्रगति से पता चला है कि छठी योजना के दौरान 1620 करोड़ रुपये के प्रावधान के विरुद्ध केन्द्र तथा राज्य सरकारों का वास्तविक व्यय 1834 करोड़ रुपये था किन्तु खाद्यान्नों के प्रयोग में गिरावट आयी जिसके कई कारण थे। इसको ध्यान में रखते हुये सरकार ने 1984 में खाद्यान्नों का वितरण अनुदानित कीमतों पर आरम्भ कर दिया । छठी योजना के दौरान इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 15,000 से 20,000 लाख मानव दिन कुल रोजगार जनन के लक्ष्य के विरुद्ध वास्तविक रुप में 17,750 लाख मानव दिन रोजगार कायम किया गया । 1980-81 से 1987-88 के

बीच राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम की प्रगति को निम्न सारणी में देखा जा सकता है -

सारणी-5.16

राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम की प्रगति

वर्ष	नकद राशि (करोड़ रुपये)	खाद्यान्न (लाख टन)	जनित रोजगार (लाख मानव दिन)
1980-81	225	13.34	4,140
1981-82	319	2.33	3,540
1982-83	396	1.72	3,510
1983-84	393	1.47	3,030
1984-85	501	1.71	3,530
	1834	20.57	17,750
1985-86	532	5.8	3,164
1986-87	718	13.2	3,959
1987-88	788	11.0	3,708
1985-86 से 1987-88	2038	30.0	10,831

इस कार्यक्रम के आधीन चलायी गयी परियोजनाओं की मध्यावधि आलोचनात्मक समीक्षा में यह उल्लेख किया गया कि राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा कार्यान्वित परियोजनाओं का प्राय उन परिवारों की आवश्यकताओं के साथ समन्वय नहीं किया जा सका जिनकी पहचान सहायता के लिये समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अधीन की गयी । सरकारी विभाग राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्यक्रम को विकास के सामान्य कार्यक्रम का एक अंग मानते हैं और इसे एक सामान्य विकास क्रिया के रुप में देखते हैं जबकि आयोजकों में इसका परिकलन रोजगार जनन के एक अतिरिक्त कार्यक्रम के रुप में किया था । आमतौर पर भवन निर्माण के लिये सामग्री की अधिक मात्रा प्रयोग की प्रवृत्ति रहती है, यह राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्यक्रम के मूल उद्देश्यों के विरुद्ध है । इस कार्यक्रम का उद्देश्य सामग्री व मानव शक्ति के रुप में स्थानीय संसाधनों का प्रयोग है ताकि अधिक रोजगार कायम किया जा सके ।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार जुटाने उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करने तथा ग्रामीण जीवन को बेहतर बनाने के उद्देश्य से 1983 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया । रोजगार मे भूमिहीन मजदूरों, महिलाओं, अनुसूचित जातियों व जनजातियों को प्राथमिकता दी जाती है । इस कार्यक्रम का शत प्रतिशत व्यय केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध कराया जाता है । राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों को निर्धारित मापदण्ड के आधार पर साधन आबण्टित किये जाते हैं जिसमें 50 प्रतिशत महत्व खेतिहर मजदूरों, सीमान्त कृषकों तथा सीमान्त मजदूरों की संख्या के आधार पर तथा शेष 50 प्रतिशत महत्व निर्धनता के आधार पर दिया जाता है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ठेकेदारों को रखने की अनुमति नहीं है । सातवीं योजना के पहले तीन वर्षों के दौरान इस कार्यक्रम की प्रगति से पता चलता है कि इस पर 1734 करोड़ रुपये खर्च किये गये और इसमें 8580 लाख मानव दिन रोजगार कायम किया गया । प्रत्येक मानव दिन रोजगार के लिये 1985-86 मे 12.5 किग्रा. अनाज उपलब्ध कराया गया

जो बढ़कर 1986-87 में 2.88 कग्रा. हो गया । ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम की प्रगति को निम्न सारणी में देखा जा सकता है -

सारणी-5.17

ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम की प्रगति

वर्ष	राशि का उपयोग (करोड़ रुपये)	वितरित खाद्यान्न (लाख टन)	जनित रोजगार (लाख दिन)	प्रति मानव दिन प्रति व्यक्त अनाज (किलोग्राम)
1985-86	453.2	3.1	2476	1.25
1986-87	635.9	8.8	3061	2.88
1987-88	653.5	8.2	3041	2.60
कुल	1742.6	20.1	8578	

इसमे सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम सही दिशा में कदम है और इसकी सहायता के लिये एक नया ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम चालू किया गया है परन्तु जब तक रोजगार के अवसरों को बढ़ाना आयोजन का प्रथम उद्देश्य नहीं बनाया जाता तब तक बेरोजगारी और अल्प रोजगार की समस्या का समाधान होना कठिन है ।

1989-90 के केन्द्रीय बजट के पश्चात् जवाहर रोजगार योजना का प्रस्ताव स्वीकार किया गया । इस योजना का उद्देश्य ग्राम क्षेत्रों में अधिक रोजगार प्राप्त करना है ताकि हमारे समाज के कमजोर वर्गों को लाभ प्राप्त हो सके । इसके अन्तर्गत

पूर्वत चल रही सभी मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को जवाहर रोजगार योजना में विलय कर दिया गया । इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम को मिलाकर एक बड़े छत्र के अधीन कर दिया है जिसे जवाहर रोजगार योजना कहा गया है । जवाहर रोजगार योजना के प्रमुख लक्षणों को निम्न रुप में स्पष्ट किया जा सकता है -

1- राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम के सात वर्षों तक लगातार चलाये जाने के कारण ग्राम रोजगार प्रोग्राम देश भर में 55 प्रतिशत पंचायतों तक ही पहुँच पाये हैं । जवाहर रोजगार योजना का लक्ष्य प्रत्येक पंचाय तक पहुँचना है ।

2- इस योजना का प्रशासन ग्राम पंचायतों के आधीन होगा और इस प्रकार भारत में रहने वाले 440 लाख परिवार जो निर्धनता रेखा के नीचे हैं, ग्राम रोजगार कार्यक्रम से लाभ उठा सकेंगे ।

3- जबकि पहले चल रहे हैं ग्राम रोजगार कार्यक्रमों में केन्द्र एवं राज्यीय सरकारों द्वारा दी गई सहायता का आधार 50 50 था, वहाँ जवाहर योजना योजना में यह तय किया गया है कि केन्द्रीय सहायता द्वारा 80 प्रतिशत वित्त जुटाया जायेगा और राज्यीय सरकारों का भाग केवल 20 प्रतिशत होगा और अपने पहले वर्ष के दौरान (1989-90) केन्द्र सरकार द्वारा जवाहर रोजगार योजना के लिये 2600 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है ।

4- राज्यों में वित्त के आबण्टन का आधार निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली

जनसंख्या का अनुपात होगा ।

5- इसके बाद जिला स्तर पर साधन के आबण्टन के लिये पिछड़ेपन की कसौटियों को आधार बनाया जायेगा । इनमें है जिले की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का भाग, कुल श्रम में कृषि मजदूरों का अनुपात और कृषि उत्पादिता का स्तर किन्तु भौगोलिक दृष्टि से विशेष पहचान वाले क्षेत्रों अर्थात् पहाड़ियों, मरुस्थलों एव द्वीपों की आवश्यकताओं की पूर्ति का विशेष ध्यान रखा जाएगा ।

6- जवाहर रोजगार योजना ग्राम पंचायतों को अपनी रोजगार योजनायें चलाने के लिये पर्याप्त मात्रा मे साधन उपलब्ध करायेगी । औसत रुप में ग्राम पंचायत जिसकी जनसंख्या 3000 से 4000 के बीच है प्रतिवर्ष 80,000 रुपये से 100,000 रुपये तक राशि प्राप्त करेगी ताकि यह योजना को कार्यान्वित कर सके । इसके तहत गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के कम से कम एक सदस्य को 50 से 100 दिन के रोजगार की गारण्टी होगी ।

7- योजना का मुख्य लक्ष्ण यह है कि जनित रोजगार का 30 प्रतिशत स्त्रियों के लिये आरक्षित किया जायेगा । इसके अतिरिक्त सरकार खानाबदोश कबीलों के लिये रोजगार की व्यवस्था भी करेगी ।

जवाहर रोजगार योजना ग्रामीण निर्धनों के लिये अधिक रोजगार उपलब्ध कराने की दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय रही है और यह बात भी महत्वपूर्ण रही है कि

केन्द्र इस योजना के लिये 80 प्रतिशत वित्त प्रबन्ध करेगा और राज्यों को केवल 20 प्रतिशत वित्त प्रबन्ध करना होगा । इससे राज्यों के लिये इसका कार्यक्षेत्र बढ़ाना संभव हो सकेगा ताकि अन्तत. 100 प्रतिशत पंचायतें इसके आधीन लायी जा सकेंगी । इसमें स्त्रियों के लिये 30 प्रतिशत रोजगार के आरक्षण का प्रावधान भी निहित है किन्तु आलोचकों ने कुछ विचार प्रस्तुत किये हैं कि इस योजना का समग्र प्रशासन एवं कार्यान्वयन ग्राम पंचायतों के आधीन कर दिया गया है । सरकार यह आशा करती है कि ऐसा करने से इसके लाभ भूतकाल की तुलना में कही अधिक मात्रा में लोगों तक पहुँचने लगेंगे पर वास्तविकता यह रही है कि इस कार्यक्रम के लाभों का बहुत बड़ा भाग ठेकेदारों व विचौलियों को होने लगा है । एक रोमांचकारी वक्तव्य मे प्रधानमंत्री ने कहा कि प्रत्येक लाभकर्ता को यह मालूम होगा कि उसे कितनी मजदूरी मिल रही है और दूसरों को क्या प्राप्त हो रहा है तथा उसे कितने दिनों का कार्य मिलता है और अन्य लोगों को कितने दिन का । इससे ऐसा जान पड़ता है कि पचायतों को कार्य सौंपने की अति उत्साही लहर मे सरकार पहले कार्यक्रम सम्बन्धी अनुदान की उपलब्धियों को भुला बैठी है । प्रो0 इन्दिरा हिरावे ने गुजरात के ग्राम रोजगार कार्यक्रमों के निर्धन वर्गों के प्रभाव के अध्ययन के आधार पर यह सुझाव दिया कि गरीबों के लिये कार्यक्रमों के क्रियान्वयन मे ग्राम-पचायतों को कोई कार्यभार सौंपना नहीं चाहिये । इससे उनका हस्तक्षेप ही कम नहीं होता बल्कि इससे विकास, प्रशासन व बैंक अधिकारी अधिक स्वतन्त्र रुप से कार्य करेंगे । उससे कहीं अच्छा रास्ता तो यह होता कि विकास प्रशासन व पंचायतों के प्रतिनिधियों का एक न्यायोचित मिश्रण किया जाता है ताकि एक रोक व संतुलन प्रणाली कायम हो जाती । दूसरे तकनीकी कर्मचारियों के अभाव में योजनाओं के विस्तृत ब्यौरे तैयार करना संभव नहीं । आलोचक ऐसा सोचते हैं कि पंचायतों के हाथ में अधिक धनराशि से अल्पकाल में तो लाभ हो सकता है पर दीर्घकाल मे सरपंच वोट बैंक होने के नाते सत्तारुढ़ दल को पुन. सत्ता

में ला सकेंगे पर यह आशा करना कि गरीबी हटाओ कार्यक्रम में इससे अधिक लाभ प्राप्त होगा यह पूरी कोरी कल्पना है । तीसरे इस योजना में एक वक्त में 50 से 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा जबकि पहले चल रही योजनाओं में 180 दिन का वर्ष भर में रोजगार दिलाया जाता था । इसी के साथ-साथ पहले ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी योजना के आधीन 100 प्रतिशत वित्त केन्द्र सरकार द्वारा जुटाया जाता था जो जवाहर योजना के अन्तर्गत कम करके 80 प्रतिशत कर दिया गया । चूँकि उपर्युक्त कार्यक्रम आकार में बड़ा है इसलिये राज्य सरकारों को शुद्ध राहत नाममात्र की ही होगी । अत केन्द्र सरकार के इस दावे मे कोई बल नहीं है कि वह राज्य सरकारों को भारी राहत देगी । निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि जवाहर रोजगार योजना जो चुनाव वर्ष मे लागू की गयी वह अपने स्वीकृत सामाजिक उद्देश्यों के अतिरिक्त राजनैतिक उद्देश्यों से की गयी है । अत. जब तक इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन न किये जायेंगे संसाधनों के अपव्यय में वृद्धि का खतरा बना रहेगा।

राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ने रोजगार कार्यक्रमों के सम्बन्ध में काम के अधिकार को संविधान के मूल सिद्धान्तों एवं अधिकारों की सूची में शामिल करने का प्रस्ताव किया गया । यह अत्यंत आवश्यक समझा गया कि आयोजन का बल उत्पादन प्रेरित आयोजन के स्थान पर रोजगार प्रेरित आयोजन की ओर मोड़ा जाये किन्तु मूल अधिकार के रुप में काम के अधिकार की गभीरता से जॉच करना आवश्यक है । सर्वप्रथम सभी मूल अधिकार न्याय योग्य हैं और कोई भी नागरिक काम का अधिकार संविधान में शामिल होने के पश्चात् न्यायालय में याचिका देकर क्षतिपूर्ति की मॉग कर सकता है । दूसरे बहुत से स्वैच्छिक संगठन व राजनैतिक कार्यकर्ता बेरोजगारों के लिये राहत प्राप्त करने के लिये विधिकक्ष कायम कर सकते हैं । तीसरे बेरोजगारी भत्ते की मात्रा न्यायालयों में वाद-विवाद का विषय बन सकती है । अब प्रश्न उठता है कि बेरोजगारी से ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता के लिये कितनी धनराशि रोजगार

कार्यालयों के प्रबन्ध में किया जाये । रोजगार कार्यालय के ऑकड़ों से पता चलता है कि 1986 में शहरी क्षेत्र मे रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक पंजीकृत व्यक्तियों की सख्ंया 1.31 लाख थी । बेरोजगार नौकरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की सख्या मे लगातार वृद्धि होती रही है । बेरोजगारी भत्ता प्राप्त करने की उम्मीद से बहुत से ऐसे व्यक्ति जो अपना नाम रोजगार कार्यालयों मे दर्ज. कराते थे अब वे पजीकरण करने लगेंगे ताकि उन्हें बेरोजगारी संबंधी राहत तथा क्षतिपूर्ति प्राप्त हो सके । अपनी नवम्बर 18,1987 की यह सूचना के अनुसार सरकार ने विभिन्न वर्गों के लिये निम्नलिखित मजदूरी दर स्वीकृत की है -

	प्रति मास	प्रति दिन
अकुशल श्रमिक	रु0 489	रु0 18.80
अर्द्धकुशल श्रमिक	रु0 552	रु0 21.25
कुशल श्रमिक	रु0 651	रु0 25.10
मैट्रिक से कम शिक्षा प्राप्त	रु0 563	रु0 21.60
मैट्रिक और स्नातक से कम	रु0 661	रु0 25.40
स्नातक और इससे ऊपर	रु0 781	रु0 30.10

अध्ययन से पता चला है कि रोजगार कार्यालयों के साथ पंजीकृत व्यक्तियों में 25 प्रतिशत ऐसे हैं जो पहले से रोजगार प्राप्त हैं और परिणामत. इनकी सहायता से और बेहतर रोजगार प्राप्त करना चाहते हैं । यदि हम अपने अनुमान में 25 प्रतिशत की कटौती कर दें अर्थात् 5678 करोड़ रुपये कर दे तो भी बेरोजगारी सहायता के रुप में शुद्ध भार 1709 करोड़ रु0 रहता है । राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें चक्र द्वारा उपलब्ध करायी गयी सूचना के आधार पर योजना आयोग ने यह अनुमान लगाया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 1984-85 में 2220 करोड़ व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत

कर रहे है । विभिन्न राज्यों मे ग्रामीण क्षेत्रों मे निर्धारित औसत न्यूनतम मजदूरी 12 रुपये प्रतिदिन मानी जा सकती है और परिवार के कम से कम एक सदस्य को 200 दिन का रोजगार दिलाना होगा । ऐसी परिस्थिति मे रोजगार दिलाने के उद्देश्य से 10,656 करोड़ रुपये के कुल प्रावधान की आवश्यकता होगी ।

इस विश्लेषण से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सरकार के लिये बेरोजगारी भत्ता देना वाछनीय है या विनियोग के ऐसे ढाँचे को प्रोत्साहित करना होगा जो अधिक रोजगार को प्रोन्नत करे ताकि एक दशक के दौरान हम पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त कर सकें । यदि काम के अधिकार को मूल अधिकार के रुप में निश्चित कर दिया जाता है तो केन्द्र और राज्य सरकारों के राजस्व का 43 प्रतिशत बेरोजगारी भत्ते के लिये सुनिश्चित हो जायेगा । राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने यह निर्णय लिया है कि रोजगार का अधिकार केवल ग्राम क्षेत्रों में किया जायेगा । जिन व्यक्तियों को सरकार रोजगार नहीं दे पायेगी उन्हें दैनिक मजदूरी का 1/3 अर्थात् पॅंच रुपये प्रतिदिन दिये जायेंगे । वस्तुत. यह देखा जाये तो ग्रामीण क्षेत्रों में यह गरीबों के लिये रोजगार देने का मजाक है ।

5.5 रोजगार प्रेरित विकास रणनीति :-

अर्थशास्त्रियों और अधिकांश विशेषज्ञों का यह मत है कि भारत जैसे अल्पविकसित देश के लिये बेरोजगारी व अल्प रोजगार की चुनौती का सामना करने के लिये औद्योगिक विकास की रोजगार प्रेरित रणनीति का निर्माण इसका सर्वोत्तम उत्तर है । ऐसी परिस्थिति में रोजगार प्रेरित रणनीति की रुपरेखा तैयार करना अत्यन्त लाभदायक है किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि भारतीय अनुभव में अल्पकाल के दौरान उत्पादन की वृद्धि दर तथा रोजगार की वृद्धि दर के बीच कोई साधारण सम्बन्ध नहीं है। चाहे हमेशा ही यह मान्यता की गयी हो कि आर्थिक विकास

के परिणाम स्वरुप उत्पादन मे भी वृद्धि होगी किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के ऑकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि उत्पादन व रोजगार मे वृद्धि के बीच सहसम्बन्ध का अभाव है । अत विनियोग की दर व तकनीकी के चुनाव रोजगार की वृद्धि दर निर्धारित करते है । ऐसा होने की स्थिति मे विनियोग की दर व ढॉचे मे परिवर्तन के साथ तकनीकी चुनाव मे परिवर्तन के साथ रोजगार की वृद्धि दर मे भी परिवर्तन होता है । भारतीय अर्थव्यवस्था मे रोजगार लोच सम्बन्धी ऑकड़ों से पता चलता है कि रोजगार मे 4 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करने के लिये सकल देशीय उत्पाद में 10.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि प्राप्त करनी होगी जोकि पूर्णतया अवास्तविक है । अतः आवश्यक है कि निम्नलिखित दशाओं में विकास प्रक्रिया को मोड़ा जाये ताकि देश में रोजगार अवसरों को तेजी से बढ़ावा मिले तथा सकल देशीय उत्पाद में 6 % की वृद्धि दर के साथ देश में सन् 2000 तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें ।

(1) आर्थिक सवृद्धि मुख्यत उन क्षेत्रों में की जानी चाहिये जिनमें अधिक रोजगार क्षमता बने रहने की सभावना है ।

(2) समग्र पूर्ति व मॉग के संतुलन के सीमाबन्धन को ध्यान में रखते हुये प्रत्येक मुख्य क्षेत्र में ऐसी वस्तुओं और उत्पादन प्रणाली को प्राथमिकता देनी होगी जिसमें रोजगार तीव्रता अधिक हो ।

(3) विभिन्न उत्पादन/प्रणालियों मे जहॉ कहीं भी सभव हो ऐसी उत्पादन तकनीकी को प्रोत्साहन देना होगा जिनमे पूंजी की प्रति इकाई के लिये अधिक रोजगार प्राप्त हों ।

(4) सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग को रोजगार प्रोत्साहन क्षेत्रों में प्रेरित करने के

अतिरिक्त राजकोषीय एवं उधार नीतियों का प्रयोग और सरकारी क्षेत्र के विनियोग को इस प्रकार प्रभावित करने के लिये करना होगा कि इससे ऐसे क्षेत्रों एवं तकनीकी को बढ़ावा मिले जिससे रोजगार क्षमता तेजी से बढ़ सकें।

इस समग्र ढाँचे के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में रणनीति के मुख्य अंग का विवरण दिया जा सकता है । कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का जहाँ तक प्रश्न है वहाँ उच्च उत्पादन वृद्धि के क्षेत्रों में रोजगार उत्पाद अनुपात में गिरने की प्रवृत्ति पायी गयी है । विकास की जो रणनीति पिछड़े निर्धन क्षेत्र की वृद्धि दर को त्वरित करना चाहती है उसे कृषि मे श्रम की खपत में कुल गिरावट की प्रवृत्ति को बदलना होगा और इसके साथ इन क्षेत्रों में ग्रामीण श्रमिकों के औसत आय स्तर को उन्नत करना होगा । ये आठ राज्य है - आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बगाल । इन राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे 80 प्रतिशत जनसंख्या रहती है और देश के कुल बेरोजगारों का इसमे 70 प्रतिशत है । कृषि में किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि सिंचित क्षेत्र मे 1 प्रतिशत की वृद्धि के परिणामस्वरुप रोजगार में 0.38 प्रतिशत की वृद्धि होती है । अत रोजगार के साथ विकास की रणनीति की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि देश के मंद वृद्धि वाले क्षेत्रों में सिंचाई का विस्तार किया जाये और यह कार्य विशेषकर लघु सिंचाई की परियोजना द्वारा किया जाये । अधिक मूल्य और अधिक श्रम प्रयोग वाली फसलों को प्रोत्साहन देना चाहिये । इसीके साथ-साथ अन्य सम्बन्धित कृषि क्रियाये जिनमें अधिक रोजगार जनन होता है वे पशु-पालन एवं मत्स्य पालन है । कृषि पर राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रयोग किये गये मानदण्ड द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि पशु पालन एवं मत्स्य पालन क्षेत्रों मे 1990-95 की अवधि द्वारा 615 लाख व्यक्ति वर्ष रोजगार कायम किया जायेगा । इस कारण योजना आयोग का कहना है कि यदि क्षेत्रीय दृष्टि से विस्तृत लगभग 4 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ अधिक मूल्य वाली फसलों एवं अन्य नकद

फसलों के पक्ष में खेती को बढ़ावा दिया जाये और इसके अतिरिक्त पशुपालन में 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा जाये तो कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में रोजगार को 2.5 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की जा सकती है ।

ग्रामीण क्षेत्रों मे बेराजगारी व अल्परोजगारी दूर करने के लिये ग्रामीण औद्योगीकरण के कार्यक्रम प्रारम्भ करने चाहिये । इस सम्बन्ध मे मूल प्रश्न ऐसे उद्योगों को निर्धारित करने का है जो रोजगार की दृष्टि से प्रारम्भ किये जाने चाहिये । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ग्रामीण क्षेत्रों के औद्योगिक आर्थक सर्वेक्षण किये जाने चाहिये ताकि विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं एव क्षमताओं का अनुमान लगाया जा सके । ग्रामीण औद्योगीकरण कार्यक्रम में कृषि उत्पाद को उत्पादन केन्द्र के पास विद्यमान करने का विचार है ताकि ग्रामीण श्रम को रोजगार मिले । इसीके साथ-साथ सहयोगी उद्योगों को भी ग्राम क्षेत्रों या उनके आस-पास ही कायम किये जाने चाहिये। ग्रामीण औद्योगीकरण के ऐसे कार्यक्रम के लिये बहुत से प्रशासनिक, तकनीकी, वित्तीय एवं संगठनात्मक उपाय करने आवश्यक हैं । ग्रामीण औद्योगीकरण कार्यक्रम को निम्नलिखित प्रकार के उद्योगों की स्थापना करने की व्यावहारिकता पर विचार करना चाहिये ।

1- बहुत से लोगों को पूर्वकालिक रोजगार दिलाने के लिये अनेक औद्योगिक इकाइयाँ कायम की जा सकती है । ये किसानों व उनके परिवारों को अंशकालिक रोजगार भी उपलब्ध करा सकते हैं । इस प्रकार के उद्योगों के कुछ उदाहरण हैं - चावल की मड़ाई, रुई के बिनौले निकालना, दूध एवं दूध से बनी वस्तुयें तैयार करना, पटसन से निर्मित वस्तुयें तथा चीनी का उत्पादन ।

2- बहुत से व्यक्तियों को फलों एवं सब्जियों की पैकिंग, सरक्षण, मुरब्बे, अचार तथा अन्य खाद्य पदार्थों के बनाने के लिये रोजगार दिया जाता है ।

3- बहुत से कृषि उपउत्पादों को विनिर्माण उद्योग के लिये कच्चे माल के रुप मे प्रयोग करने के लिये लाया जा सकता है । इस प्रकार के उपउत्पादों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं - शीरा और खोई, एल्कोहल, चावल की भूसी का ईंधन मे प्रयोग, चावल से शराब बनाने तथा चावल के चोकर से तेल बनाना आदि । ऐसे उद्योग ग्राम उद्योगों मे रोजगार कायम करने के लिये उपयुक्त है और इनके विकास की काफी सभावना है ।

4- कुटीर तथा ग्रामीण हस्तशिल्पों के विकास के लिये भारी क्षेत्र विद्यमान हैं । अब भी ग्रामीण हस्तशिल्प से तैयार की गयी वस्तुओं की विदेशों में बहुत माँग है । इन ग्रामीण उद्योग द्वारा केवल उपभोक्ता वस्तुये ही नहीं बनायी जानी चाहिये बल्कि बहुत से पोषक तथा सहयोगी उद्योग ऐसी वस्तुओं का निर्माण कर सकते हैं जो अन्तत बड़े पैमाने के क्षेत्र में उत्पन्न की जाती है ।

जहाँ तक औद्योगिक क्षेत्र का सम्बन्ध है भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया दूसरी पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ की गयी और इस योजना द्वारा निर्धारित पथ पर देश लगभग तीन दशक तक चलता रहा पर क्या इस प्रक्रिया से उत्पादन की वृद्धि के साथ रोजगार की भी उतनी ही तीव्र वृद्धि हुई है । पहली बात यह है कि विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादन रोजगार की तुलना में अधिक तीव्र गति से बढ़ा है । दूसरे हल्के उद्योगों की तुलना मे विनियोग का ढाँचा भारी उद्योगों के पक्ष मे परिवर्तित हुआ है । परिणामत भारी उद्योग क्षेत्र धातु, खनिज उत्पाद, मूल धातु उद्योग तथा रसायन व पेट्रो

रसायन की वृद्धि हल्के उद्योगों की तुलना मे कहीं तेज गति से हुई है । हल्के उद्योग अर्थात् सूती वस्त्र, जूता उद्योग, लकड़ी की वस्तुये, खाद्य एवं तम्बाकू उद्योग अपेक्षाकृत अवरुद्ध रहे हैं । भारत के बारे मे अनुभवजन्य प्रमाण से पता चलता है कि विनियोग क्षेत्र मे रोजगार वृद्धि मुख्यत असगठित क्षेत्र की तीव्र वृद्धि का परिणाम है । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि विनिर्माण क्षेत्र में कुटीर तथा लघु स्तर उद्योगों द्वारा मूल्य वृद्धि में योगदान 42 प्रतिशत था किन्तु इनका रोजगार मे भार 80 प्रतिशत था । स्पष्ट है कि रोजगार प्रेरित रणनीति के लिये यह वांछनीय होगा कि 1990 से 2000 तक के दशक में उत्पादन का अधिकतर भाग इस क्षेत्र से प्राप्त किया जाये । इस क्षेत्र की उत्पादिता बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि तकनीकी उन्नति के कार्यक्रम चलाये जाये भले ही इनके कारण प्रति इकाई उत्पाद के लिये रोजगार मे कुछ गिरावट आये । इससे यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि सभी लघु स्तर इकाइयॉ श्रम प्रधान होती हैं और सभी वृहत स्तर इकाइयॉ पूंजी प्रधान । पूंजी या श्रम की तीव्रता नियुक्त पूंजी के आकार पर निर्भर करती है । इस तरह सारांश यह है कि विनियोग के ढॉचे को प्रोत्साहन की योजना को इस प्रकार मोड़ा जाये कि इससे अधिक रोजगार क्षमता वाले एवं कम पूंजी उत्पाद अनुपात वाले उद्योगों से अधिक उत्पादन किया जाये और यह नीति सगठित व असंगठित दोनों क्षेत्रों में लागू होनी चाहिये ।

जहॉ तक सेवा क्षेत्र का सम्बन्ध है इसमें रोजगार क्षमता वाले दो क्षेत्र हैं - सड़क निर्माण व गृह निर्माण । आज देश के 31 प्रतिशत गॉव जिनकी जनसंख्या 1000 से 1500 के बीच है, और 10 प्रतिशत बड़े ग्राम ऐसे हैं जो फीडर रोड से मिले हुये नहीं है । यदि 8 लाख किलोमीटर सड़क निर्माण का प्रोग्राम चलाया जाता है तो इसके परिणामस्वरुप 228 लाख व्यक्ति वर्ष रोजगार कायम हो सकेगा ।

ग्रामीण और शहरी गरीबों के लिये गृह निर्माण का भारी कार्यक्रम तैयार करना चाहिये । इसके लिए गरीबों को न केवल भूमि के रुप में जगहें देनी होंगी,

बल्कि उन्हें गृह निर्माण के लिये पर्याप्त ससाधन भी उपलब्ध कराने चाहिये । गरीबों के लिये उधार की उदार रुप में व्यवस्था करने से भी बहुत बड़ी मात्रा में रोजगार कायम किया जा सकता है ।

डिस्पेसरियों और हस्पतालों की संख्या बढ़ाकर उन्हे आधुनिक सुविधाओं से लैस करके ग्राम स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास द्वारा 2.7 लाख अतिरिक्त नौकरियाँ 1989-90 के अंत तक कायम की जा सकती है । इनमें 10,000 डाक्टर और शेष 2.6 लाख पैरा चिकित्सक हैं । इस प्रकार ग्राम स्वास्थ्य अध: संरचना द्वारा रोजगार में और अतिरिक्त विस्तार की गुंजाइश है ।

निष्कर्ष यह है कि अधिक उत्पादन एवं अधिक रोजगार के लक्ष्यों का समन्वय करने के लिये यह आवश्यक है कि औद्योगीकरण की पूंजी तीव्रता कम करनी होगी । इसके लिये एक अधिक श्रम - प्रधान उत्पाद मिश्रण और अधिक श्रम प्रधान तकनालॉजी मिश्रण की ओर अर्थव्यवस्था को जानबूझकर परिवर्तित करना होगा । औद्योगीकरण का ऐसा ढॉचा व्यवहार्य है और यह कुशलता की दृष्टि से युक्तिसगत है। हमारे पास एक ओर बहुत अधिक पूंजी प्रधान तकनालॉजी है दूसरी ओर बहुत अधिक श्रम प्रधान तकनालॉजी भी है । इन दो सीमाओं के बीच बहुत सी अन्तर्वर्ती तकनालाजी विद्यमान है जिसमे उत्पादन प्रक्रिया में कई साधन अनुपात पाये जाते हैं । ये अन्तर्वर्ती तकनालाजी की विभिन्न किस्में एक ओर तो आधुनिकीकरण के लिये बड़ा क्षेत्र प्रस्तुत करती हैं और दूसरी ओर औद्योगीकरण के प्रभाव से अधिकतम लाभ उठाने का उपाय है । औद्योगीकरण के ऐसे ढॉचे के लिये श्रम प्रधान तकनीकों का चयन आवश्यक है जो प्रति श्रमिक कम पूंजी और प्रति उत्पादन इकाई के लिये कम पूंजी से संयुक्त लाभ प्राप्त कर सकता है ।

इस बात पर बल देना आवश्यक है कि औद्योगीकरण का ऐसा ढॉचा भारत जैसे विकासमान देश के लिये अत्यंत उपयुक्त है । प्रथम, औद्योगीकरण के पूंजी प्रधान ढॉचे के लिये औद्योगीकृत देशों से अत्यधिक महगी और परिमार्जित मशीनों एवं यन्त्रों का आयात करना पड़ता है । इसके विरुद्ध, श्रम प्रधान ढॉचा सीमित विदेशी मुद्रा साधनों पर कम दबाव डालता है । इसके साथ यह भी सत्य है कि इन उद्योगों के परिणामस्वरुप मशीनरी के प्रतिस्थापन और रखरखाव के लिये सीमित रुप में निर्भर करना होगा । दूसरे श्रम प्रधान और हल्के उद्योगों की सापेक्षत अल्प परिपाक अवधि होने के कारण रोजगार एवं उत्पादन दोनों ही प्रकार से अधिक वृद्धि दर प्राप्त की जा सकती है । अत. कल्याण :को अधिकतम करने की दृष्टि से इस प्रकार की नीति सराहनीय है । तीसरे, इस प्रकार के औद्योगीकरण के ढॉचे द्वारा हम उद्योगों के कुछ महानगरों या औद्योगिक क्षेत्र तक ही संकेन्द्रण की कमजोरी को दूर कर सकते हैं । अत इसके स्थानीय भौतिक संसाधनों एवं मानवीय योग्यताओं का प्रयोग करने की दृष्टि से बहुत विस्तृत प्रभाव पड़ते हैं ।

डा0 जे0डी0 सेठी, सदस्य योजना आयोग ने यह स्पष्ट किया है कि यदि आठवीं योजना के दौरान 6 प्रतिशत वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा जाये, तो रोजगार की वृद्धि दर को 3 प्रतिशत तक बढ़ाना सभव हो सकेगा । यह बात विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार की लोच की मान्यता को दृष्टि मे रखकर कही गयी है । इसे तालिका 5.17 में प्रदर्शित किया गया है -

सारणी-5.17

1990-2000 के दशक के लिये रोजगार और सकल देशीय उत्पाद के लक्ष्य

	सकल देशीय उत्पाद	रोजगार लोच	प्रत्याशित रोजगार की वृद्धि दर
	(1)	(2)	3= (1)× (2)
1- कृषि	4.00	0.65	2.60
2- खनन एवं खदान	9.00	0.85	7.65
3- विनिर्माण	7.00	0.60	4.20
(क) लघु	10.00	0.50	5.00
(ख) बड़े	5.00	0.20	1.00
4- बिजली	10.00	0.48	4.80
5- भवन निर्माण	8.00	1.00	8.00
6- परिवहन	9.00	0.35	3.15
7- सेवायें	6.00	0.60	3.60
सभी क्षेत्र	6.07	0.53	3.19

स्रोत : जे.डी. सेठी. डिथ्रोनिंग ग्रोथ रेट, फाइनेन्शियल एक्सप्रेस, 9,10,11 मई 1990.

इसका अभिप्राय यह है कि उत्पादन और रोजगार लक्ष्यों में समन्वय करना संभव है, यदि हम सकल देशीय उत्पाद की पद्धति को सिंहासन से उतार दें और विकास का रोजगार - प्रेरित ढाँचा अपनायें ।

अध्याय-6

कृषि विकास व असमानता - इलाहाबाद जनपद के सर्वेक्षण की प्राप्तियाँ

(AGRICULTURAL GROWTH AND INEQUALITY - A SURVEY FINDINGS OF ALLAHABAD DISTRICT)

अध्याय-6

कृषि विकास व असमानता - इलाहाबाद जनपद के सर्वेक्षण की प्राप्तियाँ

6.1 जनपदीय पार्श्वदृश्य :-

जनपद इलाहाबाद उ0प्र0 के इलाहाबाद मण्डल में केन्द्रित है । यह 24^0 47' व $25^0$47' उत्तरी अक्षांश तथा $81^0$19' व $81^0$21' पूर्वी देशान्तर पर स्थित हैं। उत्तरी पूर्वी सीमा पर वाराणसी, उत्तरी सीमा पर जौनपुर एवं प्रतापगढ़, पश्चिम में फतेहपुर एवं बांदा, दक्षिणी पूर्वी सीमा पर मिर्जापुर तथा दक्षिण में मध्य प्रदेश का रींवा जिला सुसज्जित है । उत्तर से दक्षिण की ओर चौड़ाई 109 किमी0 एवं पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई 117 किमी0 है । जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7255 वर्ग किमी0 है ।

जनपद इलाहाबाद तीन भागों में बॉटा हुआ है जमुनापार, गंगापार एवं द्वाबा । इन तीनों भागों की भौगोलिक स्थिति अलग-अलग है । जमुनापार का क्षेत्र जो मिर्जापुर एवं बॉदा से सटा हुआ है, पहाड़ी है । इस क्षेत्र की मिट्टी बालुआर है जोकि पौधों के लिये उपजाऊ नहीं है । यहॉ विन्ध्याचल पर्वतमाला फैली हुई है । यह क्षेत्र जिले का सूखा पीड़ित क्षेत्र है । गंगापार का क्षेत्र काफी उपजाऊ है और यहॉ दोमट मिट्टी पायी जाती है, द्वाबा क्षेत्र की मिट्टी भी दोमट है ।

इलाहाबाद जनपद में 9 तहसीलें व 28 विकास खण्ड है जिसका विवरण निम्न है -

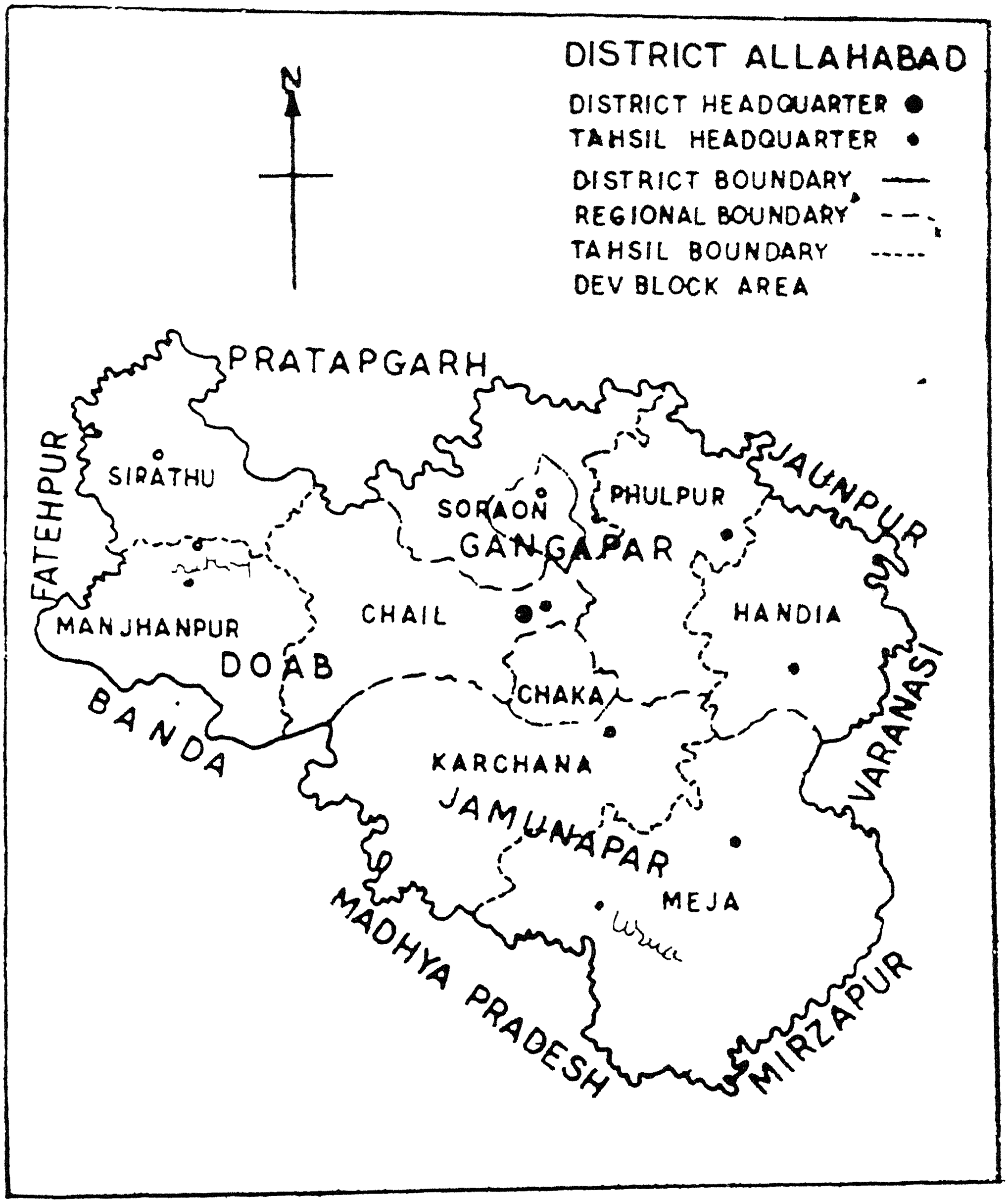
DISTRICT ALLAHABAD
DISTRICT HEADQUARTER
TAHSIL HEADQUARTER
DISTRICT BOUNDARY
REGIONAL BOUNDARY
TAHSIL BOUNDARY
DEV BLOCK AREA
N
PRATAPGARH
FATEHPUR
SIRATHU
SORAON
PHULPUR
JAUNPUR
GANGAPAR
MANJHANPUR
CHAIL
HANDIA
DOAB
VARANASI
BANDA
CHAKA
KARCHANA
JAMUNAPAR
MEJA
MADHYA PRADESH
MIRZAPUR

क्रम संख्या	तहसील	विकासखण्ड
1.	हण्डिया	हण्डिया, धानुपुर, प्रतापपुर व सैदाबाद
2.	फूलपुर	बहादुरपुर, बहेरिया व फूलपुर
3.	सोरॉव	होलागढ़, कौड़िहार, मऊआइमा व सोरॉव
4.	चायल	चायल, नेवादा व मूरतगंज
5.	मंझनपुर	कौशाम्बी, मंझनपुर व सरसवां
6.	सिराथू	कड़ा व सिराथू
7.	करछना	करछना, कौन्धियारा व चाका
8.	बारा	जसरा व शंकरगढ़
9.	मेजा	कोरांव, मांडा, मेजा व उरुवा

इलाहाबाद जनपद का मुख्यालय इलाहाबाद में ही स्थित है । जिलाधिकारी नागरिक प्रशासन का प्रधान होता है । इनकी सहायता के लिये परगनाधिकारी व तहसीलदार होते हैं । जनपद के विकास का कार्य मुख्य विकास अधिकारी एवं परियोजना निदेशक के नेतृत्व में किया जाता है । उनकी सहायता के लिये जिला स्तरीय अधिकारी और खण्डवार, खण्ड विकास अधिकारी होते हैं । जिला स्तरीय अधिकारियों में जिला कृषि अधिकारी जिला पशुधन अधिकारी, उप निबन्ध (सहकारी समितियाँ), सहायक परियोजना अधिकारी जिला उद्यान अधिकारी, जिला मत्स्ये अधिकारी अपर जिला विकास अधिकारी (हरिजन कल्याण) हैं जो कि अपने-अपने विभागों का संचालन करते हैं ।

खण्ड विकास अधिकारी अपने विकास खण्ड का प्रधान होता है जिसकी सहायता के लिये विकास अधिकारी, ग्राम विकास अधिकारी होते हैं ।

हमारे शोध प्रबन्ध में बहुस्तरीय यादृच्छिक प्रतिदर्श को सर्वेक्षण का आधार बनाया गया है । प्रथम स्तर में दो विकास खण्डों का चयन किया गया है तथा द्वितीय स्तर पर चार गॉवों का चयन किया गया है, सर्वेक्षण हेतु प्रतिदर्श का अन्तिम स्तर कार्यशील जोतें हैं । कुछ चुने हुये आर्थिक सूचकों के आधार पर अन्तर्विकास खण्ड की रुपरेखा जिसमें कृषि विकास को दिखाया गया है, इस अध्याय में संलग्न है । इलाहाबाद जनपद को तीन भागों में बॉटा गया है - गंगापार, जमुनापार एवं द्वाबा । इस शोध प्रबन्ध में अध्ययन हेतु गंगापार एवं जमुनापार से एक-एक विकास खण्ड को लिया गया है । चूँकि हमारे अध्ययन में यह दिखाया गया है कि नई तकनीकी के कारण विकास कारक उत्पन्न हुये अत यह उचित समझा गया कि उन्हीं विकास खण्डों का चुनाव किया जाये जो कि कृषि मे अधिक विकसित हों । फलस्वरुप गंगापार क्षेत्र में सोरॉव तथा जमुनापार क्षेत्र में चाका विकासखण्ड का चयन किया गया ।

गॉवों के चुनाव के लिये यह ध्यान में रखा गया कि चुने हुये 4 गॉवों में दो अधिक विकसित गॉव तथा दो कम विकसित गॉव लिये गये । केवल उन्हीं गॉवों का चयन किया गया जिनका कुल भौगोलिक क्षेत्र में कृषित भूमि का अनुपात अधिक था जो एक बड़े प्रतिदर्श के रुप में था । हमने चार प्रकार की कृषि जोतों का निरीक्षण किया जिसमें 0-2.5 एकड़, 2.5-5 एकड़, 5-10 एकड़ तथा 10 एकड़ से ऊपर । इन्हें चार भागों में इसलिये बॉटा गया ताकि आय कीमत प्रवृत्ति को विभिन्न वर्गों के कृषकों जैसे - सीमान्त, लघु, मध्यम एवं बड़े कृषक के रुप में देखा जा सके ।

चुने गये गाँव निम्न हैं .-

	सोराँव	चाका
अधिक विकसित गाँव	भदरी	ददरी
कम विकसित गाँव	सिंगारपुर	अमिलिया

1- जनपद एक दृष्टि में

क्रम सं0	मद	इकाई	अवधि	विवरण
1.	भौगोलिक क्षेत्रफल	वर्ग कि0मि0	1981	7261
2.	जनसंख्या	हजार	1981	
	2.1 पुरुष	"	"	2000
	2.2 स्त्री	"	"	1788
	2.3 योग	"	"	3788
	2.4 ग्रामीण	"	"	3023
	2.5 नगरीय	"	"	774
3.	तहसीलों की संख्या	संख्या	1985-86	9
4.	सामुदायिक विकास खण्ड	"	"	28
5-	नगर एवं नगर समूह	"	1981	18
6.	आबाद ग्रामों की संख्या	"	"	
	6.1 कुल ग्राम	"	"	3514
	6.2 वन ग्राम	"	"	-
7.	ग्राम सभा	"	1985-86	2360

क्रम सं0	मद	इकाई	अवधि	विवरण
8.	न्याय पंचायत	संख्या	1986–87	304
9.	नगर महापालिका	"	"	" 1
10.	नगर पालिका	"	"	-
11.	छावनी क्षेत्र	"	"	1
12.	नगर क्षेत्र समिति	"	"	16
13.	13.1 नोटीफाइड एरिया	"	"	-
	13.2 सैंसस टाउन	"	"	-
14.	पुलिस स्टेशन	"	1985-86	
	14.1 ग्रामीण	"	"	32
	14.2 नगरीय	"	"	13
15.	रेलवे स्टेशन (हास्ट सहित)	"	"	
16.	रेलवे लाइन की लम्बाई	किमी0	"	
	16.1 बड़ी लाइन	"	"	252
	16.2 छोटी लाइन	"	"	51
17.	डाकघर	संख्या	"	
	17.1 नगरीय	"	"	82
	17.2 ग्रामीण	"	"	419
18.	तारघर	"	"	96
19.	टेलीफोन	"	"	10469

क्रम सं0	मद	इकाई	अवधि	विवरण
20.	राष्ट्रीयकृत बैंक शाखायें	"	"	147
21.	ग्रामीण बैंक	"	"	76
22.	सहकारी बैंक शाखाएं	"	"	41
23.	भूमि विकास बैंक	"	"	9
24.	अन्य व्यावसायिक बैंक	"	"	54
25.	सस्ते गल्ले की दूकानें	"	"	
	25.1 ग्रामीण	"	"	506
	25.2 नगरीय	"	"	367
	25.3 गोवर गैस संयंत्र	"	"	2462
	25.4 शीत भण्डार	"	"	30
26.	कृषि	हजार हैक्टर	1984-85	
	26.1 शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	"	"	477
	26.2 1 बार से अधिक	"	"	141
	26.3 शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल	"	"	219
	26.4 सकल सिंचित "	"	"	257
	26.5 कृषि उत्पादन	हजार मी0टन0	"	
	5.1 खाद्यान्न	"	"	790
	5.2 गन्ना	"	"	164
	5.3 तिलहन	"	"	3
	5.4 आलू	"	"	202

क्रम सं0	मद	इकाई	अवधि	विवरण
27.	जलवायु			
	27.1 वर्षा	किमी0	1985	
	1.1 सामान्य	"	"	976
	1.2 वास्तविक	"	"	846
	27.2 तापमान	सेन्टीग्रेट	1985-86	
	2.1 उच्चतम	"	"	44.4
	2 2 न्यूनतम	"	"	3.7
28.	सिंचाई			
	28.1 नहरों की लम्बाई	किमी0	"	2294
	28.2 राजकीय नलकूप	संख्या	"	989
29.	पशुधन			
	29.1 कुल पशुधन	"	1982	2073071
	29.2 पशु चिकित्सालय	"	85-86	60
	29.3 पशु विकास केन्द्र	"	"	88
	29.4.1 कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र	"	"	30
	29.4.2 कृत्रिम गर्भाधान उपकेन्द्र	"	"	78

जनपद के विकास खण्ड की रुप रेखा

	स्थिति	सोरॉव	चाका
1.	नगरों की संख्या	-	
2.	आबादी वाले गॉव	105	94
3.	ग्राम सभाओं की सख्या	71	60
4.	(अ) कुल जनसंख्या (1981) जनगणना	105474	88813
	(ब) ग्रामीण "	105474	88813
	(स) नगरीय "	-	-
	(द) अनुसूचित जाति/जनजाति	21928	19963
	(य) प्रतिवर्ग किलोमीटर में जनसंख्या का घनत्व	575	470
2.	पेशेवार वितरण (1981)		
	1. कृषक	12442	17642
	2. कृषि श्रमिक	9407	8034
	3. कृषि संबंधी कार्यकलाप	42	84
	4. कुटीर व घरेलू उद्योग धन्धे	794	1231
	5. अन्य उद्योग (पारिवारिक)	788	2534
	6. व्यापार व उद्योग	1098	740
	7. अन्य	2143	2641
	8. कुल कर्मी	26794	32906
2-	क्षेत्र का विवरण (हेक्टेयर मे)		
	1. कुल क्षेत्रफल	13685	16908

स्थिति	सोरॉव	चाका
2. शुद्ध कृषि योग्य भूमि	9942	9420
3. वर्तमान बंजर भूमि	379	1217
4. वनों का क्षेत्रफल	-	-
5. अप्राप्त कृषि भूमि	221	1927
6. अन्य परती भूमि	575	1523
7. ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि	220	266
सिंचाई		
1- शुद्ध सिंचित क्षेत्र (हेक्टेयर में)	6862	3858
2- कुल क्षेत्रफल में सिंचित	8326	4004
3- सिंचाई के साधन (हेक्टेयर)		
(अ) राजकीय नलकूप ।	1967	2170
(ब) निजी नलकूप		
(स) कुएँ	77	-
(द) नहरें	4763	1587
(य) तालाब, झील, पोखर	55	10
(र) अन्य	-	-
ब- फसल प्रणाली हेतु 1984-85		
1. एक या अधिक बार बोया गया	4864	690
2. एक या अधिक बार बोयी गयी का शुद्ध बोये गये मे %	10.65	7.08
3. सकल बोया गया क्षेत्रफल	14901	9743
4. पाँच मुख्य फसलों का क्षेत्रफल (1984-85)		

स्थिति		सोरॉव	चाका
	(अ) धान	3300	1401
	(ब) गेहूँ	5304	3173
	(स) मक्का	2	-
	(द) दालें	1811	-
	(य) गन्ना	26	1895
5-	जोत का आकार (1982)		
	(अ) 1 हेक्टेयर से कम	8604	8251
	(ब) 1 और 2 " के बीच	1485	1418
	(स) 2 " 3 " " "	531	538
	(द) 3 " 5 " " "	343	369
	(य) 5 हे.से अधिक	201	201
6-	उर्वरक 1984-85		
	(अ) कुल उपयोग (मि0टन)	1384	757
	(ब) औसत उपयोग प्रति है0 सिंचित क्षेत्र	71	57
	(स) औसत उपभोग प्रति हैं0	-	-
7-	कृषि यन्त्र 1985-86		
	(अ) ट्रैक्टरों की संख्या	-	31
	(ब) पावर थ्रेशरों की संख्या	-	
	(स) सिंचाई पम्पसेट		

स्थिति		सोरॉव	चाका
	(क) आयल इन्जन	866	349
	(ख) विद्युत	53	127
	(ग) लिफ्ट सिंचाई ग्रुपयोजना	6	52
(द)	शक्ति चालित थ्रेसर		47
8-	पशुधन		
	(अ) जुताई पशु	4864	9919
	(ब) डेरी पशु	3911	1417
	(स) मुर्गी पालन	6912	4040
	उद्योग:		
	लघु औद्योगिक इकाइयाँ		
	(क) पंजीकृत इकाइयाँ	13	6
	(ख) अपंजीकृत	39	18
	कुटीर उद्योग .		
	हथकरघा उद्योग	150	
	जूता निर्माण इकाइयाँ	4	3
	चर्मकला	2	1

स्रोत : बैंक आफ बड़ौदा, जिला ऋण योजना 1988-90 एवं जिला कार्य योजना 1988, जनपद इलाहाबाद पृष्ठ

इलाहाबाद जनपद के इस भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक विवरण के साथ कृषि क्षेत्र में फसलों का उत्पादन, व्यवसाय, आय, रोजगार, मजदूरी तथा कृषि क्षेत्र के विकास में प्रयुक्त तकनीकी प्रयोग, गरीबी व बेरोजगारी दूर करने के कार्यक्रम, बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं से प्रदत्त साख व ऋण सुविधायें और साथ ही साथ कृषि क्षेत्र के विकास पर उनके प्रभावों के अध्ययन का विवरण इलाहाबाद जनपद के द्वितीयक ऑकड़ों के साथ-साथ, जनपद में किये गये प्राथमिक ऑकड़ों के आधार पर पूरे विश्लेषण को मुख्य रुप से कृषि में विकास एवं कृषि मे विकास के साथ असमानता के रुप में किया गया है ।

6.2 जनपद में कृषि विकास की प्राप्तियाँ :-

कृषि विकास के सम्बन्ध में जहाँ तक कृषि उत्पाद एवं उत्पादिता का सम्बन्ध है, वह अनेक संस्थागत, तकनीकी और परिवेश, वातावरण पर आधारित है। कृषि उत्पादकता और विशेषकर कृषि उत्पादकता के निर्धारकों की व्यवस्था प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से कृषि विनियोगों पर निर्भर करती है । कृषि व्यवस्था वस्तुतः मात्र एक तकनीकी व्यवस्था नहीं है बल्कि इसका स्वरुप एक नवीन विकास का है जिससे नये ज्ञान व तकनीकी द्वारा आर्थिक क्रियाओं को सम्पादित किया जा सके । कृषि उत्पादकता की संकल्पना भौतिक स्वरुप की है और यह उत्पादन और प्रमुख आगतों के परिवर्तित सम्बन्ध का विवरण है । इस तरह कृषि विकास का अध्ययन और परीक्षण किसी समयावधि में ऑकड़ों के आधार पर कृषि उत्पादन व उत्पादिता की प्रवृत्ति का परीक्षण है ।

1966 के बाद के दो दशकों से पूर्व समय की तुलना में कृषि क्षेत्र में व्यापक और गहन प्रयास हुये हैं । यद्यपि योजनाकाल से ही कृषि मे स्थिरावस्था को समाप्त कियागया है पर कृषि में धीमें विकास के कारण 1965 तक उसमें महत्वपूर्ण

तकनीकी व सामाजिक परिवर्तन नहीं हो पाये थे । यह अब सर्वमान्य धारणा बन चुकी है कि कृषि क्षेत्र मे नवीन तकनीकी परिवर्तन और नव प्रर्वतन (इन्नोवेशन) के परिणामस्वरुप ही देश मे खाद्य आत्मनिर्भरता जो हमारे आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य रहा है, प्राप्त हो सका है ।

द्वितीयक और प्राथमिक ऑकड़ों के साथ-साथ इलाहाबाद जनपद के कृषि क्षेत्र में कृषि उत्पादन और उत्पादिता सम्बन्धी विवरणों को प्रथम पचवर्षीय योजना से 1990-91 तक की समयावधि मे विश्लेषित किया गया है । यहाँ मोटे तौर पर जनपद के कृषि क्षेत्र में विकास की दिशा को इंगित किया गया है । जनपद में खाद्यान्नों के उत्पादन के द्वितीयक ऑकड़ों के विवरण के साथ सर्वेक्षण आधार पर कृषि क्षेत्र में कृषि जोत आकार तथा विभिन्न फसलों का क्षेत्रवार प्रतिशत का विवरण लिया गया है । कृषि जोतों में लघु, मध्यम और वृहत् कृषि जोतों मे विभिन्न खाद्यान्नों के उत्पादन क्षेत्र के प्रतिशत विवरण से इनके उत्पादन और वृद्धि दिशा को देखा जा सकता है । विवरण में यह देखा जा सकता है कि पिछले पॉच वर्षों मे इलाहाबाद जनपद के गेहूँ उत्पादन में प्रतिवर्ष 6.62% वृद्धि हुई । 1977-78 के आधार सूचकांक के आधार पर गेहूँ उत्पादन का सूचकांक बढ़कर 1990-91 में बढ़कर 157 हो गया और इस तरह जैसा कि तालिका व ग्राफ में प्रदर्शित है कि खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग दूना हो गया ।

सारणी-6.1

इलाहाबाद जनपद मे विभिन्न योजनावधि में खाद्यान्न उत्पादन

क्रम स0	अवधि	उत्पादन (मी.टन)	सूचकांक
1.	प्रथम योजना के अंत में 1955-56	325019	100.00
2.	द्वितीय योजना के अंत में 1960-61	462296	142.22
3.	तृतीय योजना के अंत मे 1965-66	306000	94.00
4.	चतुर्थ योजना के अंतिम वर्ष मे 1973-74	514000	158.14
5.	पाँचवीं योजना के अंत मे 1978-79	639968	196.90
6.	वर्ष, 1981-82 में	737058	226.77
7.	वर्ष, 1990-91 में	951060	301.68

स्रोत . डिस्ट्रिक्ट प्लान रिपोर्ट्स, इलाहाबाद

सर्वेक्षण की प्राप्तियों से स्पष्ट है कि जनपद में कृषि क्षेत्र के उत्पादन में प्रमुख फसलें गेहूँ, जौ, चना, मटर, धान, बाजरा, ज्वार और मक्का आदि हैं । गेहूँ और धान जनपद की सबसे महत्वपूर्ण फसलें हैं । धान की सर्वोच्च फसल क्षेत्र के उत्पादक क्षेत्र हण्डिया, चायल, सिराथू व फूलपुर तहसीलें हैं । ज्वार व बाजरा जनपद के प्रमुख खाद्यान्नों में से है । जनपद मे फसल प्रवृत्ति से सम्बन्धित विवरणों को तालिका 6.2 मे प्रदर्शित किया गया है ।

सारणी-6.2

फसलें/फार्म आकार -	लघु	मध्यम	वृहत	सम्पूर्ण वर्ग
धान	26.91	24.42	19.41	23.95
ज्वार बाजरा	11.19	15.03	10.83	13.00
मूँग	5.53	11.29	5.36	8.36
अरहर	9 48	4.86	16.98	8.91
गेहूँ	22.55	21.48	22.64	22.04
जौ	1.06	0.75	7.07	2.27
चना/मटर	1.21	1.87	2.21	1.76
आलू	12.61	10.69	5.38	10.02
गन्ना	0.73	1.96	1.42	1.49
सब्जियाँ	5.67	3.92	5.05	4.66
तेल बीज	0.57	0.65	2.43	1.03
अन्य	2.37	3.13	1.21	2.48
सभी फसलों के योग	100.00	100.00	100.00	100.00

जनपद के प्रति हेक्टेअर औसत उत्पादन को राज्य के प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन को वर्ष 1967-68 की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि जनपद का औसत उत्पादन राज्य के गेहूँ, धान, ज्वार, मूँगफली व गन्ने के औसत उत्पादन से कम था । इसी तरह जनपद में आलू का औसत उत्पादन भी राज्य के औसत उत्पादन से कम था केवल अरहर के उत्पादन में जनपद का औसत उत्पादन राज्य के औसत उत्पादन से अधिक था । 1981-82 में जनपद में कृषि उत्पादिता में महत्वपूर्ण सुधार हुआ और

राज्य स्तर के औसत उत्पादन के समकक्ष हो सका । इसका विवरण तालिका 6.3 में दिया गया है -

सारणी-6.3

इलाहाबाद जनपद में मुख्य फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादिता (1990-91)

फसलें	क्षेत्रफल (000, हे0)	उत्पादन (000, मी.टन)	उत्पादकता /हेक्टेअर	राज्य स्तर की औसत उपज
धान	169.4	184.1	18.87	10.53
ज्वार	28.1	33.1	11.78	8.00
बाजरा	58.7	59.9	10.21	7.00
गेहूँ	184.6	264.1	14.31	16.50
जौ	34.4	38.3	11.10	10.86

स्रोत : (क) डिस्ट्रिक्ट प्लान 1990-91
(ख) रबी अभियान, उ0प्र0 सरकार

इसी के साथ सारणी 6.4 और सम्बन्धित ग्राफ में नवीन कृषि तकनीकी परिवर्तन के बाद कृषि क्षेत्र में उत्पादन परिवर्तन को विशेषकर गेहूँ व धान के उत्पादन परिवर्तन के रुप में दिखाया गया है -

सारणी-6.4

इलाहाबाद जनपद मे गेहूँ व चावल की उत्पादकता

कुन्तल/हेक्टेअर

वर्ष	उत्पादकता	
	गेहूँ	चावल
1959-60	7.62	5.05
1969-70	13.50	8.63
1980-81	14.53	9.66
1990-91	15.31	10.21

स्रोत · एग्रीकल्चरल प्रोडक्टविटी इन इस्टर्न इण्डिया, सम सेलेक्टेड इन्डीकेटर्स (1960-61 से 1990-91)

जहाँ तक कृषि उत्पादन स्तर का सम्बन्ध है वहाँ आर्थिक, तकनीकी व संस्थागत कारक भौतिक ससाधनों के दोहन करने मे किस सीमा तक कृषि उत्पादन बढ़ा सकते हैं, इसका प्रश्न है । साथ-साथ पिछले दशक से वे कौन से महत्वपूर्ण कारक हैं जो उत्पादन ढाँचे को 1966 के बाद नये तकनीकी परिवर्तनों के साथ किये गये हैं । अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिन राज्यों में उच्च उत्पादन वृद्धि दरें प्राप्त हुई हैं, वहाँ सामान्य रुप से आगतों की वृद्धि दर भी ऊँची रही ।

जनपद में कृषि विकास सम्बन्धी सूचकों विशेषकर उर्वरकों व सिंचाई सम्बन्धी विवरणों को भी प्रापत किया गया है और इस सम्बन्ध में इलाहाबाद जनपद में विशेषकर गेहूँ व धान में बीज, खाद, क्रांति का प्रभाव पड़ा है । 1966-67 से

1973-74 के बीच उन्नत किस्म के बीजों का कुल क्षेत्र प्रतिशत 5% से 20% बढ़ा है और यह गेहूँ के सम्बन्ध में अधिक तेजी से 1980-81 मे लगभग 80% बढ़ा है । पूरे देश मे और कृषक परिवारों में उर्वरकों का प्रयोग उत्पादन नियोजन में एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है । चौथी पंचवर्षीय योजना मे अनुमानित खाद्य उत्पादन के 29 मिलियन टन मे 21 मिलियन टन का उत्पादन उन्नतशील किस्म के बीजों और उर्वरकों के प्रयोग के आधार पर प्राप्त करने का लक्ष्य था । उत्तर प्रदेश में रासायनिक उर्वरकों की कमी के बावजूद भी नाइट्रोजन, फास्फेट, पोटाश का प्रयोग लगातार प्रगति को इंगित करता है और द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद उर्वरकों के प्रयोग सम्बन्धी अन्तर्राज्य तुलना से यह स्पष्ट होता है कि 1969-70 मे प्रति इकाई उत्पादित क्षेत्र में उर्वरक का प्रयोग आन्ध्र प्रदेश, केरल व तमिलनाडु मे कम था । इलाहाबाद जनपद में प्रति हेक्टेयर औसत उर्वरक प्रयोग को तालिका 6.5 और ग्राफ 3 में दिखाया गया है -

सारणी-6.5

इलाहाबाद जनपद मे उर्वरकों का औसत उपभोग

किग्रा./हेक्टेअर

वर्ष	नाइट्रोजन	फास्फेट	पोटाश	योग
1975-76	17.35	1.33	0.91	19.59
1976-77	22.78	3.00	1.53	27.31
1977-78	22.78	3.30	1.53	27.31
1978-79	33.82	7.63	3.29	44.74
1979-80	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
1980-81	34.12	6.67	3.15	43.94
1981-82	36.34	9.00	4.50	49.84
1990-91	38.20	10.21	5.15	53.56

स्रोत स्टैटिस्टिकल बुलेटिन, उ0प्र0 सरकार

हमारे सर्वेक्षण की प्राप्तियों से इस बात की पूरी पुष्टि हुई है कि हर वर्ग के कृषकों द्वारा विशेषकर सिचाई सुविधा प्राप्त क्षेत्रों में आगतों विशेषकर उर्वरकों के प्रयोग में जागरुकता रही है । परिणामस्वरुप कृषक वर्गः द्वारा जनपदों में उर्वरकों के प्रयोग लागत में 20% से 25% का विनियोग हो रहा है । विशेषकर गंगापार क्षेत्र

मे इस स्थिति से सम्बन्धित प्राप्तियों का विवरण तालिका 6.6 में दिखाया गया है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि नगद फसलों विशेषकर आलू व गन्ने के उत्पादन में उर्वरकों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है । जनपद में प्रति हेक्टेअर उर्वरक प्रयोग को ग्राफ-3 मे दिखाया गया है ।

सारणी-6.6

लागत अवयव इलाहाबाद जनपद

वर्ग आकार (हेक्टेअर मे)

वस्तुयें (रुपये मे)	0-2.5	2.5-5.0	5.0-10.00	10.0 और उससे ऊपर	योग
1	2	3	4	5	6
बीज	11402 (24.14)	33696 (30.10)	74357 (27.76)	20710 (14.67)	140165 (24.66)
खाद	10348 (21.91)	25142 (22.46)	63884 (23.85)	25995 (18.41)	125369 (22.06)
खनिज	9565 (18.13)	14705 (13.13)	19424 (7.25)	5700 (4.04)	49394 (8.69)
सिंचाई	5350 (11.33)	6560 (9.43)	25668 (9.58)	12455 (8.82)	54033 (9.51)
किराये पर लिये मानव श्रम का मूल्य	1150 (2.33)	6055 (5.41)	18045 (6.74)	7205 (5.10)	32455 (5.71)
पशु श्रम मूल्य	5820 (12.32)	11190 (9.9)	27410 (10.23)	5184 (4.09)	49604 (8.88)
किराये पर लिये औजार व ट्रैक्टर का मूल्य	1305 (2.76)	2725 (2.43)	5800 (2.17)	12075 (8.55)	21905 (3.85)
विविध तथा किराया	560 (1.19)	2008 (1.79)	7117 (2.66)	5118 3.62)	14803 (2.60)
ह्रास	2046 (4.33)	3720 (3.32)	21525 (8.04)	44110 (31.23)	71401 (12.56)

1	2	3	4	5	6
कीटनाशक	694 (1.47)	2191 (1.96)	4631 (1.72)	1072 (0.76)	8594 (1.51)
योग	47240 (100.00)	111942 (100.00)	267870 (100.00)	141220 (100.00)	568272 (100.00)

नोट - कोष्ठक मे दिखायी गई संख्यायें लागत का प्रतिशत है ।

इलाहाबाद जनपद में गंगा व जमुना नदी के कारण सिंचाई सुविधा विशेषकर मेजा व करछना क्षेत्र में पहले की अपेक्षा बढ़ी है । जनपद के तीनों क्षेत्रों में अलग-अलग स्थिति के कारण जल-स्तर स्थान-स्थान पर अलग - अलग है । गगापार क्षेत्र मे जलस्तर बहुत गहरा नहीं है और इस तरह सिचाई सुविधाओं को विना कठिनाई के किया जा सकता है । जनपद में 1974 में 513 राज्य ट्यूबवेल गगापार में, सर्वाधिक 70% ट्यूबवेल पाये गये । सर्वेक्षण से सम्बन्धित गॉव में सिंचित क्षेत्र सर्वाधिक है, लगभग 52% गंगापार क्षेत्र मे, द्वाबा तथा जमुनापार में 30 % और 20% है । द्वाबा और जमुनापार में जलस्तर की अत्यधिक गहराई के कारण ट्यूबवेल की लागत अधिक है । द्वाबा और जमुनापार में मेजा तहसील मे व्यक्तिगत व लघु सिंचाई परियोजना बहुत ही दुष्कर है ऐसे स्थानों मे राज्य ट्यूबवेल व लिफ्ट सिंचाई योजना इन क्षेत्रों में आवश्यक है जिससे कम से कम दो फसलों के लिये पर्याप्त सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो सके । इलाहाबाद जनपद में 1970-71 से 1990-91 की समयावधि मे सिंचाई के प्रमुख स्रोतों में नहर कुएँ आदि की स्थिति का विवरण सारणी संख्या 6.7 में दिया गया है -

सारणी-6.7

इलाहाबाद जनपद मे विभिन्न वर्षों मे स्रोतवार सिंचित क्षेत्र

वर्ष	नहर	ट्यूबवेल	कुएँ	तालाब	योग
1970-71	31.98	27.55	38.07	5.40	100.00
1975-76	31.00	49.77	13.00	6.23	100.00
1979-80	38.85	51.40	8.00	1.75	100.00
1980-81	37.70	52.00	7.00	3.30	100.00
1981-82	37.96	52.15	3.23	6.66	100.00
1990-91	38.16	53.18	4.16	4.62	100.00

स्रोत . पंचवर्षीय योजनाये, इलाहाबाद जनपद.

प्रथम योजना के अंत तक जिले का केवल 3207 हेक्टेअर सिंचित क्षेत्र था। यह 1966-67 में बढ़कर 19,280 हेक्टेयर हो गया और 1981-82 मे यह बढ़कर 1,99,649 हेक्टेअर हो गया । उत्तर प्रदेश के तुलनात्मक दृष्टिकोण से जनपद में सिंचाई सघनता की वृद्धिमान प्रवृत्ति और ऊँचे मूल्य लागत से सम्बन्धित है जिसका विवरण ग्राफ-4 तथा सारणी 6.8 में प्रदर्शित है -

सारणी-6.8

इलाहाबाद जनपद एव पूर्वी उत्तर प्रदेश मे सिचाई सघनता

(प्रतिशत मे)

क्षेत्र	वर्ष 1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
इलाहाबाद	104.12	112.85	120.87	135.76
पूर्वी उत्तर प्रदेश	104.40	105.23	111.12	121.25

स्रोत एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी इन ईस्टर्न इण्डिया (ईस्टर्न उत्तर प्रदेश, नॉर्थ बिहार) सम सलेक्टेड इण्डीकेटर्स, एग्रो इकनॉमिक रिसर्च सेन्टर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी.

वर्ष 1980-81 से 1990-91 की समयावधि मे जनपद की अर्थव्यवस्था में कृषि में हुये महत्वपूर्ण परिवर्तनों का विस्तृत विवरण सारणी 6.9 में प्रदर्शित है। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि कृषि क्षेत्र में विकास को दिखाने वाले आगतों का सम्बन्ध कृषि उत्पादकता और कुछ चुने हुये फसलों के संबध में इन दो समय बिन्दुओं पर दिखाया जा सकता है ।

सारणी-6.9

इलाहाबाद जनपद   कृषि मे नीति परिवर्तन

वस्तुये	1980-81	1990-91	प्रतिशत परिवर्तन 2पर।
शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोया गया क्षेत्र	33.80	37.61	11.41
खाद उपयोग किग्रा./हेक्टे0	15.62	49.84	219.08
एच.वाई.वी. गेहूँ के अधीन क्षेत्र	38.87	87.21	124.36
उत्पादकता कुन्तल/हेक्टे0 गेहूँ	11.65	14.31	22.83
चावल	6.87	10.87	58.22

स्रोत   (1) स्टैटिस्टिकल बुलेटिन, डाइरेक्टरेट ऑफ स्टैटिस्टिक्स, गवर्नमेन्ट ऑफ यू0पी0.

(2) आ.पी.सिंह : एग्रीकल्चरल डेवलेप्मेण्ट इन इस्टर्न यू0पी0 एग्रो इकोनॉमिक रिसर्च सेन्टर, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद.

कृषि नियोजन का मुख्य उद्देश्य उन अवरोधों को दूर करना है जो तकनीकी, आर्थिक व संगठनात्मक पिछड़ेपन तथा उत्पादन में निम्न वृद्धि दर के स्रोत रहे हैं । उत्पादकता मे तकनीकी अवरोध व साथ-साथ संस्थागत और आधारभूत सुविधाओं सम्बन्धी अवरोध में कारण परिणाम सम्बन्ध है और वह सहसम्बन्धित है। उत्तर प्रदेश में पूर्वी क्षेत्र के बहुत से कृषक निम्न उत्पादकता, निम्न आय व निम्न विनियोग के चक्र में फंसे है । कृषि जोतों का आकार छोटे और बिखरे हुये कृषि जोतों, कमजोर साख व विपणन संस्थाओं तथा शक्ति आपूर्ति में कमी ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो कृषि उत्पादन व उत्पादिता को प्रभावित करते है ।

उत्तर प्रदेश के कृषि साख सस्थाओं पर आर.बी.आई.[1] के अध्ययन दल के अनुसार 1970 के मध्यम अल्पावधि कृषि साख आवश्यकताओं के सम्बन्ध में साख अंतराल लगभग 61% अनुमानित की गयी थी जो 415.32 करोड़ रु0 है । पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न जनपदों में साख अन्तराल कुल मिलाकर अब पहले की अपेक्षा कम हो गया है क्योंकि इस दिशा मे सहकारी साख तथा अन्य वित्तीय संस्थायें अधिक सक्रिय है। इसी के साथ-साथ व्यापारिक बैंकों की क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की शाखाओं के कारण ग्रामीण क्षेत्र में साख प्रवाह बढ़ गया है फिर भी हर क्षेत्र मे हर वर्ग के कृषकों द्वारा नई तकनीक अपनाने के कारण साख मॉग में वृद्धि हुई है और अब व्यक्तिगत साख स्रोतों के स्थान पर संस्थागत साख का विशेष विस्तार हुआ है । इसी तरह पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक नवीनतम अध्ययन में यह प्राप्त हुआ कि गैर संस्थागत ऋण में अधिकांश छोटे व सीमान्त कृषक हैं जो पूरे सर्वेक्षण निदर्श मे 90% है । हमारे सर्वेक्षण निदर्श के ऑकड़े जिन्हें सारणी 6.10 मे दिखाया गया है । कम से कम 75% सीमान्त व 59% लघु कृषक संस्थागत ऋणों से वंचित है और यही सख्या इन ऋणों को प्राप्त करने से सम्बन्धित है।[2]

---

1. आर.बी.आई. रिपोर्ट ऑफ द स्टडी टीम ऑन एग्रीकल्चरल क्रेडिट इन्सटीट्यूशन्स इन उत्तर प्रदेश ।

2. शुक्ला पी.सी., कन्सट्रेण्टस ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी इन ईस्टर्न इण्डिया एण्ड इट्स मेजर्स (विद स्पेशल रेफरेन्स टू इस्टर्न यू0पी0 एण्ड बिहार)

सारणी-6.10

इलाहाबाद जनपद में साख उपभोग तथा उसे प्राप्त करने से सबंधित कृषक

वर्ग आकार (एकड़ में)	ऋण प्राप्ति में आने वाली समस्याओं से सबंधित परिवारों का प्रतिशत	संस्थागत ऋण में कमी की शिकायत करने वाले परिवारों का प्रतिशत
सीमान्त (0-2.5)	75.00	75.00
लघु (2.5-5.0)	57.54	57.14
मध्यम (5.0-10.0)	66.67	50.00
वृहत् (10.0 से ऊपर)	66.67	33.34
औसत	68.42	40.94

हमारे सर्वेक्षण में संदर्भित क्षेत्र में बहुत से कृषकों को बीज, खाद, कीटनाशक गैर संस्थागत एजेन्सियों से प्राप्त करना पड़ता है । इसी तरह संदर्भित नवीनतम अध्ययन में यह पाया गया कि पूर्वी उत्तर प्रदेश मे 55% कृषक विकास खण्डों से सहायता प्राप्त किये गये । यद्यपि इन लाभकर्ताओं में अधिकाश बड़े कृषक थे और अधिकतम लघु व सीमान्त कृषक अपने परम्परागत बीज, खाद पर निर्भर थे । कृषकों का यह मत था कि उर्वरकों के प्रयोग व लाभ से पूर्णतया भिज्ञ हैं पर खाद्यान्न की तुलना में गैर अनुपातिक हैं। इस क्षेत्र में कमजोर विपणन संरचना तथा सुदूर बाजार स्थान प्राचीन आर्थिक व्यवस्था को दिखाता है । उर्वरकों की आसान उपलब्धता हेतु भारत सरकार ने अब ब्लॉक स्तर पर उर्वरकों की आपूर्ति सुनिश्चित की है ।

कृषि विकास सम्बन्धी ऐसे अवरोधों को ध्यान मे रखकर इनको दूर करने से सम्बन्धित सार्वजनिक विनियोगों द्वारा उत्पादन क्षमता में वृद्धि संभव है । शक्ति आपूर्ति मे कमी सबसे महत्वपूर्ण कारण है । भारत की 1982 में आर्थिक दशा की स्थिति व संभावनाओं के सम्बन्ध में विश्व बैंक रिपोर्ट ने यह दिखाया है कि ग्रामीण विद्युतीकरण की उच्च लागत के साथ-साथ विद्युत बोर्डो की सचालन और वित्तीय व्यवस्था सम्बन्धी कमजोरियों को स्पष्ट किया है । जनपद में ग्रामीण विद्युतीकरण तीव्र कृषि विकास का आधार है, जहाॅ पर सुदृढ़ औद्योगिक संयंत्र का प्रादुर्भाव हो चुका है । 1976 के एशियाई कृषि सर्वेक्षण ने कृषि और औद्योगिक उपसंबंधों को स्पष्ट किया है और उर्द्धवगामी व पश्चगामी उपप्रभावों के योगदानों को दिखाया है पर एक अर्द्धविकसित कृषि व्यवस्था में आधारभूत सुविधाओं की कमी के साथ-साथ उस तरह का सम्बन्ध नहीं होगा जिस तरह का आर्थिक विकास मॉडलों में दिखाया गया है । उ0प्र0 सरकार के योजना विभाग के एक अध्ययन के अनुसार तीन महत्वपूर्ण कारक सस्ती विद्युत सेवायें, यातायात सम्बन्धी सड़कों का जाल व तकनीकी कुशलता है।[3]

इलाहाबाद जनपद मे सीमान्त कृषकों की संख्या मे वृद्धि हुई है और इसका विवरण कृषि सेन्सस के ऑकड़ों से उपलब्ध है । ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता में ग्रामीण श्रमिक परिवार मुख्य हैं वे अधिकाशत पिछड़े वर्ग के हैं जैसे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियाॅ । कृषि क्षेत्र में जनसंख्या के अत्यधिक दबाव के कारण इस क्षेत्र में छोटी कृषि जोतों का बाहुल्य पाया गया । पूर्वी उ0प्र0 में भूमि जोतों का औसत आकार बहुत कम है जो 2.13 एकड़ प्रति कृषि जोत परिवार 1976-77 में तथा 1980-81 में 2.48 एकड़ प्रति कृषि जोत परिवार है । इस क्षेत्र में गरीबी व निम्न प्रति व्यक्ति आय का निर्देशक कमजोर संसाधन आधार है । साथ ही साथ आय सृजन करने वाले आदेयों के स्वामित्व में असमानता ने ग्रामीण निर्धनों के सामने विशेष अवरोध का कार्य किया है । सामान्यतया ग्रामीण क्षेत्रों मे जहाॅ अधिकांश कृषि जोत परिवार खेती

---

3. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, वर्किंग पेपर, गवनमैण्ट ऑफ इण्डिया, योजना विभाग उ0प्र0, पृष्ठ 247.

के कार्य मे लगे है वहाॅ आदेयों के मूल्य का बड़ा भाग भूमि के रुप मे माना जाता है। इलाहाबाद जनपद मे सीमान्त कृषकों के सम्बन्ध मे कृषि भूमि से आय बहुत कम है या नगण्य है और आकस्मिक श्रम से मजदूरी ही आय का प्रमुख स्रोत है । इसी तरह कृषि श्रमिक व शिल्पकार जिनके पास बहुत कम उत्पादक आदेय है, वे अपनी आय आकस्मिक रोजगार अवसरों से प्राप्त करते है । ग्रामीण क्षेत्र में यह तीन वर्ग के परिवार निम्नतम आदेय स्वामित्व वर्ग के हैं ।

यद्यपि इलाहाबाद जनपद के कृषि क्षेत्र में स्थिरावस्था की स्थिति समाप्त हो जाती है फिर भी हम ये पाते हैं कि विभिन्न फसलों की संवृद्धि दर संतोषजनक नहीं है । कृषि अर्थव्यवस्था की संरचना सामाजिक व अन्य संस्थाओं के परिवर्तन तथा ज्ञान व तकनीकी के संगठन सम्बन्धी प्रयासों से प्राकृत व मानवीय संसाधनों का अधिकतम प्रयोग आर्थिक विकास हेतु किया जाना चाहिये जैसा कि भगवती व चक्रवर्ती ने सुझाव दिया है[4] कि आगतों की अविभाज्यता संभावना को देखते हुये एक विशेष वर्ग कार्य की आवश्यकता है । यद्यपि लघु कृषकों के संबंध मे साख्यिकी आधार पर उनके पक्ष में विवरण दिखाया जा सकता है पर इसका दीर्घकालीन प्रभाव विकास पर हानिकारक होगा विशेषकर यदि प्रेरित बचतें विपरीत रुप में प्रभावित होती हैं और कर योग्यता के सम्बन्ध में एक सरकारी राजनैतिक सीमा होती, जो दोनों भारतीय कृषि क्षेत्र में है ।

6.3 जनपद में कृषि लाभों का वितरण व असमानता :-

भारतीय अर्थव्यवस्था का कृषि क्षेत्र अब स्थिरावस्था की स्थिति में न होकर महत्वपूर्ण तकनीकी व वैज्ञानिक कृषि विधियों से संबंधित रहा है । योजनावधि के इतने

---

4. भगवती जे.एन.चक्रवर्ती एस ' कण्ट्रीब्यूशन्स टू इण्डियन इकनोमिक एनालिसिस.

वर्षों बाद अर्थव्यवस्था मे सरचनात्मक परिवर्तन हुआ है परिणामस्वरूप उत्पादन व राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है पर विकास की यह क्रिया विशेषकर कृषि क्षेत्रों मे उत्पादन व उत्पादकता तथा आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण व पूंजी मे वृद्धि हुई है । तृतीय पंचवर्षीय योजना में यह कहा गया है कि सामाजिक आधार पर आर्थिक विकास तीव्र आर्थिक विकास, रोजगार में वृद्धि, आय व सम्पत्ति में असमानता मे कमी, आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण मे रोक व ऐसे मूल्यों व प्रवृत्तियों का सृजन करेगी जिससे एक स्वतंत्र व समतावादी समाज की स्थापना की जा सके ।

देश के आर्थिक विकास मे वर्तमान स्थिति के संदर्भ मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे कृषि एक केन्द्र स्थान पर है । संस्थागत कारकों पर आधारित तथा प्रदेश मे सिंचाई व नई तकनीकी के विस्तार की स्थिति देश के विभिन्न भागों में हुई है । कृषि में नवीन तकनीकी तथा हरित क्रांति के परिणामस्वरूप परम्परागत कृषि, आधुनिक वैज्ञानिक कृषि क्रिया के रूप में नये विनियोग अवसरों के साथ अधिक लाभ की स्थिति उत्पन्न हुई हैं, पर जहाँ ग्रामीण विकास हेतु अनेक संभावनायें उत्पन्न हुई हैं वहीं उनके लाभों के सम्बन्ध में वितरण सम्बन्धी समस्यायें भी उत्पन्न हुई हैं । यद्यपि नई तकनीकी के उत्पादन लाभों को पूरी मान्यता दी जाती है पर ऐसे लाभों का कृषि जोत आकार के अनुसार अलग-अलग विचारों से संबंधित है । कृषि क्षेत्र में आय में वृद्धि उस क्षेत्र में समान रूप से वितरित नहीं हुई है । कृषि फार्म आकार व प्रति एकड़ उत्पादन में विपरीत सम्बन्ध जो पहले थे वे अब समाप्त हो गये हैं और पंजाब तथा उ0प्र0 से प्राप्त नये आँकड़ों से नयी कृषि फार्म व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है कि छोटे कृषि फार्मों की तुलना में बड़े कृषि फार्म पर उत्पादन लाभ अधिक है । विभिन्न वर्ग और आकारों के आधार पर प्राप्त आँकड़ों से भी इसी तरह के निष्कर्ष प्राप्त हुये है और इस सम्बन्ध में हमारी परिकल्पना को सिद्ध करने मे विभिन्न सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है ।

अब हम जनपद इलाहाबाद मे कृषि जोतों के आकार के आधार पर कृषि आय के वितरण का विश्लेषण कर सकते हैं । ऑकड़ों के आधार पर विश्लेषण से पूर्व यहॉ आय संकल्पना को स्पष्ट करना आवश्यक होगा । सामान्यतया सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये हम आय को समग्र उत्पाद मूल्य और वास्तविक लागत अंतर अतिरेक को आय कहते हैं और इसी अवधारणा को हम कृषि व्यावसायिक आय के रुप में करेंगे फिर भी फलनात्मक रुप मे करेंगे फिर भी फलनात्मक रुप मे आय वितरण के अध्ययन मे आय का सामान्य अर्थ, समग्र आय का समग्र उत्पाद मूल्य को लिया जाता है । अपने इस उपागम में जो कृषि जोत में असमानता की समस्या का विवरण प्रस्तुत करता है, उसमें सबसे पहले हम कृषि व्यावसायिक आय के संकेन्द्रण का दो समय विन्दुओं पर अध्ययन करते हैं और यह अध्ययन इलाहाबाद जनपद से प्राप्त कृषि जोतों की आय के सम्बन्ध में है । यहॉ पर कृषि जोतों को उनके आकार के अनुसार बढ़ते हुये क्रम में रखा जाता है और कृषि जोतों का संचयी प्रतिशत प्राप्त किया जाता है और साथ-साथ कृषि तथा व्यावसायिक आय का भी प्रतिशत प्राप्त किया है और इस आधार पर हम लॉरेन्ज अनुपात की गणना करते हैं जो कृषि व्यावसायिक आय से संबंधित है और उसके आधार पर उपयुक्त वक्र खींचते है । सारणी 6.11 में इलाहाबाद जनपद मे नई तकनीकी के परिणामस्वरूप आय मे वृद्धि और उसके असमान वितरण को दिखाती हैं जिसमें मुख्य लाभकर्ता, बड़े कृषक हैं । इस आधार पर गिनी अनुपात 1982-83 से 1990-91 में बढ़कर 0.54 से बढ़कर 0.58 हो गया ।

सारणी-6.11

इलाहाबाद जनपद में फार्म आकार के आधार पर आय वितरण

फार्म आकार (एकड़ में)	1990-91 परिवारों की संख्या	संचयी परिवार	परिवारों का संचयी प्रतिशत	शुद्ध आय	शुद्ध आय का संचयी प्रतिशत	1983-84 परिवारों की संख्या	संचयी परिवार	परिवारों का सचयी प्रतिशत	शुद्ध आय
0-2.5	27 (30.00)	27 (30.00)	30.00	77,377 6.29	6.29	19 (17.73)	19 (17.27)	17.27	18,250 (4.71)
2.5 से 5.00	25 (27.78)	52 (57.78)	57.78	2,30,508 (18.73)	25.02	25 (22.73)	44 (40.00)	40.00	11,550 (2.98)
5.00 से 10.00	30 (33.33)	82 (91.11)	91.11	6,80,944 (55.33)	80.35	41 (37.27)	85 (77.27)	77.27	18,4750 (47.67)
10.00 से ऊपर	8 (8.89)	90 (100.00)	100.00	2,41,850 (19.65)	100.00	25 (22.73)	110 (100.00)	100.00	17,3000 (44.64)
योग	90 (100.00)			12,306,790 (100.00)		1100 (100.00)			38,7550 (100.00)

यहाँ पर यह उपयुक्त होगा कि हम कृषि जोत आकार व आय के बीच संबंध का सांख्यिकी विश्लेषण करें व देखें कि समस्या का क्या प्रभाव पड़ता है । हम इस सम्बन्ध को निम्न फलन के रुप में रख सकते हैं -

$$Y = a X^{b}$$

जहाँ Y = उत्पाद दर = समग्र उत्पादित क्षेत्र के प्रति एकड़ उत्पादित मात्रा का मूल्य

तथा X = कृषि जोत आकार (एकड़ में)

तथा a एवं b स्थिरांक हैं । इन फलनों की परिवर्तित स्थिति का लॉग रैखिक रूप से प्राप्त करने पर -

$$\log Y = \log a + b \log X$$

और इन समीकरणों के समाधान से निम्न समीकरण प्राप्त होता है -

$$\log Y = 3,0998 + 0.2981 \log X$$

इस फलन को वक्र में स्थापित करने पर 0.2981 उत्पादन की लोच, आगत X के संबंध में हुई । चूँकि उत्पादन की लोच धनात्मक है, इसका अभिप्राय यह है कि कृषि जोत आकार में वृद्धि के साथ उत्पादन में वृद्धि होगी । इस तरह उत्पादन लोच का मूल्य महत्वपूर्ण है । इसका मुख्य कारण नई तकनीकी को अपनाने तथा उर्वरकों व अन्य आगतों के बढ़ते प्रयोग से है । यह पर्याप्त रुप से स्थापित करता है कि हरित क्रांति के बाद आय में अंतराल बड़े व छोटे कृषकों के बीच बढ़ गया है । नई कृषि नीति विशेषकर पूंजी सघनता विधि से सम्बन्धित है और यह परम्परागत मानव श्रम आधारित तकनीकी से पूर्णतयाः परिवर्तित रूप है ।

अब यहाँ पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न यह होता है कि आय में बढ़ती हुई ये असमानताये क्या कृषि जोत परिवारों में भूमि के अधिक असमान वितरण के कारण हैं । इसका उत्तर नकारात्मक है, सारणी 6.12 में इलाहाबाद जनपद के भूमि कृषि जोतों के ऑकड़ों तथा प्रदर्शित ग्राफ से यह स्पष्ट है कि आय आय वितरण में असमानतायें कृषि जोत के समान वितरण की तुलना में भी बढ़ी हैं तथा साथ ही साथ 1980-81 से 1990-91 के बीच गिनी अनुपात भी 0.66 से घटकर 0.58 हो

सारणी-6.12

इलाहाबाद जनपद में कृषि जोतों का वितरण

कृषि जोत आकार	190-91 जोतों की संख्या	190-91 क्षेत्रफल हेक्टेअर (000)	जोत का संचयी प्रतिशत	क्षेत्रफल की संचयी आवृत्ति	1980-81 जोतों की सख्या	क्षेत्रफल हेक्टेअर (000)	जोत का संचयी प्रतिशत	क्षेत्रफल की संचयी आवृत्ति
0-1	373726 (73.73)	130.9 (26.74)	73.73	26.74	335679 (70.33)	120661 (22.19)	70.33	22.19
1-3	100546 (19.83)	163.5 (33.39)	93.56	60.13	103220 (21.63)	173129 (31.83)	91.96	54.02
3-5	19076 (3.77)	70.8 (14.46)	97.33	74.59	21389 (4.48)	81223 (14.94)	96.44	68.96
5- उससे ऊपर	13557 (2.67)	124.4 (25.41)	100.00	100.00	16975 (3.56)	168827 (31.04)	100.00	100.00
योग-	506905 (100.00)	489.6 (100.00)			477263 (100.00)	543840		

सर्वेक्षण से यह भी प्राप्त हुआ है कि छोटे कृषि आगतों पर अधिक फसल सघनता का कृषि जोत आकार और कार्यशील क्षेत्र में प्रति एकड़ उत्पादिता के विपरीत संबंध को दिखाता है और यही सम्बन्ध कुछ आकार वर्गों पर विनियोग प्राप्ति के सम्बन्ध में सही पाया गया । सबसे अधिक संसाधनों से लाभ मध्यम वर्ग 5 से 10 एकड़ को प्राप्त हुआ जिसे सारणी 6.13 मे आगत निर्गत अनुपात, कृषि जोत आकार के अनुसार औसत आकार एकड़ में उत्पादकता, शुद्ध उत्पाद, प्रति एकड़ उत्पाद, आगत अनुपात तथा कृषि जोतों की सख्या विवरण में दिखाया गया है । इससे यह प्राप्त हुआ कि इलाहाबाद जनपद की कृषि अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि उच्च फसल सघनता के बावजूद भी सीमान्त और लघु कृषकों (0 से 5 एकड़ जोत वाले कृषक) प्रति एकड़ ऊँचे उत्पादन को प्राप्त करने में असमर्थ हैं जैसा कि वे नवीन तकनीकी व हरित क्रांति के पूर्व प्राप्त करते हैं । आगत निर्गत विश्लेषण से हम ये पाते है कि 5 से 10 एकड़ वाले कृषक वर्ग का अधिकतम पूंजी उत्पाद अनुपात है और प्रति एकड़ उत्पादिता भी उच्चतम है । संसाधनों की कार्य कुशलता के दृष्टिकोण से भी कृषकों का यह वर्ग सर्वोच्च रहा है जैसा कि सारणी 6.13 में दिखाया गया है । विभिन्न वर्गों के कृषकों में आय वितरण की असमानता को सारणी 6.14 में विभिन्न कृषि जोत आकारों उन पर कृषि जोत परिवारों का प्रतिशत, शुद्ध आय प्रतिशत, कृषि जोतों का संचयी प्रतिशत तथा आय का संचयी प्रतिशत विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

सारणी-6.13

कृषि जोत आकार के अनुसार आगत - निर्गत अनुपात

कृषि जोत का आकार	औसत आकार (एकड़)	उत्पादकता (रू0)	शुद्ध निर्गत (रू0)	आगत प्रति एकड़ (रू0)	आगत/निर्गत अनुपात	जोत की संख्या
0-2.50	1.34	3453.91	1128.11	688.75	1.1.64	27
2.50-5.00	3.55	3855.68	1245.38	605.07	1 2.06	25
5.00-10.00	6.80	4653.33	1815.90	714.34	1.2.54	30
10.00 से ऊपर	13.79	3472.98	1308.71	764.18	1.1.71	8
योग-	439.11	1799001.00	1230679.00	568322.00		
औसत	4.88	4096.92	1512.88	698.64	1.2.15	

उत्पादकता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

प्रति एकड़ उत्पादकता = कृषिगत क्षेत्र के प्रति एकड़ समग्र उत्पाद का मूल्य

सारणी-6.14

इलाहाबाद जनपद में कृषि आय का वितरण (1990-91)

जोत का आकार	परिवार का प्रतिशत	शुद्ध आय का प्रतिशत	जोत आकार का संचयी प्रतिशत	आय का संचयी प्रतिशत
0-2.50	30.00	6.29	30.00	6.29
2.50-5.00	27.78	18.73	57.78	25.02
5.00-10.00	33.33	55.33	91.11	80.35
10.00-उससे ऊपर	8.89	19.65	100.00	100.00
योग	100.00	100.00		

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि कृषि जोतों का निम्नतम 30% वर्ग, कृषि आय से 6.29% अर्जित किया और लगभग 58% सीमान्त और लघु कृषकों के वर्ग, का कृषि आय अर्जन 25% रहा । इसके विपरीत कृषि जोतों का लगभग उच्च 9% वर्ग, ने 20% कृषि आय को अर्जित किया । यहाँ पर उस सीमा तक जहाँ सिंचाई आधार सीमान्त और लघु कृषकों की स्थिति इलाहाबाद जनपद के सोरांव और चाका विकास खण्डों के उच्च वर्ग, कृषि जोत परिवार के तुलनीय है । लघु कृषकों को अधिक सुविधाजनक और पूरे वर्ष, सुनिश्चित श्रम पूर्ति, उपलब्धि रही और इनकी उत्पादन स्थिति में पूंजी के स्थान पर श्रम प्रतिस्थापन पाया गया और इस कृषक वर्ग, के विभिन्न स्तरों पर फसल सघनता में अन्तर नहीं पाया गया और साथ ही साथ लघु कृषकों मे उच्च फसल सघनता को प्राप्त करने की ऊँची संभावनायें प्राप्त की गयी परन्तु सर्वेक्षण निदर्श, आँकड़ों में यह

प्राप्त किया गया कि कुल लागत अवयव मे आधुनिक आगतों का प्रतिशत कृषक परिवारों में वर्ग के साथ-साथ बढ़ता जाता है जैसा कि सारणी 6.15 व ग्राफ 7 मे प्रदर्शित किया गया है । इसी तरह विभिन्न कृषक वर्गों द्वारा कृषि उपकरणों के स्वामित्व में भी यही प्रवृत्ति पायी गयी -

सारणी-6.15

कुल लागत अवयवों में आधुनिक आगतों का प्रतिशत

आगत	फार्म - आकार (एकड़ में)		
	लघु (0-5)	मध्यम (5-10)	वृहत (10 एवं उससे ऊपर
1- बीज	18.42	18.89	19.53
2- खाद	9.98	16.35	24.46
3- सिंचाई	3.95	4.48	17.74
योग-	32.35	39.73	57.73

जैसा कि भविष्य में कृषि क्रियाओं की प्रवृत्तियों मे पूंजी सघनता में वृद्धि होती है, वैसे - वैसे व्यक्तिगत इकाइयों के छोटे कृषि जोत तुलनात्मक लाभ के दृष्टिकोण से अनुपयुक्त होते जायेंगे । वर्तमान सर्वेक्षण निदर्श से प्राप्त ऑकड़े यह दिखाते हैं कि इलाहाबाद जनपद के कृषि जोत परिवारों मे लगभग 30% पूर्ण तथा गैर आर्थिक जोते हैं और इन परिवारों की आय गरीबी रेखा के नीचे है और साथ ही साथ इन परिवारों की आय सामान्य और आवश्यक जीवन निर्वाह से भी कम है । गरीबी तथा जीवन निर्वाह के संदर्भ में बहुत से अनुमान किये गये हैं और हमारे शोध से

सम्बन्धित सर्वेक्षण इस बात का सुझाव देते हैं कि इस वर्ग के कृषक गरीबी रेखा के नीचे की आय अर्जित करते हैं ।

प्रस्तुत सर्वेक्षण के विवरण आधार पर क्षेत्रीय असमानताओं का भी विश्लेषण किया जा सकता है । चूँकि नई कृषि नीति का मुख्य विन्दु इसके चयनात्मक स्वरूप से सम्बन्धित है जिसमें अनुकूल सुविधा वाले क्षेत्रों का चुनाव तथा विशेषकर इनमें समृद्धशाली कृषकों जैसे बड़े कृषकों के चुनाव से सम्बन्धित है । इस नवीन कृषि नीति मे खाद, बीज और पानी का प्रयोग पर्याप्त सिंचाई सुविधा वाले और सुनिश्चित क्षेत्रों में हुआ है । इसके लाभ राज्य के अन्दर उन जनपदों में अधिक रहे हैं जहाँ या तो अच्छी वर्षा या पर्याप्त सिचाई व्यवस्था और व्यक्तिगत विनियोग व्यय हुये हैं। इस तरह नई तकनीकी का प्रयोग ऐसे क्षेत्रों में विशेषकर हुआ है जहाँ उत्पादकों का सामान्य जीवन स्तर तुलनात्मक रूप से ऊँचा रहा है और इसके कारण अन्तर्क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई है।[5] इलाहाबाद जनपद में कृषि विकास की असमान प्रकृति को उर्वरकों के प्रयोग, सिंचित क्षेत्रों का प्रतिशत और समग्र उत्पाद मूल्य के रूप में सारणी 6.16 में देखा जा सकता है -

सारणी-6.16

इलाहाबाद जनपद में निदर्श कृषकों के मध्य अन्तर्क्षेत्रीय कृषि उत्पादकता

क्षेत्र		खाद पर प्रति एकड़ व्यय (रू0 में)	आगत निर्गत सम्बन्ध रू0	
गंगापार	66.58	167.98	5796.11	1'2.62
जमुनापार	56.57	128.60	2563.77	1 1.52

5. कृष्णा भारद्वाज रीजनल डिफरेनशियेशन इन इण्डिया, ई0पी0 डब्ल्यू एनुअल नम्बर 1982.

इस तरह हम यह पाते हैं कि इलाहाबाद जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में नियोजित विनियोग के लाभों मे असमान विनियोग हुआ है । पूर्णतया क्षेत्रीय एवं भौगोलिक कारकों जैसे भूमि, जलवायु वर्षा. आदि जो विकास के साथ क्षेत्रीय असमानता उत्पन्न करते हैं उसमें क्षेत्रीय असमानता की वृद्धि में कृषि क्षेत्र में हुये विनियोग हुआ है। पूर्णतया क्षेत्रीय एवं भौगोलिक कारकों जैसे भूमि, जलवायु वर्षा आदि जो विकास के साथ क्षेत्रीय असमानता उत्पन्न करते हैं उसमें क्षेत्रीय असमानता की वृद्धि कृषि क्षेत्र में हुये विनियोग - व्ययों के कारण भी हुई है । कुछ समय पूर्व राज्य सरकार के आर्थिक व सांख्यिकी विभाग[6] ने कुछ आर्थिक निर्धारकों को तैयार किया था जिससे अन्तर्जनपदीय आर्थिक दशाओं और विशेषकर पिछड़े जनपदों का निर्धारण आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से हो सके । 1964-65 से 1968-69 के बीच औसत कृषि उत्पादन से सम्बन्धित क्षेत्रीय ऑकड़े यह दिखाते है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कृषि उत्पादिता सबसे न्यूनतम थी और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह सर्वोच्च थी और साथ ही साथ पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह पीछे पायी गयी । अपने अन्तर्जनपदीय आय और आर्थिक विवरणों में भी प्रो0 बलजीत ने कृषि उत्पादिता का लगभग यही अनुमान दिया ।[7]

इलाहाबाद जनपद पूर्वी उत्तर प्रदेश का भाग होने के कारण उसकी कृषि उत्पादिता उत्तर प्रदेश के मेरठ संभाग से बहुत कम है । हमारे प्रस्तुत सर्वेक्षण में यह असमानता इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि नवीन तकनीकी का कृषि आयों पर गंगापार व जमुनापार के क्षेत्रों में विपरीत प्रभाव पड़ा है । इन दो क्षेत्रों में कृषि उत्पादिता का तुलनात्मक अनुपात 1990-91 में 1982-83 की तुलना में अधिक था जैसे-जैसे पूंजी प्रधान उत्पादन की विधियाँ बढ़ती गयी वैसे-वैसे यह असमानता भी बढ़ती गयी।

---

6. इकनोमिक इण्डीकेटर्स, स्टेट प्लानिंग इंस्टीट्यूट, इकनोमिक एण्ड स्टैटिस्टिक्स डिपार्टमेण्ट, उ0प्र0, 1973

7. बलजीत सिंह . इण्टर डिस्ट्रिक्ट इन्कम्स एण्ड इकनोमिक प्रोफाइल्स ऑफ यू0पी0 ।

अध्याय-7

सारांश, निष्कर्ष एवं नीति - सुझाव

(SUMMARY, CONCLUSIONS AND POLICY RECOMMENDATIONS)

अध्याय-7

सारांश, निष्कर्ष एवं नीति-सुझाव

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायों मे भारतीय कृषि में विकास और विकास के साथ-साथ कृषि क्षेत्र मे असन्तुलनों व असमानताओं के विस्तृत विवरण के आधार पर अब हम शोध कार्य के साराश व निष्कर्ष को प्रस्तुत कर सकते हैं । इन निष्कर्षों के सदर्भ मे भारतीय कृषि के त्वरित विकास हेतु और उसमें व्याप्त असमानताओं व असन्तुलनों को दूर करने से सम्बन्धित कुछ नीतिपरक सुझाव भी प्रस्तुत कर सकते हैं । इस शोध कार्य में शोध विषय से संबंधित मुख्य प्राप्तियॉ व निष्कर्ष द्वितीयक ऑकड़ों तथा इलाहाबाद जनपद में किये गये सर्वेक्षण से प्राप्त ऑकड़ों के विश्लेषण से किया गया है ।

प्रथम अध्याय मे जहॉ शोध विषय का परिचय तथा उससे जुड़ी हुई बातों का उल्लेख किया गया है, वहीं प्रस्तुत शोध कार्य की आवश्यकता व औचित्य को स्थापित करने का प्रयास किया गया है । साथ ही साथ यहॉ शोध कार्य के प्रमुख उद्देश्य, शोध अध्ययन सम्बन्धी परिकल्पनाओं व प्राथमिक ऑकड़ों को प्राप्त करने और उनके विश्लेषण से संबंधित शोध-विधि तथा सर्वेक्षण आकार व निदर्श को स्पष्ट किया गया है । यहॉ इस शोध विषय की उपयुक्तता और आवश्यकता तथा इस सम्बन्ध में भावी दिशा निर्देश हेतु विषय से संबंधित उपलब्ध साहित्य तथा प्रमुख अध्ययनों, शोध कार्यों व सर्वेक्षण रिपोर्ट का अवलोकन व मूल्यांकन किया गया है ।

प्रस्तुत अध्याय में 1966 के पूर्व और उसके बाद कृषि क्षेत्र में हुये महत्वपूर्ण तकनीकी, संस्थागत आर्थिक व सामाजिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य मे इस बात को स्पष्ट करने पर विशेष बल दिया गया है । 1966 के बाद भारतीय परम्परावादी व

अवैज्ञानिक कृषि के स्थान पर नवीन कृषि व हरित क्रांति द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन व विकास संभव हुआ है वहीं इसके लाभों में असमान वितरण के कारण कृषि क्षेत्र मे असमानताओं व असन्तुलनों में लगातार वृद्धि हुई है । साथ ही साथ नवीन तकनीकी परिवर्तन के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में अनेक आर्थिक व सामाजिक दुष्परिणाम भी हुये हैं । नवीन कृषि नीति व हरित क्रांति के अन्तर्गत उन्नतशील बीज, उर्वरक व सिंचित क्षेत्रों के विवरण के साथ विभिन्न फसलों के उत्पादन व उत्पादिता मे हुये उल्लेखनीय वृद्धि को दिया गया है । कृषि क्षेत्र की इस वृद्धि और सफलता के आलोचनात्मक मूल्यांकन से यह भी स्पष्ट किया गया है कि इस नई कृषि नीति की सफलता कुछ विशेष राज्यों तथा कुछ विशेष फसलों के उत्पादन तक ही सीमित रही और साथ ही साथ खेतिहर मजदूर, भूमिहीन श्रमिकों तथा ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त गरीबी व बेरोजगारी के निवारण में कोई भी महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा । यहाँ अध्ययन में यह भी स्पष्ट किया गया है कि कृषि क्षेत्र में इन असमानताओं का कारण इस बात से भी है कि खाद, बीज सिंचाई व तकनीकी के प्रयोग में भी असमानतायें हैं तथा कृषि विकास कार्यों के संबंध में सरकार व बैंक आदि वित्तीय संस्थाओं द्वारा दी गयी साख व ऋण सुविधाओं में भी असमानता है । साथ ही इस अध्याय में विभिन्न राज्यों में आय तथा गरीबी रेखा के नीचे के लोगों के प्रतिशत विवरण से आय तथा रहन-सहन में अन्तर्राज्यीय असमानता को भी दिखाया गया है ।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में आर्थिक विकास की विभिन्न अवधारणाओं के साथ आर्थिक विकास व आर्थिक समृद्धि में अंतर दिखाया गया है और साथ ही साथ भारत के आर्थिक विकास प्रक्रिया में प्रस्तुत संवृद्धि मॉडलों और विभिन्न विकास व्यूहनीतियों का परीक्षण व विश्लेषण किया गया है । यहाँ भारतीय कृषि विकास और विकास के साथ असमानताओं की समस्या को आर्थिक विकास प्रक्रिया की उपज माना गया है । आर्थिक विकास को विभिन्न अवधारणाओं के रूप में स्पष्ट करते हुये इसे

आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया है और आर्थिक विकास को उस प्रक्रिया से जोड़ा गया है जिसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ-साथ में असमानताओं को दूर किया जाता है तथा सम्यक् रूप में लोगों की संतुष्टि प्राप्त की जाती है । इसी सम्बन्ध में प्रो0 रोस्टोव ने आर्थिक विकास को वह प्रक्रिया माना जिसमें कोई अर्थव्यवस्था विकास की विभिन्न दशाओं से गुजरती हुई मोटे तौर पर उठान अवस्था से स्वआत्मनिर्भरता दशा को प्राप्त करती है । इस रूप में भारतीय कृषि में 1966 के बाद नवीन तकनीकी व हरित क्रांति की उपलब्धियों के आधार पर इसे कृषि में उठान अवस्था माना जा सकता है पर जहाँ कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई है वहीं इस क्षेत्र में आर्थिक व सामाजिक समस्यायें भी उत्पन्न हुई है और कृषि क्षेत्र का व्यापक प्रभाव देश की आत्मनिर्भरता पर नहीं पड़ा है । इसी तरह आर्थिक विकास को संस्थागत तथा संरचनात्मक कारकों के परिवर्तन पर भी दिखाया जाता है और आर्थिक विकास को विस्तृत अर्थ में सामाजिक न्याय तथा सामाजिक समता प्राप्त करने से किया जाता है । देश के कृषि क्षेत्र में यद्यपि महत्वपूर्ण संस्थागत व संरचनात्मक परिवर्तन हुये हैं पर इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप देश में आर्थिक व सामाजिक समस्याओं में कमी न होकर कुछ नये संदर्भों में वृद्धि हुई है । इस तरह देश का कृषि विकास देश के सम्यक् आर्थिक विकास हेतु सहयोगी नहीं बन सका है ।

आर्थिक विकास और उसकी प्रक्रिया में विकास की व्यूहनीति और आधारभूत संरचना महत्वपूर्ण होती है और इस अध्याय में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्रयुक्त आर्थिक सिद्धान्तों व मॉडलों के आधार को भी प्रस्तुत किया गया है । इस तरह प्रथम पंचवर्षीय योजना में मोटे तौर पर हैरॉड-डोमर मॉडल की व्यूहनीति ली गयी थी और द्वितीय पंचवर्षीय योजना महालनोविस मॉडल पर आधारित है । इसी प्रकार विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बहु क्षेत्रीय मॉडल, रूद्रा, सलूजा तथा श्री निवासन का अंतः संगति

मॉडल, बर्गस्मैन आदि का रेखीय अनुकूलतम मॉडल तथा चक्रवर्ती, पारिख व तेन्डुलकर आदि के मॉडलों का प्रयोग किया गया है । इन मॉडलों के प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य योजना के प्रमुख उद्देश्यों में वह आधार उत्पन्न करने से था जिससे उनमें आंतरिक संगति प्राप्त की जा सके और इस सम्बन्ध में उचित नीति निर्धारित की जा सके । साथ ही विकास के उद्देश्यों के लिये मॉडलों का मूल्यांकन करके उपयुक्त विकासात्मक परियोजना तैयार करने से था पर विकास के इन मॉडलों के आधार पर किसी भी योजना में एक निश्चित उद्देश्य को न लेकर अनेक उद्देश्यों को लिया गया तथा साथ ही मॉडलों में प्रयुक्त चरों को मोटे तौर पर व्यक्तिपरक रूप में रखा गया जिनसे सामान्य तुलनात्मक निष्कर्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता । विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्रयुक्त विकास मॉडलों व व्यूहनीतियों में यह कहा जा सकता है कि सातवीं पंचवर्षीय योजना की विकास व्यूहनीति महत्वपूर्ण रूप से छठी योजना की विकास व्यूहनीति से भिन्न रखी गयी थी । इस योजना की विकास नीते में बड़े महत्वपूर्ण ढंग से बेरोजगारी, गरीबी, क्षेत्रीय असमानताओं और पूरे सामाजिक न्याय की समस्या पर प्रत्यक्ष प्रहार की नीति अपनायी गयी थी ।

भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं में विकास व्यूहनीति व आर्थिक मॉडलों के रूप में नेहरु बनाम गाँधी मॉडल का भी विश्लेषण एवं परीक्षण किया गया है । भारतीय नियोजन में 1977 के पूर्व विकास मॉडल का स्वरूप मोटे तौर पर नेहरु के औद्योगीकरण व वृहत् उद्योगों के विकास मॉडल पर आधारित था जिसके अन्तर्गत वृहत् औद्योगिक विकास द्वारा विकास आधार को सुदृढ़ बनाना व विदेशी निर्भरता को कम करना था पर समृद्धि के नेहरु मॉडल में न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन निर्वाह तथा गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले गरीब व बेरोजगार लोगों के विकास का आधार प्राप्त नहीं होता 1977 के बाद जनता पार्टी के समाजवादी दृष्टिकोण में गाँधी विकास मॉडल परिलक्षित होता है जिसमें ग्रामीण व कृषि क्षेत्र के विकास पर विशेष बल दिया गया और ग्रामीण

औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने तथा अतिरिक्त आय व रोजगार को सृजित करने की व्यूहनीति बनायी गयी । नेहरू एवं गाँधी मॉडल के समन्वय व मूल्यांकन से निष्कर्ष रूप में यह प्राप्त हुआ कि सामाजिक न्याय एवं ग्रामीण विकास पर विशेष बल देने के परिणामस्वरूप देश की आर्थिक स्थिति में गंभीर सकट उत्पन्न होने के कारण आठवीं पचवर्षीय योजना में उदारीकरण नीति के आधार पर कुछ नये संदर्भों व परिवर्तित रूप में नेहरु के विकास मॉडल को पुन महत्व दिया गया ।

यहाँ पर विभिन्न योजनाओं में प्रयुक्त मॉडलों व व्यूहनीतियों के आधार पर विभिन्न पचवर्षीय योजना मे किये गये प्रयासों की उपलब्धियों व असफलताओं का सक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं को महत्वपूर्ण कार्यक्रमों व नीतियों के आधार पर निर्मित किया गया था पर मोटे तौर पर विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति मे यह योजनाये प्राय. असफल रहीं । यद्यपि प्रथम पचवर्षीय योजना एक प्रारम्भिक प्रयास के रूप में महत्वपूर्ण सफलताओं के साथ भावी विकास आधार को प्रस्तुत करने में सफल रही और द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने भी देश के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की पर देश के विकास उद्देश्यों के अनुरूप यह नहीं बन सकी । तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास की प्राथमिकता के साथ आधारभूत उद्योगों के विकास पर भी बल दिया गया पर इस समयावधि मे दो विदेशी आक्रमणों के कारण विकास कार्यक्रम को स्थगित करना पडा । चौथी पंचवर्षीय योजना में गरीबी हटाओ तथा आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय को प्रारम्भ करने का प्रारम्भिक प्रयास किया गया जिसका वृहत् स्वरूप पाँचवीं व छठी योजनाओं में देखा जा सकता है । छठी व विशेषकर सातवीं योजना मे कृषि व संबंधित क्षेत्रों में रोजगार संभावनाओं की वृद्धि, लघु एवं छोटे स्तर की स्वरोजगार इकाइयों को प्रोत्साहन, निम्न व कमजोर लोगों के लिये न्यूनतम आवश्यकता योजना आदि के रूप में विशेष ग्रामीण विकास सम्बन्धी राष्ट्रीय परियोजना को क्रियान्वित किया गया ।

विभिन्न पंचवर्षीय योजना मे देश के विभिन्न क्षेत्रों मे अनेक उपलब्धियों के साथ-साथ कुछ असफलताओं का भी वर्णन किया जा सकता है । विभिन्न पचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर की जीवन सुविधा को उत्पन्न करना संभव न हो सका। साथ ही साथ गरीबी, बेरोजगारी एवं निम्न जीवन स्तर के साथ देश की 40% जनसख्या गरीबी का जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य है । इसी प्रकार पिछले 40 वर्षों की योजनावधि में आय तथा सम्पत्ति की असमानता के संदर्भ मे सरकारी प्रयास द्वारा पुनर्वितरण तथा वितरणात्मक सामाजिक न्याय में भी कोई निश्चित सफलता प्राप्त नहीं हुई है । इस प्रकार विभिनन योजनाओं की उपलब्धियों एवं असफलताओं के संदर्भ मे यह सारांशत कहा जा सकता है कि जहाँ कृषि के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण विकास हुये हैं वहीं ग्रामीण व कृषि क्षेत्र मे सामाजिक असमानताये, गरीबी व बेरोजगारी मे कोई सुधार नहीं हुआ है । अत पचवर्षीय योजनाओं के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देश मे विकास के साथ-साथ असमानताओं को दूर कर तीव्र आर्थिक विकास करना ही देश की योजनाओं का लक्ष्य होना चाहिये ।

आर्थिक विकास व विकास व्यूहनीतियों तथा पंचवर्षीय योजनाओं की प्राप्तियों के विश्लेषण के बाद अध्याय-3 में प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि विकास तथा उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । कृषि की प्राथमिकता व विकास के दृष्टिकोण से प्रथम पचवर्षीय योजना एक महत्वपूर्ण प्रयास मानी जा सकती है । कृषि उत्पादन के लक्ष्य व प्राप्तियों के संदर्भ में यह देखा गया है कि इस योजना मे कृषि क्षेत्र में उपलब्धि विभिन्न फसलों के उत्पादन में लक्ष्य से कहीं अधिक हुई थी पर इस योजना में कृषि क्षेत्र मे कोई भी संस्थागत परिवर्तन नहीं किये जा सके और मोटे तौर पर कृषि परम्परावादी व पिछड़ी अवस्था में थी । द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे कृषि क्षेत्र में 25 मिलियन एकड़ की वृद्धि हुई और इसी तरह फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में भी 35 मिलियन एकड़ की

वृद्धि हुई तथा सिंचित क्षेत्र भी 5 मिलियन एकड़ के हिसाब से बढ़ा । दूसरी योजना मे केन्द्रीय और राज्य सरकारों की कृषि योजनाओं में कुल 4800 करोड़ रूपये मे सार्वजनिक क्षेत्र के लिये कुल राशि का 19% रखा गया जबकि पहली योजना मे यह केवल 8% था इस योजना मे खेती के उपकरणों मे सुधार करने तथा उन्हे उचित मूल्य पर उपलब्ध करने हेतु सरकारी योजनाओं को क्रियान्वित किया गया । इनका उद्देश्य यह था कि इस योजना के अंत तक देश की बढ़ी जनसख्या के लिये पर्याप्त खाद्य सामग्री उपलब्ध हो सके और विकासोन्मुख औद्योगिक व्यवस्था हेतु कच्चे माल का उत्पादन हो सके। जहाँ तक तृतीय योजना में कृषि विकास का सम्बन्ध है नियोजकों का यह विचार था कि कृषि उत्पादन के कार्यक्रमों तथा कृषि विकास प्रयत्नों मे किसी भी रूप में वित्तीय या अन्य साधनों का अभाव न हो । इसके अन्तर्गत विशेषकर कृषि सहकारिता एवं सामुदायिक विकास और सिंचाई कार्यक्रमों के समन्वय पर अधिक बल दिया गया । साथ ही साथ सहकारी संस्थाओं एंव सहकारी बैंकों से ऋण की आपूर्ति को विस्तृत करने पर जोर दिया गया । इस योजना में विभिन्न खाद्यान्न फसलों के उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से दूसरी योजना की औसत पैदावार से प्रति एकड़ चावल की पैदावार 27.5%, गेहूँ की 20%, तिलहन की 11% तथा कपास की 14%, पटसन की 16% तथा गन्ने की 18% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया । इस योजना मे व्यावसायिक फसलों विशेषकर कपास, पटसन, तिलहन उत्पादन बढ़ाने के लिये विशेष प्रयत्न किया गया । कृषि विकास के प्रभावों के व्यापक प्रचार प्रसार हेतु अनेक कृषि विद्यालयों एवं कृषि अनुसंधान संस्थानों को सुदृढ़ बनाने का लक्ष्य रखा गया । चौथी पचवर्षीय योजना के संदर्भ मे कृषि विकास में प्रमुख रूप से दो लक्ष्य रखे गये जिसमे प्रथम अगले दस वर्षों मे 5% की दर से उपज में वृद्धि करना था और गाँवों की आबादी के बड़े से बड़े हिस्से को विकास कार्यक्रम के लाभों में सम्मिलित करने से था । इस योजना मे खेती की उपज बढ़ाने के लिये विज्ञान व तकनीकी को सर्वाधिक महत्व देने के निर्णय लिये गये तथा साथ ही साथ किसानों की शिक्षा व प्रशिक्षण में जटिलता और मशीनों के उपयोग पर आधारित उत्पादन

कार्यक्रम को पूरा करने के लिये बल दिया गया । पॉचवीं योजना के प्रमुख उद्देश्यों में गरीबी निवारण, आत्मनिर्भरता, आवश्यक न्यूनतम विकास दर को प्राप्त करने तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के विकास हेतु कृषि विकास कार्यक्रम व लक्ष्य निर्धारित किये गये इस योजना मे कृषि विकास से संबंधित महत्वपूर्ण बात यह है कि कृषि उत्पादन का लक्ष्य पूरे पॉच वर्षों की समयावधि हेतु निर्धारित किया गया और चौथी योजना मे 3.9% वार्षिक की वृद्धि दर की तुलना में इस योजना में कृषि विकास की दर को 4.2% किया गया । इस योजना मे कृषि विकास की तकनीकी व्यूहनीति व्यापक स्तर पर शुष्क कृषि नीति के प्रयोग व सिंचित क्षेत्रों में उन्नतशील बीजों के प्रयोग को बढ़ावा देने आदि से था । इस योजना मे कृषि विकास के सम्बन्ध में ग्रामीण निर्धनता निवारण हेतु विशेष कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया तथा कृषि व फसलों के विकास के साथ-साथ सहायक कार्यों व रोजगार अवसरों के सृजन पर भी बल दिया गया । छठी योजना में कृषि विकास हेतु भूमि सुधार कार्यक्रमों की गति को तेज करना, प्रभावी राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा पद्धति के रुप मे कृषिएवंसंवृद्धि को न केवल बनाये रखना अपितु इसे ग्रामीण क्षेत्रों मे आय और रोजगार सृजन के उत्प्रेरक के रूप मे बनाना तथा उत्पादन, संरक्षण विपणन और वितरण की आवश्यकताओं पर एकीकृत रूप में ध्यान देकर उत्पादकों और उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं । इस योजना मे कृषि उत्पादन व उत्पादकता दोनों के स्तर बढ़ने के सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रगति का पता चलता है । इसमे मुख्य रूप से बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये खाद्यान्नों के उत्पादन व दालों के उत्पादन पर विशेष बल दिया गया और तिलहन के उत्पादन मे आत्मनिर्भरता व खाद्य तेलों को समाप्त करने का उद्देश्य रखा गया था । इसी तरह कृषि विकास के सम्बन्ध मे सातवीं पंचवर्षीय योजना मे खाद्य उत्पादन जो 1978-79 में 132 मि.टन था वह 1983-84 में बढ़कर 151.5 मि0टन हो गया और साथ ही साथ इस योजनाकाल में कुल उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर 4% तथा मूल्य वृद्धि

2.5% रही । वाणिज्यिक फसलों में तिलहनों की उत्पादन वृद्धि दर 9.7% तथा रूई, पटसन में 4.8% तथा गन्ने के उत्पादन मे 3.5% रही । इस योजना मे अतिरिक्त उत्पादन छोटे व सीमांत कृषकों के विकास पर विशेष बल दिया गया तथा कृषि विकास विधि मे सिचाई सुविधाओं में वृद्धि को केन्द्रीय महत्व दिया गया । अत सूखा प्रेरित क्षेत्रों, जनजातीय व पिछडे क्षेत्रों मे मध्यम या छोटी सिचाई योजनाओं का विस्तार किया गया ।

शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय में कृषि क्षेत्र मे नई तकनीकी व हरित क्रांति के प्रभावों का विश्लेषण किया गया है । यहाँ इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि 1966 के पूर्व कृषि उत्पादन, उत्पादिता तथा कृषि आगतों के प्रयोग की क्या स्थिति थी और 1966 के बाद नई तकनीकी व हरित क्रांति के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। 1966 के पूर्व कृषि विकास तथा सामुदायिक विकास पर विशेष महत्व दिया गया और खाद्यान्नों का उत्पादन 1951-52 में 51.2 मीट्रिक टन था जो 1955-56 में बढ़कर 56.0 मीट्रिक टन हो गया । यद्यपि इस योजना में कृषि क्षेत्र में आशा से अधिक सफलता मिली पर कृषि क्षेत्र में कोई स्थायी या तकनीकी सुधार न हो सके । द्वितीय योजना मे भारी उद्योगों को महत्व देने के कारण कृषि क्षेत्र की प्राथमिकता को महत्व नहीं दिया गया । इस तरह कृषि, सिंचाई आदि का व्यय इस योजना में केवल 20% हो गया जबकि प्रथम योजना मे यह 30% था । 1951-61 के प्रथम दशक में कृषि उत्पादन के संबंध में कोई निश्चित प्रवृत्ति नहीं पायी गयी । इस योजना के अंतिम वर्ष में खाद्यान्न उत्पादन संशोधित लक्ष्य पर पहुँच गया था फिर भी पिछले वर्ष उत्पादन की कमी के कारण खाद्यान्न मूल्यों में भारी वृद्धि हुई । तीसरी योजना में कृषि क्षेत्र को पुन प्राथमिकता दी गई और 30-33% तक उत्पादन में वृद्धि का विचार प्रस्तुत किया गया पर इस योजना में कुछ ऐसी राजनैतिक स्थितियाँ उत्पन्न हई जिससे संसाधनों का प्रयोग सुरक्षा कार्यों की ओर मोड़ना पड़ा । इस तरह प्रथम तीन

वर्षों में उत्पादन मे लगभग अवरोध अवस्था विद्यमान थी पर 1964-65 मे पर्याप्त वृद्धि हुई परन्तु अगले दो वर्षों मे अत्यन्त सूखे के कारण उत्पादन मे भारी गिरावट आयी और 1965-66 मे खाद्यान्न उत्पादन लगभग 20% कम हो गया । भारतीय कृषि के 1966 के पूर्व स्थिति एक परम्परागत कृषि के रूप मे थी । देश में अत्यधिक खाद्यान्नों को आयात एवं निम्न कृषि की उत्पादिता के कारण कृषि विकास में कुछ गुणात्मक परिवर्तन किये गये जिससे खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता के साथ उत्पादन एव उत्पादिता मे वृद्धि की जा सके । हरित क्रांति को मोटे तौर पर कृषि आगतों मे क्रांति भी माना जाता है । 1967-68 से 1971-72 तक के चार वर्षों में उन्नतशील बीजों का क्षेत्र 5% से बढ़कर 15% हो गया । इन उन्नतशील बीजों के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र 1968-69 में 9.2 मिलियन हेक्टेअर से बढ़कर 38.0 मि.हे. 1977-78 में हो गया । नई तकनीक के प्रादुर्भाव से उर्वरकों का प्रयोग 7.84 लाख टन 1965-66 से बढ़कर 1974-75 में 26.0 लाख टन तथा 1977-78 में 43.0 लाख टन हो गया । हरित क्रांति तथा नई कृषि नीति में कीटनाशक दवाइयों का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । भारत में नियोजन प्रारम्भ के पूर्व कीटनाशकों का प्रयोग लगभग नगण्य था । 1976-77 में किये गये एक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि देश में बोये गये कुल क्षेत्र का 19.8% भाग विभिन्न बीमारियों से प्रभावित था जबकि कीटनाशकों से उपचारित क्षेत्र 7.2% था । इसे ध्यानय में रखते हुये सातवीं पंचवर्षीय योजना मे 1989-90 तक पचहत्तर हजार टन कीटनाशकों का प्रयोग लक्ष्य रखा गया है। नवीन कृषि नीति में यन्त्रीकरण के परिणामस्वरूप एक नये दृष्टिकोण का विकास हुआ है। इसमें कृषि कार्य कम समय व उचित समय पर पूरा हो जाता है । यह अनुमान किया जाता है कि भारत में प्रतिवर्ष 80,000 ट्रैक्टर की मॉग की जाती है । पजाब, हरियाणा, उ0प्र0 के कृषक ट्रैक्टर के प्रयोग में अधिक सक्रिय हैं । इसी प्रकार थ्रेशर, तेल-इजन, विद्युत चालित पम्प सेट, सुधरे व उन्नत हल आदि का प्रयोग भी तेजी से बढ़ रहा है । हरित क्रांति के क्रांतिकारी मोड़ से पूर्व दो दशकों तक भारतीय कृषि की तकनीकी संरचना

निम्न स्तर की थी । उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि के कारण देश मे विशाल खाद्यान्न भण्डार को भी सृजित किया जा सका । हरित क्रांति की अवधि मे जहाँ कृषि उत्पादनों में आशातीत वृद्धि हुई वहीं फसलों की उत्पादिता मे भी वृद्धि हुई । उत्पादिकता के संदर्भ में गेहूँ की फसल को विशेष सफलता मिली है । समस्त खाद्यान्नों की औसत उपज 1967-68 में 783 किग्रा/हेक्टे. थी 1970-71 में बढ़कर 872 किग्रा./हेक्टे., 1989-90 में 1349 किग्रा./ हो गयी । इसी प्रकार चावल, गन्ना, ज्वार बाजरा, गेहूँ, मक्का आदि फसलों की औसत उपज मे वृद्धि हुई है । कृषि को अब मात्र जीवन निर्वाह का साधन न मानकर इसके व्यावसायिक गतिविधि की व्यवस्था की गई है और लाभ कमाने के लिये नई तकनीकी के प्रयोग की तत्परता बढ़ी है। हरित क्रांति के कारण अब कृषक अच्छे अनाजों व व्यापारिक फसलों की ओर अग्रसर हुये हैं और छोटे कृषकों का झुकाव सब्जी की फसलों के प्रति बढ़ा है । इसके परिणामस्वरूप फसलों की संरचना में आधारभूत परिवर्तन आया है । इसके कारण कृषिगत रोजगार मे भी वृद्धि हई है, इससे जहाँ एक ओर यन्त्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी हैं वहीं दूसरी ओर फसल सघनता बढ़ी है । पंजाब में वर्तमान तकनीक व यन्त्रीकरण के अध्ययन द्वारा यह विदित हुआ है कि खेतों में मानव श्रम का उपयोग बढ़ा है क्योंकि हरित क्रांति से एक ओर फसल सघनता और दूसरी ओर प्रति एकड़ उत्पादिता में वृद्धि हुई है ।

नई तकनीकी व हरित क्रांति के अनेक आर्थिक व सामाजिक प्रभाव हुये है जो देश के संतुलित विकास में बाधक हैं । मुख्य रूप यह यह क्रांति पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों मे ही आयी है तथा आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु व केरल में धान की फसलों पर भी वैज्ञानिक कृषि का प्रणाली का प्रभाव पड़ा है । देश के उन भागों में जहाँ सिंचाई की सुविधायें नहीं है या बहुत कम है और जो कुल भूमि का लगभग 78% है, वहाँ हरित क्रांति को सफलता नहीं मिली है । हरित क्रांति में मुख्य

सफलता गेहूँ की फसल में मिली है और आंशिक सफलता धान की फसल में मिली है, ज्वार, बाजरा, मक्का व गन्ना की फसलों में सफलता अत्यन्त सीमित है । इसी तरह दलहन और तिलहन की फसलों पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है अपितु अधिक गेहूँ की खेती का तुलनात्मक रूप से इनकी खेती पर कुप्रभाव पड़ा है । हरित क्रांति की यह बड़ी आलोचना रही है कि केवल बड़े किसान खेती की इस तकनीक को अपनाकर आय वृद्धि तथा उत्पादन में वृद्धि कर सके हैं । पूंजीवादी खेती की इस पद्धति से सामाजिक व आर्थिक असमानता बढ़ी है । उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के फार्म सर्वेक्षण में यह सिद्ध हुआ है कि कृषि क्षेत्र की असमानतायें न केवल भूस्वामित्व की विषमता के कारण बढ़ी हैं बल्कि कृषिगत साधनों ऋण व तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति और प्रयोग करने में असमानताओं के फलस्वरूप भी बढ़ा हैं । इससे ग्रामीण क्षेत्रों में शांति व संतोष के विपरीत छोटे कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों तथा बटाई करने वाले कृषकों मे असन्तोष की भावना बढ़ी है और इस तरह ग्रामीण कृषि क्षेत्र मे सामाजिक परिवर्तन लाने के स्थान पर नये सामाजिक विवादों को जन्म मिला है । इस तरह जब तक हरित क्रांति को भूमि सुधारों के साथ नहीं जोड़ा जायेगा इसके गंभीर परिणाम प्राप्त होंगे । यह देखा जा सकता है कि हरित क्रांति के लाभों की प्राप्ति निर्धन व भूमिहीन कृषकों को नहीं है बल्कि यह कुछ विशिष्ट सुविधाजनक अल्पसंख्यक बड़े व मध्यम कृषकों को है। कृषि क्षेत्र मे यह बढ़ी हुई असमानता और आय में वितरण ग्रामीण परिवारों मे व्यक्तिगत आदेयों के बंटवारे में देखी जा सकती है । यह देखा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र में कुल आदेय का एक बहुत बड़ा हिस्सा कुछ लोगों तक संकेन्द्रित है । उदाहरण के लिये 1971 में ग्रामीण जनसंख्या के 30% ऊपरी वर्ग के पास कुल आदेयों का 82% भाग था जबकि दूसरी ओर निम्न वर्ग के 20% ग्रामीण परिवारों के पास 1% से कम आदेय थे। नई तकनीकी के प्रादुर्भाव से कृषि क्षेत्र में कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में कृषि के व्यापारीकरण की तीव्र प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई हैं । कृषि पर आधारित किराये के मजदूर में परिवर्तन, ग्रामीण जनसंख्या का कृषि कार्य में गिरता दर और दुष्कर रोजगार अवसरों

का उदय होना पर इन अध्ययनों के आधार पर कृषि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरियों के बारे में सामान्य निष्कर्ष नहीं लगाया जा सकता । इस तरह पिछले दशकों के अनुभव यह दिखाते हैं कि जबकि कृषि श्रमिकों की पूर्ति मे वृद्धि और संस्थागत कारक श्रमिकों की मजदूरी के लिये सौदेबाजी शक्ति को कम करते है । कृषि उत्पादन के सम्बन्ध में असमानता के कारण राज्यों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति में क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि हुई है । इन क्षेत्रों में जहाँ कृषि उत्पादन व उत्पादिता में कोई सुधार नहीं हुआ है, वहीं गरीबी तथा बेरोजगारी मे वृद्धि हुई है ।

अध्याय 5 में भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी तथा बेरोजगारी की भीषण समस्या का वर्णन है जो कि 1947 से ही विद्यमान थी । विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करना तथा गरीबी उन्मूलन के द्वारा समृद्ध समाज का निर्माण करना था । यह विचार व्यक्त किया गया क उन लोगों के जीवन स्तर को रोजगार के अवसरों में वृद्धि, उत्पादन तथा सामाजिक सेवाओं के माध्यम से ऊपर उठाया जाये जो कि निर्धनता के निम्नतम स्तर पर जीवनयापन कर रहे हैं । वर्तमान समय में गरीबी का आयाम और प्रसार योजना के प्रारम्भिक दशकों की तुलना मे अधिक है और लगभग 40% से अधिक लोग निम्न जीवनयापन करने के लिये मजबूर है परन्तु गरीबी की समस्या ग्रामीण क्षेत्रों मे अधिक भयकर है । गरीबी सम्बन्धी विभिन्न अनुमानों को विभिन्न अर्थशास्त्रियों पी0डी0 ओझा, डॉ0 कोस्टा, पी0के0 वर्धन, बी0एस0 मिन्हाज, मॉण्टेक आहलूवालिया, दाण्डेकर एव रथ आदि ने अपने-अपने दृष्टिकोण से दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों को आसानी से सीमान्त कृषकों, भूमिहीन कृषि श्रमिकों, ग्रामीण काश्तकारों तथा परम्परागत व्यवसायों में लगे लोगों के रूप मे देखा जा सकता है । वास्तव में ग्रामीण क्षेत्र में सभी बेरोजगार व्यक्ति, अर्द्धरोजगार व्यक्ति गरीबी की श्रेणी में आते हैं क्योंकि उनकी उत्पादकता बहुत निम्न है तथा मजदूरी भी निम्न है । कुछ पिछड़े वर्ग तथा अनुसूचित तथा अनुसूचित जनजातियों के लोग भी निर्धनता रेखा के नीचे

आते हैं। गरीबी सामान्यतया निम्न आय, निम्न बचत और विनियोग से प्रेरित निम्न रोजगार स्तर और आय के दुष्चक्र में देखी जाती है । इस चक्र के विस्तार में निम्न उत्पादकता, बाजारी अपूर्णता, परम्परागत तकनीकी ज्ञान तथा अति जनसंख्या तथा शक्ति के संकेन्द्रण आदि आते हैं । उत्पादन प्राक्रिया मे एक व्यक्ति अपने आदेयों से प्राप्त करता है । योजना के दुष्परिणामों के कारण आदेयों के उचित बटवारे के अभाव में उत्पादक रोजगार देना सभव नहीं हो पाया है । ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन हेतु नीतियों एवं योजनाओं के कार्यक्रमों की विफलता से लाभदायक रोजगार उत्पन्न नहीं हो पाये हैं । ग्रामीण क्षेत्रों में सही अर्थ में गरीबी का निराकरण तभी संभव है जबकि उत्पादक रोजगार में वृद्धि हो सके ।

देश में गरीबी की समस्या के साथ ही साथ एक व्यापक जनसमूह मे बेरोजगारी की समस्या जुड़ी हुई है । बेरोजगारी की यह समस्या ग्रामीण क्षेत्र में अधिक व्यापक और गहन है । समाज में उत्पादक रोजगार में कमी के कारण विभिन्न लोगों की आवश्यक अनिवार्यताये भी पूरी नहीं हो पाती है और वे अल्पपोषण व कुपोषण के शिकार हो जाते हैं । इसके परिणामस्वरूप उनकी क्षमता घट जाती है और आय की संभावनाये कम हो जाती हैं । कृषि क्षेत्र मे मौसमी बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगारी का दूसरा पहलू है । ग्रामीण क्षेत्र में श्रमिकों की गतिशीलता विशेषकर महिला व बाल-श्रमिकों की गतिशीलता बहुत सीमित है जिससे ऊँची मजदूरी के लाभों से वे वंचित रहते हैं । पिछले 1950 और 1960 के दशकों में आर्थिक विकास के चिन्तकों में कुल राष्ट्रीय आय और वृद्धि के स्थान पर सामाजिक न्याय के साथ वृद्धि महत्वपूर्ण हो गया है । इसके अन्तर्गत वितरणात्मक न्याय को प्राप्त करने के लिये गरीबी निवारण और रोजगार मूलक नीतियाँ व कार्यक्रम चलाये गये हैं । निम्न आय वर्ग और जनसख्या के निर्धन लोगों के लिये अनेक परियोजनायें तथा कार्यक्रम लागू किये गये हैं और इन कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण धनराशि व्यय की जा रही है । समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

का प्रारम्भ भारत में 1970 के दशक मे कुछ विशेष निर्धारित लक्ष्य वर्ग के लिये किया गया जिसमे लघु कृषकों के विकास की एजेन्सी, सीमान्त कृषकों की एजेन्सी तथा कृषि श्रमिक सम्बन्धित हैं जिसमें नई तकनीकी व हरित क्रांति के कारण उत्पन्न असमानता को दूर करके इन निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके । आई.आर.डी.पी. कार्यक्रम अब भी निर्धनों मे निर्धनतम वर्ग के लिये चल रहा है जिसमे नये निर्देशों के अनुसार कटान विन्दु के वार्षिक परिवार को 4800/- रूपये रखा गया हे । यद्यपि छठी योजना मे इन परिवारों की आय को 6400 रूपये रखा गया पर नये निर्देशों के अनुसार ऐसे परिवार को 3500/- से कम वार्षिक आय के हैं उन्हें 4800/- के वार्षिक आय स्तर पर लाने से सम्बन्धित किया जायेगा । 4800/- से 6400 रूपये के वार्षिक आय वाले परिवारों को गरीब परिवारों की श्रेणी मे ही रखा गया है पर यह आशा की जाती है कि विकास के अन्य कार्यक्रमों में वे अपने प्रयास से ही ऊपर उठ सकेगे । राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 38वें चक्र के अनुसार विभिन्न आय वाले गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के विभाजन को व्यक्त किया गया है । ग्रामीण क्षेत्रों मे अतिरिक्त रोजगार अवसरों को उत्पन्न करने के लिये कई रोजगार कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं - इनमें रोजगार गारण्टी योजना, रोजगार के लिये खाद्य कार्यक्रम, लघु किसान एजेन्सी, सीमान्त किसान व कृषि मजदूर कार्यक्रम, सूखा क्षेत्र कार्यक्रम आदि । छठी योजना मे यह सुझाव दिया गया कि इस प्रकार बहुत से कार्यक्रम जो ग्राम निर्धनों व बेरोजगारों के लिये बहुविध एजेन्सियों द्वारा चलाये जाते हैं उन्हें समाप्त कर उनका प्रतिस्थापन समग्र देश के लिये एवं समन्वित कार्यक्रम द्वारा किया जाना चाहिये। निर्धनता पर सीधा प्रहार करने के लिये यह अनुभव किया गया कि ऐसे कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये जो गरीबों को उत्पादक परिसम्पत्ति या कौशल से सम्पन्न कर दे ताकि वे इनका प्रयोग लाभदायक ढंग से अधिक आय कमाने के लिये कर सकें । ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार जुटाने उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करने तथा ग्रामीण जीवन को बेहतर बनाने के उद्देश्य से 1983 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम प्रारम्भ किया

गया । रोजगार में भूमिहीन मजदूरों, महिलाओं, अनुसूचित जातियों व जनजातियों को प्राथमिक दी जाती है । राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम के सात वर्षों तक लगातार चलाये जाने के कारण ग्राम रोजगार प्रोग्राम देश भर में 55% पंचायतों तक ही पहुँच पाये हैं । इस योजना का प्रशासन ग्राम पंचायतों के आधीन होगा और इस प्रकार भारत में रहने वाले 440 लाख परिवार जो निर्धनता रेखा के नीचे है, ग्राम रोजगार कार्यक्रम से लाभ उठा सकेंगे । जवाहर रोजगार योजना ग्रामीण निर्धनों के लिये अधिक रोजगार उपलब्ध कराने की दृष्टि से अत्यंत सराहनीय रही है और यह बात भी महत्वपूर्ण रही है कि केन्द्र इस योजना के लिये 80% वित्त प्रबन्ध करेगा और राज्यों को केवल 20% वित्त प्रबन्ध करना होगा । इससे राज्यों के लिये इसका कार्यक्षेत्र बढ़ाना संभव हो सकेगा ताकि अन्तत 100% पंचायतें इसके आधीन लायी जा सकेंगी । इसमे स्त्रियों के लिये 30% रोजगार के आरक्षण का प्रावधान भी निहित है, किन्तु आलोचकों ने कुछ विचार प्रस्तुत किये है कि इस योजना का समग्र प्रशासन एवं कार्यान्वयन ग्राम पंचायतों के आधीन कर दिया गया है। सरकार यह आशा करती है कि ऐसा करने से इसके लाभ भूतकाल की तुलना में कहीं अधिक मात्रा में लोगों तक पहुँचने लगेंगे पर वास्तविकता यह रही है कि इस कार्यक्रम के लाभों का बहुत बड़ा भाग ठेकेदारों व विचौलियों को होने लगा है । अर्थशास्त्रियों और अधिकांश विशेषज्ञों का का यह मत है कि भारत जैसे अल्पविकसित देश के लिये बेरोजगारी व अल्परोजगार की चुनौती का सामना करने के लिये औद्योगिक विकास की रोजगार प्रेरित रणनीति का निर्माण इसका सर्वोत्तम उत्तर है । ऐसी परिस्थिति में रोजगार प्रेरित रणनीति की रूपरेखा तैयार करना अत्यंत लाभदायक है किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि भारतीय अनुभव में अल्पकाल के दौरान उत्पादन की वृद्धि दर तथा रोजगार की वृद्धि दर के बीच कोई साधारण सम्बन्ध नहीं है । ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी व अल्पबेरोजगारी दूर करने के लिये ग्रामीण औद्योगीकरण के कार्यक्रम प्रारम्भ करने चाहिये । इस सम्बन्ध में मूल प्रश्न ऐसे उद्योगों को निर्धारित करने का

है जो रोजगार की दृष्टि से प्रारम्भ किये जायें । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ग्रामीण क्षेत्रों मे के औद्योगीकरण/आर्थिक सर्वेक्षण किये जाने चाहिये ताकि विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का अनुमान लगाया जा सके । ग्रामीण औद्योगीकरण कार्यक्रम में कृषि उत्पाद को उत्पादन केन्द्र के पास विद्यमान करने का विचार है ताकि ग्रामीण श्रम को रोजगार मिले । इसीके साथ-साथ सहयोगी उद्योगों को भी ग्राम क्षेत्रों या उनके आस-पास ही कायम किया जाना चाहिये । ग्रामीण औद्योगीकरण के ऐसे कार्यक्रम के लिये बहुत से प्रशासनिक, तकनीकी, वित्तीय एवं संगठनात्मक उपाय करने आवश्यक हैं ।

अध्याय-6 में इलाहाबाद जनपद के भौगोलिक आर्थिक, सामाजिक विवरण के साथ कृषि क्षेत्र में फसलों का उत्पादन, व्यवसाय, आय, रोजगार, मजदूरी तथा कृषि क्षेत्र के विकास मे प्रस्तुत तकनीकी प्रयोग, गरीबी व बेरोजगारी दूर करने के कार्यक्रम, बैंक व वित्तीय सस्थाओं से प्राप्त साख व ऋण सुविधायें और साथ ही साथ कृषि क्षेत्र के विकास पर इसके प्रभावों के अध्ययन का विवरण इलाहाबाद जनपद के द्वितीयक ऑकडों के साथ-साथ जनपद मे किये गये सर्वेक्षण से प्राप्त प्राथमिक ऑकड़ों के आधार पर पूरे विश्लेषण को मुख्य रूप से कृषि में विकास एवं विकास के साथ असमानता के रूप में किया गया है । 1966 के बाद के दो दशकों से पूर्व समय की तुलना में कृषि क्षेत्र में व्यापक और गहन प्रयास हुये हैं । यह अब सर्वमान्य धारणा बन चुकी है कि कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकी परिवर्तन और नवप्रर्वतन के परिणामस्वरूप ही देश में खाद्य आत्मनिर्भरता जो हमारे आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य रहा है, प्राप्त हो सका है । द्वितीयक और प्राथमिक ऑकड़ों के साथ-साथ इलाहाबाद जनपद के कृषि क्षेत्र में कृषि उत्पादन और उत्पादिता सम्बन्धी विवरणों को प्रथम पंचवर्षीय योजना से 1990-91 तक की समयावधि में विश्लेषित किया गया है । सर्वेक्षण की प्राप्तियों से स्पष्ट है कि जनपद में कृषि क्षेत्र के उत्पादन में प्रमुख फसलें गेहूँ, जौ, चना, मटर, धान, बाजरा,

ज्वार, मक्का आदि है । जनपद के प्रति हेक्टेअर औसत उत्पादन को राज्य के प्रति हेक्टेअर औसत उत्पादन की वर्ष 1967-68 की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि जनपद का औसत उत्पादन राज्य के गेहूँ, धान, ज्वार, मूँगफली व गन्ने के औसत उत्पादन से कम था । जनपद के कृषि विकास सम्बन्धी सूचकों विशेषकर उर्वरकों व सिंचाई सम्बन्धी विवरणों को भी प्राप्त किया गया है और इस सम्बन्ध में इलाहाबाद जनपद में विशेषकर गेहूँ व धान में बीज, खाद, क्रांति का प्रभाव पड़ा है । प्रथम योजना के अंत तक जिले का केवल 3207 हेक्टेअर सिंचित क्षेत्र था, यह 1966-67 में बढ़कर 19,280 हेक्टेअर हो गया और 1981-82 में यह बढ़कर 1,99,649 हेक्टेअर हो गया । उत्तर प्रदेश के तुलनात्मक दृष्टिकोण से जनपद में सिंचाई सघनता वृद्धिमान प्रवृत्ति और ऊँचे मूल्य लागत से सम्बन्धित है । पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न जनपदों मे साख अन्तराल कुल मिलाकर अब पहले की अपेक्षा कम हो गया है क्योंकि इस दिशा मे सहकारी साख तथा अन्य वित्तीय सस्थायें अधिक सक्रिय हैं । इसीके साथ-साथ व्यापारिक बैंकों की क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की शाखाओं के कारण ग्रामीण क्षेत्र में साख प्रवाह बढ़ गया है, फिर भी हर क्षेत्र मे हर वर्ग के कृषकों द्वारा नई तकनीक अपनाने के कारण साख माँग मे वृद्धि हुई है और अब व्यक्तिगत साख स्रोतों के स्थान पर संस्थागत साख का विशेष विस्तार हुआ है । इलाहाबाद जनपद में सीमान्त कृषकों की संख्या में वृद्धि हुई है और इसका विवरण कृषि सेन्सस के ऑकड़ों से उपलब्ध है । ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता में ग्रामीण श्रमिक परिवार मुख्य हैं, वे अधिकांशत. पिछड़े वर्ग के हैं जैसे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियाँ । कृषि क्षेत्र में जनसंख्या के अत्यधिक दबाव के कारण इस क्षेत्र में छोटी कृषि जोतों का बाहुल्य पाया गया । पूर्वी उत्तर प्रदेश मे भूमि जोतों का औसत आकार बहुत कम है । तृतीय पंचवर्षीय योजना में यह कहा गया है कि सामाजिक आधार पर आर्थिक विकास, तीव्र आर्थिक विकास रोजगार में वृद्धि, आय व सम्पत्ति असमानता में कमी, आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण में रोक व ऐसे मूल्यों व प्रवृत्तियों का सृजन करेगी जिससे एक स्वतंत्र व समतावादी समाज की

स्थापना की जा सके । देश के आर्थिक विकास मे वर्तमान स्थिति के संदर्भ मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि एक केन्द्र स्थान पर है । संस्थागत कारकों पर आधारित तथा प्रदेश में सिंचाई व नई तकनीकी के विस्तार की स्थिति देश के विभिन्न भागों में हुई है । कृषि मे नवीन तकनीकी तथा हरित क्रांति के परिणामस्वरूप परम्परागत कृषि, आधुनिक वैज्ञानिक कृषि क्रिया के रूप मे नये विनियोग अवसरों के साथ अधिक लाभ की स्थिति उत्पन्न हुई है पर जहाँ ग्रामीण विकास हेतु अनेक संभावनायें उत्पन्न हुई हैं वहीं उनके लाभों के सम्बन्ध में वितरण सम्बन्धी समस्यायें भी उत्पन्न हुई हैं । यद्यपि नई तकनीकी के उत्पादन लाभों को पूरी मान्यता दी जाती है पर ऐसे लाभों का कृषि जोत आकार के अनुसार अलग-अलग विचारों से सबंधित है । कृषि क्षेत्र में आय में वृद्धि उस क्षेत्र में समान रूप से वितरित नहीं हई है ।

इलाहाबाद जनपद मे कृषि जोतों के आकार के आधार पर कृषि आय के वितरण का विश्लेषण किया गया है । सामान्यतया सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये हम आय को समग्र उत्पाद मूल्य और वास्तविक लागत अंतर अतिरेक को आय कहते हैं और इसी अवधारणा को हम कृषि व्यावसायिक आय के रूप मे करेंगे, फिर भी फलनात्मक रूप मे आय वितरण के अध्ययन में आय का सामान्य अर्थ समग्र आय का समग्र उत्पाद मूल्य को लिया जाता है । अपने इस उपागम में जो कृषि जोत मे असमानता की समस्या का विवरण प्रस्तुत करता है, उसमें सबसे पहले हम कृषि व्यावसायिक आय के संकेन्द्रण का दो समय विन्दुओं पर अध्ययन करते है और यह अध्ययन इलाहाबाद जनपर से प्राप्त कृषि जोतों की आय सम्बन्ध में है । सर्वेक्षण से यह भी स्पष्ट है कि छोटे कृषि जोतों पर अधिक फसल सघनता का कृषि जोत आकार और कार्यशील क्षेत्र में प्रति एकड़ उत्पादिता के विपरीत सबंध को दिखाता है और यही सम्बन्ध कुछ आकार वर्गों पर विनियोग प्राप्ति के संबंध में सही पाया गया । आगत निर्गत विश्लेषण से हम ये पाते हैं कि 5 से 10 एकड़ वाला कृषक वर्ग का अधिकतम

पूंजी उत्पाद अनुपात है और प्रति एकड़ उत्पादिता भी उच्चतम है । संसाधनों की कार्यकुशलता के दृष्टिकोण से भी कृषकों का यह वर्ग सर्वोच्च रहा है । लघु कृषकों को अधिक सुविधाजनक और पूरे वर्ष सुनिश्चित श्रम पूर्ति उपलब्धि रही और इनके उत्पादन स्थिति मे पूँजी के स्थान पर श्रम प्रतिस्थापन पाया गया और इस कृषक वर्ग के विभिन्न स्तरों पर फसल सघनता मे अंतर नहीं पाया गया और साथ ही साथ लघु कृषकों में उच्च फसल सघनता को प्राप्त करने की ऊँची संभावनायें प्राप्त की गयीं परन्तु सर्वेक्षण निदर्श आँकड़ों में यह प्राप्त किया गया कि कुल लागत अवयवों में आधुनिक आगतों का प्रतिशत कृषक परिवारों के वर्ग के साथ-साथ बढ़ता जाता है। प्रस्तुत सर्वेक्षण के विवरण आधार पर क्षेत्रीय असमानताओं का भी विश्लेषण किया जा सकता है । चूँकि नई कृषि नीति का मुख्य विन्दु इसके चयनात्मक स्वरूप से संबंधित है जिसमें अनुकूल सुविधा वाले क्षेत्रों का चुनाव तथा विशेषकर बड़े कृषकों के चुनाव से संबंधित है । इस तरह हम यह पाते हैं कि इलाहाबाद जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में नियोजित विनियोग के लाभों मे असमान विनियोग हुआ है । पूर्णतया क्षेत्रीय एवं भौगोलिक कारकों जैसे भूमि, जलवायु वर्षा आदि जो विकास के साथ क्षेत्रीय असमानता उत्पन्न करते हैं, उसमें क्षेत्रीय असमानता की वृद्धि में कृषि क्षेत्र में हुये विनियोग व्ययों के कारण भी हुआ है । इलाहाबाद जनपद पूर्वी उत्तर प्रदेश का भाग होने के कारण उसकी कृषि उत्पादिता उत्तर प्रदेश के मेरठ संभाग से बहुत कम है । हमारे प्रस्तुत सर्वेक्षण में यह असमानता इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि नवीन तकनीकी का कृषि आयों पर गंगापार व जमुनापार के क्षेत्रों में विपरीत प्रभाव पड़ा है । इन दो क्षेत्रों में कृषि उत्पादिता का तुलनात्मक अनुपात 1990-91 में 1982-83 की तुलना में अधिक था । जैसे-जैसे पूंजी प्रधान उत्पादन की विधियाँ बढ़ती गयी वैसे-वैसे यह असमानता भी बढ़ती गयी ।

शोध प्रबन्ध के दिये गये निष्कर्ष व प्राप्तियों के आधार पर भारतीय कृषि क्षेत्र के विकास और उसमें असमानताओं के निवारण हेतु कुछ महत्वपूर्ण नीतियों का सुझाव दिया जा सकता है । जनपद के सर्वेक्षण से यह प्राप्त हुआ है कि प्रमुख खाद्यान्नों के उत्पादन मे महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है । साथ ही साथ आधुनिक आगतों के प्रयोग के प्रति बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है । कृषि विकास और उत्पादन बढ़ाने के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण होगा कि सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के साथ साथ नवीन कृषि उपकरणों , बीज , खाद आदि का प्रयोग उन क्षेत्रों मे भी सुनिश्चित किया जाये जो अभी तक इससे वंचित हैं । कृषि क्षेत्र में उत्पादन और लाभों के समान वितरण कराने व असमानताओं को दूर करने हेतु लघु सीमान्त व भूमिहीन कृषको के आर्थिक व सामाजिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों व नीति निर्माण की आवश्यकता है । जब तक इस वर्ग के लिए अलग से आर्थिक , सामाजिक कार्यक्रम नही किये जायेंगे, इनका जीवन स्तर और आर्थिक दशा सदैव असमानता वृद्धि का का कारण होगी । इसी प्रकार कृषि व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी उन्मूलन संबंधी कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने की आवश्यकता है । गरीबी उन्मूलन सम्बन्धी कार्यक्रम व योजनाये समय समय पर तैयार की गयी है परन्तु अभी तक उनका कोई ठेस रूप नहीं बन पाया है । अत. आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादन संबंधी ऐसे कार्यक्रम बनाये जायें जिससे गरीब वर्ग की आय मे अतिरिक्त वृद्धि होसके व उनके जीवन स्तर में सुधार हो सके । आर्थिक असमानता दूर करने मे गरीबी निवारण हेतु ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करना तथा अतिरिक्त उत्पादक रोजगार अवसरों को उत्पन्न करना है । अत. रोजगार अवसरो के सृजन हेतु ग्रामीण औद्योगिकीकरणकी महती आवश्यकता है । इस सम्बन्ध में लघु स्तरीय उद्योग , कुटीर व ग्रामीण उद्योगों के पुनरूत्थान व विकास की आवश्यकता है । वर्तमान समय मे लघु स्तरीय उद्योग प्राय. रूग्ण अवस्था में हैं अत. सरकारी नीतियों , बैकिंग संस्थाओं की उदार ऋणनीति तथा इन रूग्ण इकाइयो के उपयुक्त प्रबन्धकीय कुशलता से यह संभव है कि ग्रामीण व कृषि क्षेत्र

में इनसे अतिरिक्त आय व रोजगार सृजन किया जा सके ।

भारतीय कृषि मे 1966 के बाद तकनीकी परिवर्तन के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि इसका प्रभाव कुछ क्षेत्रों तथा कुछ फसलों तक सीमित रहा है । अत हरित क्रांति के द्वितीय चरण में इस बात की आवश्यकता है कि उन राज्यों तथा क्षेत्रों को भी हरित क्रांति के लाभों से सबधित कराये तथा कृषि क्षेत्र की उत्पादिकता के सदर्भ मे तिलहनों, दालों तथा मोटे अनाजों पर विशेष ध्यान देना है । नवीन कृषि नीति के अन्तर्गत यह भी आवश्यकता है कि कुछ उन्नतशील बीजों का आविष्कार इन फसलों की उत्पादन वृद्धि हेतु किया जाना चाहिये । देश के कृषि विकास हेतु इस बात की आवश्यकता है कि शुष्क कृषि विकास को बढ़ावा दिया जाये । असिंचित क्षेत्रों और आधुनिक आगतों की सुविधा से वंचित क्षेत्र के लिये नई तकनीकी व्यवस्था व एसे बीजों का आविष्कार किया जाना चाहिये जो विना सिंचाई सुविधा के आधार पर उत्पन्न किये जा सके । देश की कृषि भूमि के बड़े क्षेत्रफल में शुष्क कृषि की भारी संभावनाओं के कारण यह आवश्यक है कि सरकार तथा कृषि विकास अनुसंधान संस्थायें इस दिशा में ध्यान दें । नवीन कृषि आगतों को उपलब्ध कराने में विशेषकर उर्वरकों के वितरण व्यवस्था और मूल्य में अनुदान देने की व्यवस्था को बनाये रखने की आवश्यकता है। उर्वरकों के बढ़ते हुये मूल्य और अनुदान की समाप्ति के कारण विभिन्न अध्ययनों में यह पाया गया है कि कृषि क्षेत्र में इनके प्रयोग मे कमी हुई है । अत. उचित मूल्य पर उर्वरकों की उपलब्धि सरकारी एजेन्सियों से कराने की आवश्यकता है जिससे लघु व सीमांत कृषक इसके लाभों से वचित न रह सकें । इसी के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त आय उत्पन्न करने के लिये नगदी व व्यापारिक फसलों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है । अध्ययनों में यह प्राप्त हुआ है कि जिन क्षेत्रों मे नगदी व व्यापारिक फसलों पर बल दिया गया है, वहाँ कृषकों की आय व स्थिति विशेष संतोषजनक है । इसके लिये यातायात सबधी सुविधाये तथा विपणन व्यवस्था को सगठित

व विकसित करने की आवश्यकता है । कृषि विकास के सबध मे विभिन्न फसलों को दिये जाने वाले प्रोत्साहन से सबंधित नीति की भी आवश्यकता है ।

ग्रामीण व कृषि क्षेत्र के संबंध मे समुचित विकास हेतु सबसे बड़ी आवश्यकता कृषि विकास तथा विभिन्न कार्यक्रमों हेतु दिये जाने वाले बैंक साख व ऋण तथा अन्य सरकारी संस्थाओं से प्राप्त अनुदानों आदि के उत्पादक व प्रभावी प्रयोग से है । इस संबंध मे इस बात की विशेष आवश्यकता है कि ऐसे ऋण, अनुदान आदि तात्कालिक घोषणा व राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित न होकर एक दीर्घकालीन विस्तृत ग्रामीण व कृषि विकास व्यूह नीति पर आधारित हो । जब तक सही ढंग से कृषि व ग्रामीण विकास हेतु सही परियोजनायें व कार्यक्रम नहीं बनाये जाते, बैंक साख व ऋणों का दुरूपयोग होता रहेगा । इसीसे जुड़ी दूसरी समस्या इन ऋणों के भुगतान व वसूली से है । अत· आवश्यकता इस बात की है कि कृषि विकास कार्यक्रम के साथ-साथ साख नीति का निर्माण किया जाये और इन नीतियों व कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से किया जाये ।

कृषि क्षेत्र में विकास व असमानताओं को दूर करने के संबंध में नवीन कृषि नीति के लाभों को समान रूप से सुनिश्चित करने के संबंध मे भूमि सुधार उपायों व कार्यक्रमों में भूमि संरक्षण, जोतों का आकार, अतिरिक्त भूमि का भूमिहीन श्रमिकों में वितरण, कृषि क्षेत्र मे अधिकतम जोत का निर्धारण आदि से जुड़ी समस्याओं के प्रति प्रत्येक राज्य सरकारों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । भूमि सुधार कार्यक्रम वस्तुत कृषि के संस्थागत सुधारों से जुड़े हैं और कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास के पूर्व प्रयोग हेतु इन संस्थागत सुधारों की विशेष आवश्यकता है । प्रभावी भूमि सुधार कार्यक्रम के उपायों से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि लघु कृषक, सीमांत कृषक व

भूमिहीन श्रमिकों को अतिरिक्त आय व कार्य के लिये कुछ निम्नतम भूमि आदेयों को उपलब्ध कराया जा सकता है और इस तरह उनके निम्न आय व निम्न जीवन स्तर मे सुधार किया जा सकता है ।

***

संदर्भ ग्रन्थ (हिन्दी)

1- अग्रवाल, ए.एन. - भारतीय कृषि अर्थतंत्र राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

2- कपूर, सुदर्शन कुमार - भारतीय कृषि व्यवस्था, जयपुर, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

3- गोविल, ऋषि कुमार
त्रिपाठी, बद्री विशाल - भारतीय कृषि अर्थशास्त्र इलाहाबाद, एशिया बुक

4- निगम, रामेश्वर
सिंह, प्रो0 विजयेन्द्रपाल - कृषि अर्थशास्त्र साहित्य सदन, आगरा

5- मेहता, जे.के. - भारतीय अर्थव्यवस्था समस्यायें एवं प्रतिविधान दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड प्रथम संस्करण 1978.

6- मिश्र, श्रीकांत - भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका विकास दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड प्रथम संस्करण 1976.

7- साउ, रंजित - भारत की आर्थिक सवृद्धि अवरोध और सभावनाये दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड प्रथम हिन्दी संस्करण 1981.

8- सुन्दरम् के पी.एम. एवं
दत्त रूद्र - भारतीय अर्थव्यवस्था एस चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली 23वाँ संस्करण 1992.

9- त्रिपाठी, बद्री विशाल - भारतीय कृषि किताब महल, द्वितीय संस्करण 1992.

हिन्दी - लेख

1	शरद उपाध्याय	-	खेतिहर मजदूर सरकार क्या कर रही है ? योजना 16-31 मई, पृष्ठ 7
2.	खॉ, शशिधर	-	आयोजित विकास के परिप्रेक्ष्य मे अर्थशास्त्री, जनवरी 1986 अक 175 पृष्ठ 27
3.	मिन्हास, बी एस	-	भारत में पचवर्षीय योजनाये व गरीबी, अर्थशास्त्री, जनवरी 1986 अंक 175, पृष्ठ 15.
4.	भगवती, जगदीश	-	विकास और गरीबी, अर्थशास्त्री अप्रैल 1986 अंक 178 पृष्ठ 7
5.	दांतवाला, एम.एल.	-	कृषि विकास और न्याय, अर्थशास्त्री जनवरी 1987, पृष्ठ 19
6.	सत्यम् ए.	-	कृषि क्षेत्र में व्याप्त तनाव की बुनियाद एवम् कारण, अर्थशास्त्री सितम्बर 1986 पृष्ठ 29

BIBLIOGRAPHY

ENGLISH BOOKS

1. Acharya, KCS - Food Security System in India.
2. Agarwal, A.N. - Indian Agriculture
3. Agarwal, A.N. - The Economics of Underdevelopment.
4. Anjaria, J.J. & Nanavati, M.B. - The Indian Rural Problem
5. Asari, V.G. - Technological change For Rural Dev. In India C.B.R. Pub. Corp. Delhi, 1985.
6. Bansil, P.C. - Agricultural Problems of India.
7. Barron, Prof. - The Political Economics of Growth.
8. Black,John D. - Economics of Agriculture
9. Chadha, G.K. - Production Gains of New Ag. Technology.
10. Chand,Mahesh - Economics Problems in Indian Agriculture.
11. Chaudhari, Pramit - The Indian Economy (Poverty & Development) Ed. 1985.
12. Chakravorty, T.K. - Development of Small and Marginal Farmers & Agricultural Labourers.
13. Charan Singh - India's Economic Policy.
14. Chisholm, Michael - Rural Settlement And Land Use, London 1965.
15. Chopra,R.N. - Green Revolution In India, Intellectual Pub. House New Delhi, 1985.

16. Clayton,Eric - Economic Planning In Peasant Agriculture, Ashford, Kent 1963.

17. Colin Clark - Conditions of Economic Progress, third editon, London 1957.

18. Dandekar, V.M. &- Rath, N. Poverty In India

19. Daniel,A.V. - Strategy for Agricultural Development Bombay, 1976.

20. Dasgupta, Ajit K. - Agriculture and Economic Development In India.

21. Dasgupta, Biplab - The New Agrarian Technology & India.

22. Dasgupta,Sugata - A great society of small communities.

23. Desai,A.R. - Rural Sociology

24. Eicher,Carl & Witt.Lawrence - Agriculture in Economic Development.

25. Etienne Gilbert - India's Changing Rural Scene OUP, 1982.

26. Fox,Karl A. - Intermediate Economic Statistics, New Delhi, 1972.

27. Frankel,F.R. - India's Green Revolution.

28. Gadgil,D.R. - Planing & Economic Policy In India.

29. Gandhi,M.K. - Village Swaraj.

30. Govil,R.K. & Tripathi,B.B. - Agricultural Planning & social Justice in India.

31. Hajela,P.D. - Problems of Monetary Policy in U.D.C.

32. Heady,Earl O. & Dillon,John L - Agricultural Production Functions Ludhiana, 1971.

33. Heady,Earl O. & Janson,Harold R - Farm Management Economics New Delhi, 1964.

34. Hicks, J.R. - Value & Capital, Oxford, 1950.

35. Islam,Nurul - Ag.Policy in Dev. Countries, (Ed) Macmillan.

36. Hyers, R.H. - Agricultural Development In South East Asia.

37. Jacoby,E.H. - Agrarian Unrest In South East Asia.

38. Jain, S.C. - Changing Indian Agriculture.

39. Jhingan,M.L. - The Economics of Development & Planning, 13th revised edition 1980.

40. Johnston,Bruce F.,Kaneda N. & Ohkawa K. - Agriculture & Economic Growth Japan's Experience, Tokyo 1969.

41. Kahlon,A.S.& Tyagi, D.S. - Agricultural Price Policy In India, Allied 1983.

42. Kahlon, A.S.& George M.V. - Agricultural Marketing & Price Policies.

43. Kahlon, A.S.& others - Dynamics of Punjab Agriculture P.A.U. Ludhiana, 1966.

44. Kahlon, A.S.Z& Singh, K. - Economics of Farm Management In India, New Delhi, 1980.

45. Lewis,A. - The Theory of Economic Growth.

46. Mamoria,C.B. - Agricultural Problems of India.

47. Maddison,A. - Economic Progress & Policy in developing countries.

48. Malenbamm,W. - Prospect for Indian Development.

49.	Mc.Namara,R.S.	-	Poverty & Growth Role of Agriculture In Developing Countries.
50.	Mellor, J.W.	-	The New Economics of Growth, A Strategy for India & the developing world, Ithaca, New York, 1976.
51.	Mier,G.M.	-	Economic Development Theory, History, Policy.
52.	Mishra,R.P.	-	Rural Development.
53.	Mishra,R.P.& others	-	Regional Development Planning In India, A New Strategy Ed. 1976.
54.	Mishra, G.P.	-	Anatomy of Rural Unemployment & Policy Prescriptions.
55.	Nanjundappa, D.M.	-	Area Planning & Rural Development.
56.	Nurkse,Ragner	-	Problems of Capital Formation In Underdeveloped Countries.
57.	Pandey, P.	-	Inequality In An Agrarian Social System.
58.	Parthsarthy,G.	-	Green Revolution And The Weaker Section.
59.	Ponekar,G.S. (Ed.)	-	Studies In Green Revolution.
60.	Patel,N.T.	-	Imports Productivity In Agriculture, New Delhi, 1982.
61.	Prasad,K.N.	-	The Economics of Backward Region In Backward Economy, Calcutta, 1967.
62.	Randhawa,M.S.	-	Green Revolution - A Case Study of Punjab.

63.	Rao, C.H. Hanumantha	-	Technological Change & Distribution of Gains In Indian Agriculture.
64.	Rao, C.H. Hanumantha	-	Agricultural Production Functions Costs & Returns In India, Ed. 1965.
65.	Saini, G.R.	-	Farm size, Resource. Use Efficiency & Income Distribution New Delhi, 1976.
66.	Schultz,T.W.	-	Economic Growth & Agriculture New York, 1968.
67.	Schumacher,E.F.	-	Roots of Economic Growth.
68.	Sen, S.R.	-	The Strategy For Agricultural Development.
69.	Sen, Sudhir	-	Reaping the Green Revolution Tata Mcgraw Hill, New Delhi, 1975.
70.	Shafi,Mohd.	-	Agricultural Productivity & Regional Imbalances' Concept Publishing Co, New Delhi, 1983.
71.	Shah & Vakil (Ed.)	-	Agricultural Development of India, Policy & Problems.
72.	Sharma, A.N.	-	Economic Structure of Indian Agriculture, 1984.
73.	Sharma, D.P. & Desai, V.V.	-	Rural Economy of India.
74.	Sharma, R.N.	-	Thirty Years of Indian Journal of Agricultural Economics Concept Pub. 1977.
75.	Shenoi, P.V.	-	Agricultural Development In India.
76.	Shukla, Tara	-	Economics of Underdeveloped Agriculture.

77. Shukla,Tara - Capital Formation in Indian Agriculture Bombay, 1965.

78. Sidhu,B.S. - Land Reform, Welfare & Economic Growth.

79. Singh, Tarlok - India's Development Experience.

80. Singh, B. - Institutional Approach to Planning.

81. Singh, B. - Next Step In Village India.

82. Singh,J.J. - Elements of Farm Management Economics Calcutta, 1977.

83. Subramaniam,C. - The New Strategy In Indian Agriculture.

84. Sukhatme,P.V. - Feeding India's Growing Millions.

85. Swaminathan, M.S. - Agricultural Progress- Key to third world Prosperity, Third world Lecture, 1983.

86. Venkateswarlu, B. - Dynamics of Green Revolution In India, Agricole Publishing Academy, 1985.

87. Warriner, Doreen - Land Reform & Economic Development.

THESIS

1. Acharya,S.S. - Impact of Technological Change on Farm employment & income distribution in Agriculture, 1972.

2. Bhalla, G.S. - Structural Changes in Income distribution : A Study of the Imapct of Green Revolution In the Punjab, 1981.

3. Dholakia,R.H. - Interstate Variations In Economic Growth In India, 1977, Baroda University.

4. Mishra,G.P. - Technology & Growth . A Case Study of Indian Agriculture, 1972.

5. Pandit,S.N. - Critical Study of Ag. Productivity In U.P. : (1951-71), 1980.

6. Tewari, S.P. - A Critical Appraisal of Growth In U.P. during the plan period, 1979.

7. Zachariah,E. - A Study in wages & living conditions of Agricultural Labourers In Baghelkhand Region, 1977.

ARTICLES

1. Agarwal, R.C. Rao Dinkar & Singh, M. - A Study of the Factors Affecting the Demand for Rural Labour in Agriculture,' Indian Journal of Agricultural Economics, 25(3), 1970, 60-3.

2. Banerjee, S. & Bhartiya, S. - The Rising Production in East U.P. Sunday Calcutta 21.4.84.

3. Etience Gilbert - 'Green Pastures' India Today, New Delhi, 30.4.84.

4. Bhatia, M.S. - Infra - Sectoral Parity between cost price & Income in Agriculture Vol. XII No.4, PP 101 (1JAE)

5. Bhanja,P.Kumar - Capital Formation in Agriculture At the Farm level Vol. 20(1) 1965, 201-9 (I.JAE)

6. Bishnoi,R.N. - "Pattern of Employment and the Nature & Causes of Unemployment in Ag. 21(1), 1966, 51-56 (I.J.A.E.)

7. Chatopadhyaya, M. - "Agricultural Labourers of Birbhum, 34(3), 1979, (42-50, I.J.A.E.)

8. Christopher,R. Bryaut - Metropolitan Development and Agriculture, "Land Economics 51(2), 1975, 158.

9. Dhawan, K.C.& Bansal,P.K. - Rationality of The Use of Various Factors of Production on Different Sizes of Farms in the Punjab, I.J.A.E. 32 (3), 1977, 121-130.

10. Dhondiyal,S.P. - A Note on Impact of Credit on Farm Growth I.J.A.E. 67, (226) 1977, 369.

11. Goswami,P.C.& Bora C.K. - Demand for Labour in Rural Areas of Assam : A Case Study in Nowyong Dist. I.J.A.E. 25(3), 1970, 46-52.

12. Harris, John R. & Todaro, Michael, P. - Migration, Unemployment & Dev. A Two Sector Analysis, American Economic Review, 1970, 126-42.

13. Jha,Dayanatha - Agricultural Growth Technology And Equity, I.J.A.E. 29(3), 1974, 207.

14. Kahlon,A.S. - Theory of Economic Growth in over Populated Countries " I.J.A.E. 23(1), 1968, 18-20.

15. Kameda, Hiromitsu - Growth & Equity In India's Ag. In Recent Years - An East Asian Perspective, I.J.A.E. No.1 36(1) 1981, (39-57)

16. Manrai, M.L.& Indira Hiraway, H.G. Hanuappa - Poverty Alleviation Programmes & Ag. Dev. I.J.A.E. Vol. 41(4), 1986, (640-641).

17. Mukherjee, C. & Vaidyanathan, A. - Growth & Fluctuations In Foodgrain Yield Per Hectare - A Statewise Analysis I.J.A.E., Vol. 35 (No.2), 1980, (60-70)

18. Pant,S.P. - Growth & Stagnation of Ag. Prod. - A Critical Analysis (with special reference to M.P.) I.J.A.E., Vol. 38(4), 1983 (556-557)

19. Rahman, M.M. - Poverty & Inequality in Land Holding Distribution In Rural Bangladesh, I.J.A.E. XI 1985, (513-523)

20. Rao,V.M. - Methodological Issues In Measuring Ag. Growth - Lessons of Recent Indian Researches I.J.A.E., Vol. 35(2), 1980 page (13-20)

21. Sabnavis,Madan - Seventh Plan : A Success Story Fin.Exp. April 6, 1991, page 6.

22. Singh, C & Chand, Puran - Inter state disparities in the growth of New tech. & Ag. production in India. Ag.St. In India, May 1989 page 101.

REPORTS

R.B.I. - Repots of the All India Rural Credit Review Committee, 1969.

R.B.I. - Report of the Study Team on Agricultural Credit Institutions in U.P. 1978.

R.B.I. - Repot of the Committee of Review arrangement for institutional Credit for Agriculture & Rural Development (CRFICARD), 1981

Govt.of U.P. - Draft Seventh Five Year Plan (1985-90) Vol. I & II.

Govt. of India - Various Plan Reports, Planning Commission.

Govt. of India - Report of the National Commission on Ag. Parts, I, II & XII, 1976.

Agro Eco.Research Centre, Uni. of Allahabad. - Constraints of Agricultural Productivity in India & its measures.

PERIODICALS

1. Agricultural Situation In India.
2. C.M.I.E. Bulletin.
3. Economic & Political Weekly.
4. Economic Survey.
5. Economic Times.
6. Financial Express.
7. India.
8. Indian Journal of Ag. Eco.
9. India Today.
10. Monthly Commentry.
11. Sunday.
12. Varta
13. Yojana